Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सन्ध्योपासना विज्ञान

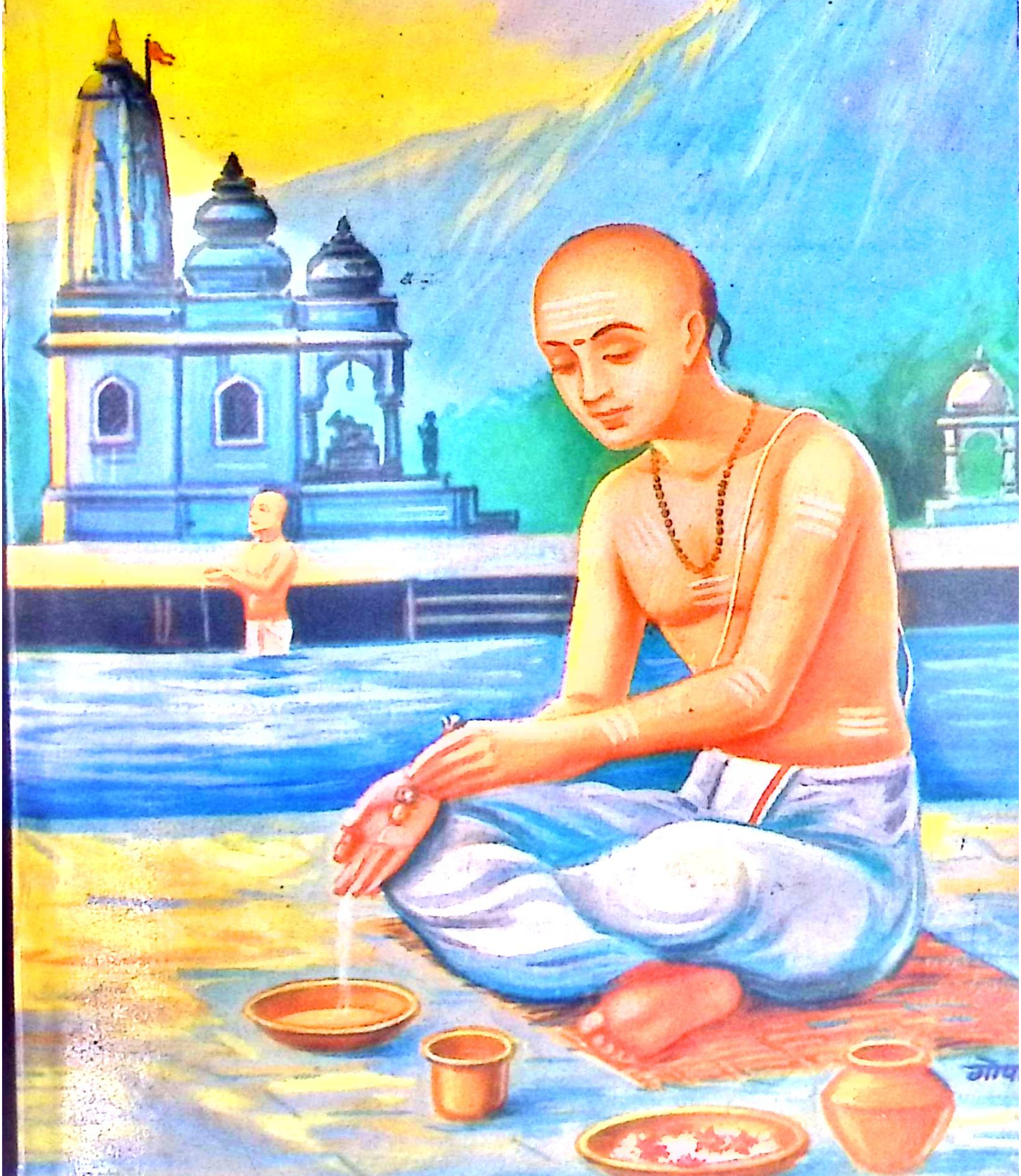

प. प. ब्र. स्वामी ब्रह्मानंद सरस्वती

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

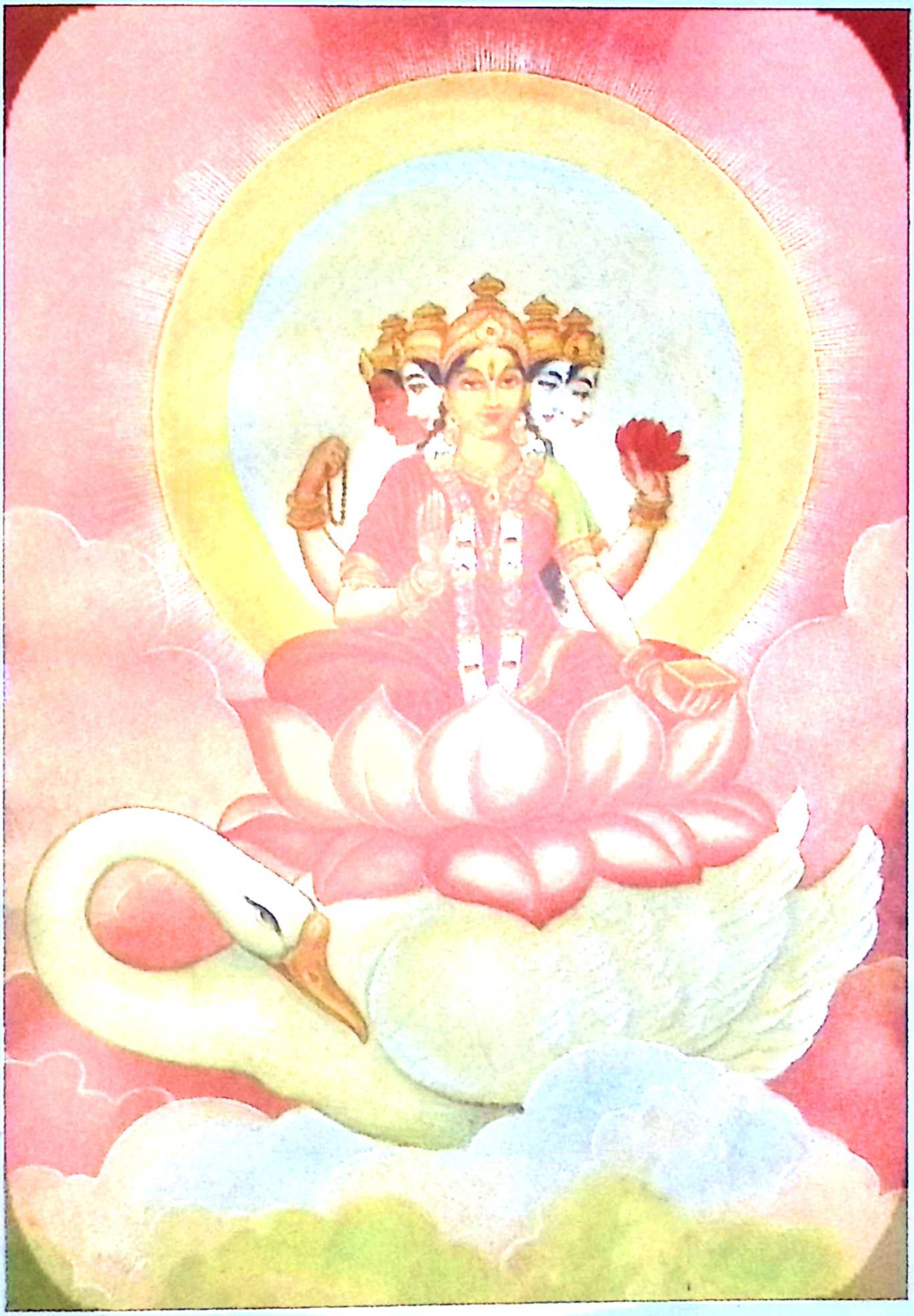

वेदमाता गायत्री

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

।। ॐ ।।

सन्ध्योपासना

(विज्ञान)

मूल लेखक - (मराठी)

पू. दण्डी स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती

हिंदी अनुवाद

प्रेरणा : पू. आचार्य किशोरजी व्यास

अनुवादक

प्रा. डॉ. प्रभाकर सदाशिव पंडित

एम्.ए;एम्. ईडी; पीएच्.डी.

धर्मश्री प्रकाशन, पुणे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

■ **सन्ध्योपासना : विज्ञान**

■ मूल लेखक : (मराठी)
पू. दण्डी स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती
हिंदी अनुवाद :
प्रेरणा : पू. आचार्य किशोरजी व्यास
अनुवादक :
प्रा. डॉ. प्रभाकर सदाशिव पंडित
एम्.ए;एम्. ईडी; पीएच्.डी.

■ सर्व अधिकार लेखक-प्रकाशक के अधीन

■ प्रकाशक :
धर्मश्री प्रकाशन
'धर्मश्री' कार्यालय, मानसर अपार्टमेण्टस्,
पुणे विद्यापीठ मार्ग - पुणे ४११०१६
दूरभाष : (०२१२) ३५२५८९, ३६७३१६

■ तृतीय संस्करण :
२००९ (युगाब्द ५११०)

■ अक्षरयोजना :
एच् एम् टाईपसेटर्स
११२०, सदाशिव पेठ
पुणे ४११०३०

■ मुद्रणस्थल :
राहुल मारुलकर
मंदार प्रिंटर्स, ७५६ कसबा पेठ,
पुणे-११, दूरध्वनी - २४५७८९४२

■ मूल्य : १२५/- रुपये

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

।। ॐ ।।

अनुवादक की मानवन्दना

युगधर्म प्रतिपादक एवं व्यक्तिगत उन्नति के साथ सामाजिक एकता-संवर्धन का मूलमंत्र देनेवाला सन्ध्योपासना यह अद्भुत ग्रंथ है।

महातपस्वी, स्वानुभवी, तत्त्वचिन्तक पूजनीय दण्डीस्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती द्वारा रचित ग्रंथराज 'सन्ध्योपासना' वर्तमान युग की विपरीत मूल्यहीन परिस्थिति पर विजय पाने की दिशा में एक अतिमहत्त्वपूर्ण प्रयास है।

'उपासनेला दृढ चालवावे' अर्थात् उपासना को दृढ़ता से अखण्डित विधिवत् सुचारु रूपसे नियमित चालू रखना चाहिए, यह राष्ट्रगुरु स्वामी समर्थ रामदासजी की उक्ति न केवल व्यक्ति-विकास के लिए बल्कि समाज के स्वास्थ्य का एक अनिवार्य अंग है।

उपासना का स्वरूप कैसा हो; वह सर्वजनसुलभ होने के साथ प्रेरणा देने की क्षमता से परिपूर्ण हो; साथ ही प्राचीन आध्यात्मिक परम्परा को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान युग की भौतिक समस्याओं से जूझने की शक्ति व्यक्ति तथा समाज में कैसे निर्माण हो इसका संमुचित मार्गदर्शन इस बहुमूल्य ग्रंथ की विशेषता है।

अंधश्रद्धा को स्थान न देते हुए प्रत्येक तथ्य को आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर परख कर अपने निष्कर्ष प्रस्तुत करनेवाला तथा मानव-धर्म को पुष्ट बनानेवाला यह दिव्य ग्रंथ प्रत्येक मनुष्य, परिवार एवं समाज की सर्वांगीण उन्नति सिद्ध करनेवाला होने से इस मराठी ग्रंथ का हिन्दी रूपान्तरण प्रस्तुत किया गया है।

'व्यक्तिगत तथा सामुहिक उपासना की कट्टरता ने अन्य समाजों को सुसंगठित रखा है' इस महान तथ्य को भारतीयों को फिर से आग्रह से समझाने की आवश्यकता को इस अपूर्व 'सन्ध्योपासना' ग्रंथ ने पूरा किया है। युगधर्म की व्याख्या-प्रस्तुत करनेवाला तथा सुसंस्कार का आदर्श वस्तुपाठ प्रदान करनेवाला यह महान ग्रंथ प्रत्येक परिवार में होना आवश्यक है।

सन्ध्योपासना हिन्दी रूपान्तर योजना को साकार करने में जिन महानुभावों की स्नेहसिक्त अनुकंपा प्राप्त हुई उनका निर्देश आवश्यक है। पू. आचार्य किशोरजी व्यास तो मूलाधार रहे हैं। इसी प्रकार पू. सत्यमित्रानंदजी की निरन्तर प्रेरणा प्राप्त

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हुई। पू. प्रज्ञानानन्दजी के शिष्यवर श्रीमान् श्रीराम गिलडा एवं डॉ. कमल वैद्यजी के सक्रिय सहयोग से ग्रंथ सुगठित हुआ। पू. आचार्य किशोरजी व्यास के अंतरंग सहयोगी डॉ. प्रकाश सोमण बहुविध कार्यों में अत्यधिक व्यस्त होनेपर भी इस प्रकाशन कार्य में नित्य सहकार्य देते रहे। इसी प्रकार इस ग्रंथ के मुद्रण का गुरुभार वहन करनेवाले श्री. प्रमोद बापट (स्मिता प्रिंटर्स) एवं अत्यधिक उत्साही श्रीमान हेमंत जोशी का सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ।

अतः ये सभी महानुभाव चिर प्रशंसा के अधिकारी हैं। उनके प्रति विनम्र कृतज्ञता प्रकट करना अनुवादक का प्रिय कर्तव्य है।

विनीत,

हिंदी अनुवादक

डॉ. प्रभाकर सदाशिव पंडित

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मीभूत परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डी स्वामी
प्रज्ञानानन्द सरस्वती

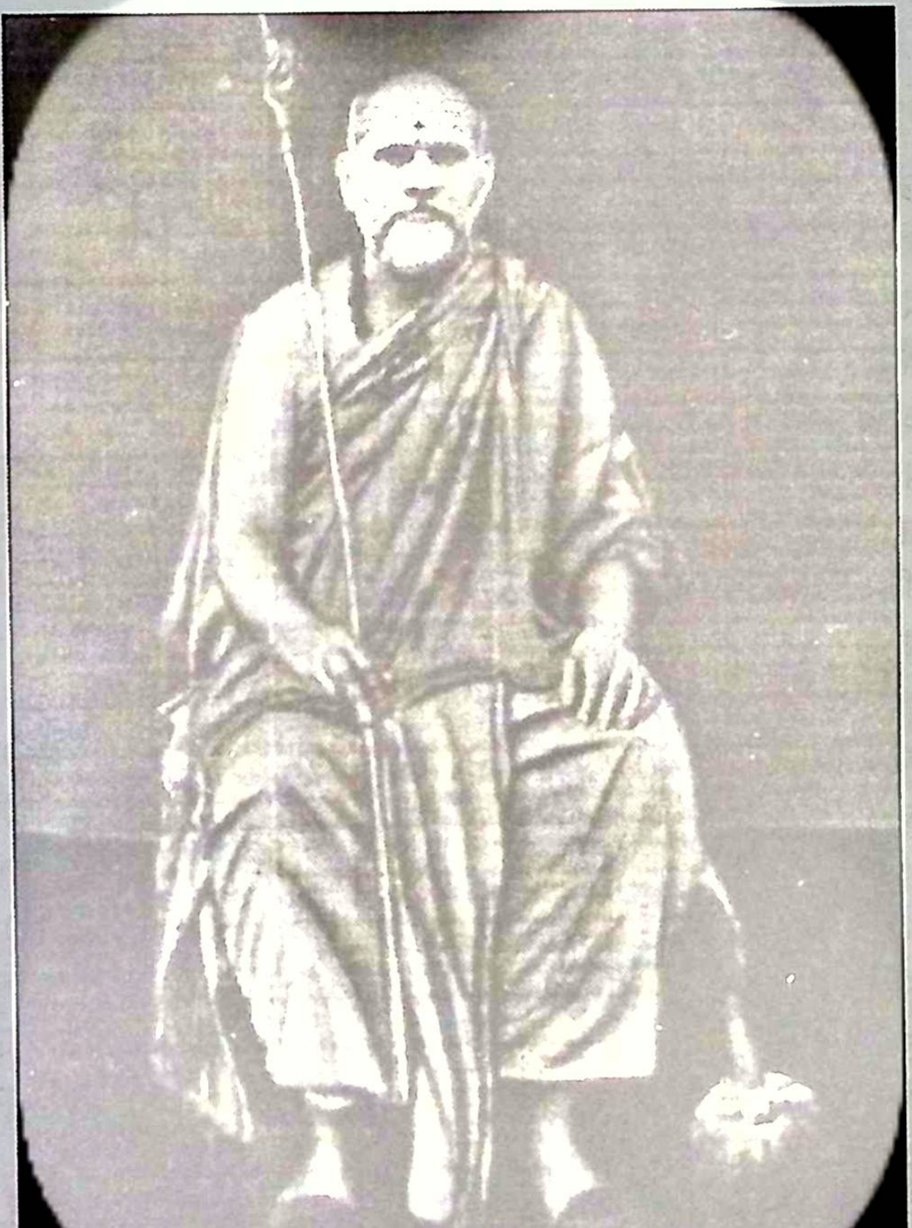

जन्म : १५ मई १८९३ वैशाख वद्य ३०
निर्वाण : २३ मार्च १९६८ फाल्गुन वद्य १०
समाधि : परंडा (जि. धाराशिव)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेखक का संक्षिप्त परिचय

ब्रह्मीभूत दण्डी स्वामी परमहंस परिव्राजकाचार्य प्रज्ञानानन्द सरस्वती महाराज का जन्म १३ मई १८९३ सोमवार वैशाख वद्य ३० कोंकण (महाराष्ट्र) में हुआ। बडोदा से आपने सन १९१८ में संस्कृत विषय में स्नातक (B.A.) उपाधि प्राप्त की थी। उसके पश्चात् आप चिंचणी तारापुर में अध्यापक थे। उसी कालावधि में १९३१ में संत तुलसीदास के परम भक्त बाबा गंगादास का आप पर परम अनुग्रह हुआ। उन्हीं की कृपा विशेष से श्रीरामचरितमानस में आपका प्रवेश हुआ। फलतः उनके करकमलों द्वारा श्रीरामचरितमानस का मराठी में अत्यंत उत्कृष्ट प्रासादिक समवृत्त छंद में अनुवाद हुआ। जिसपर से आज जगह जगह मराठी में भी मानस के पारायण हो रहे हैं। मानस पीयूष से भी उत्कृष्ट ६५०० पृष्ठों की बृहद् टीका आपने मानस पर लिखी है। जिसकी सराहना उत्तर प्रदेश के मान्यवर रामायणियोंने की है। आपके संन्यासगुरु पू. वासुदेवानंद सरस्वती के अनुग्रह से आपकी प्रज्ञा का जागरण हुआ। उन्हीं की कृपा से उनके भीतर का कवि जागा।

स्वामीजी एक उत्तम कवि भी थे। उनके द्वारा निम्न ग्रंथों की रचना हुई है। जैसे संगीत समश्लोकी गीता, श्रीगीता कीर्तनरंगिनी (दोनों मराठी में) ये दोनों गीताविषयक ग्रंथ हैं। इसके सिवा 'नर्कूटक रामायण', 'वेदान्त सार रामायण' ये रामायण विषयक ग्रंथ हैं। ब्रह्मस्तुति और वेदस्तुति-प्रभाकर श्रीमद्भागवत से संबंधित तत्त्व विवेचक काव्य हैं। श्रीपरमामृत प्रकाश एवं गुरुगीता प्रबोधिनी स्वतंत्र काव्य रचना हैं।

संध्योपासना विज्ञान ग्रंथ की रचना से इस विषय के जिज्ञासुओं के लिए आपने, साहित्य क्षेत्र की बहुत बड़ी कमी की पूर्तता की है। इसके इस हिन्दी अनुवाद से हिन्दी जगत को बहुत उत्तम सामग्री उपलब्ध हुई है।

संत तुलसीदास के अवतार प्रज्ञानानंद सरस्वती का निर्वाण २३ मार्च १९६८ को फाल्गुन वद्य १० को प्रायोपवेशन के संकल्प से हुआ। उनकी देह की अनासक्तता का यह उत्तम उदाहरण है। उनकी समाधि परंडा जि. धाराशिव में है। प्रति वर्ष वहाँ उनकी पुण्यतिथि का उत्सव अति उत्साह के साथ मनाया जाता है।

❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निवेदन

श्रीरामचरितमानस प्रेमी मंडल, डोंबिवली न्यास की स्थापना का मूल उद्देश्य यही था कि, प. पू. प्रज्ञानानन्द सरस्वती का विविध साहित्य हिन्दी एवं मराठी भाषा में छपे। उस दिशा में १९८८ से १९९७ इसवी तक की कालावधि में बहुत कुछ काम हुआ है, फिर भी अपेक्षाकृत कम ही है।

'सन्ध्योपासना' इस मराठी पुस्तक को पढ़कर ही अपनी युवावस्था में आचार्य किशोरजी व्यास स्वामीजी के अभूतपूर्व व्यक्तित्व से प्रभावित हुए थे। महामंडलेश्वर स्वामी सत्यमित्रानंदजी गिरी महाराज भी उनकी सन्ध्योपासना रचना से बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने आचार्य श्री किशोरजी व्यास को सन्ध्योपासना का हिन्दी अनुवाद करवाकर छपवाने की प्रेरणा दी।

आचार्य श्री किशोरजी व्यास के परम भक्त डॉ. प्रभाकर सदाशिव पंडित ने इस ग्रंथ का अनुवाद अत्यंत परिश्रमपूर्वक किया है। उनका अपना विनम्रतापूर्वक भाव है कि, ब्रह्मीभूत स्वामी प्रज्ञानानन्द सरस्वती ने यह लीला उनसे कैसे सहज करवा ली पता ही नहीं चला।

यह मंडल उपरोक्त वंदनीय महापुरुषों का ऋण कभी भी, किसी भी रूप में चुकाने में असमर्थ है।

"सन्ध्योपासना" ग्रंथ पढ़कर ही पू. प्रज्ञानानन्द सरस्वती की ओर आकर्षित होनेवाले श्री जी. एस्. नाईक का नाम यहाँ उल्लेखनीय है। सन्ध्या एवं गायत्री साधना के अनेक उत्तम अनुभवों के कारण उन्होंने स्वामीजी की समाधि को ही गुरुरूप में स्वीकार किया है। 'सन्ध्योपासना'ग्रंथ पढ़कर ही उन्होंने अपना शेष जीवन स्वामीजी की सेवा के लिए समर्पित कर दिया है। आज वह परंडा में समाधि के निकट रहकर सेवा कर रहे हैं।

नागेश गोविंद शास्त्री हेर्लेकर
अध्यक्ष
श्रीरामचरितमानस प्रेमी मंडल
डोंबिविली

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आचमनम्

वैदिक वाङ्मय मानवीय संस्कृति का अनमोल धन है। भारतीय परंपरा और सनातन धर्म का वह मूलभूत आधार है। धर्म का उद्देश्य मनुष्य को भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के सुखों का स्थायी लाभ कराना है। और इस हेतु वेदों में जिस प्रकार वैचारिक मार्गदर्शन प्राप्त होता है, उसी प्रकार आचार का दिग्दर्शन भी मिलता है। वेद के इस आचार विभाग को ही कर्मकांड कहते हैं, और वैदिक कर्मकांड में दैनिक संध्योपासना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कर्म है।

धर्मशास्त्र में नित्य संध्योपासना का अपार महत्त्व सर्वत्र प्रतिपादित है। वैदिक अनुष्ठानों की आधारशिला संध्यावंदन है। संध्योपासना मूल है, अन्य वैदिक कर्मों को मौलिक बल एवं रस उसी से प्राप्त होता है। संध्या के बिना सभी कर्म निष्फल माने गए हैं। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण जैसे भगवदवतार भी नित्य संध्यावन्दन कर के उस की महत्ता को प्रतिष्ठापित करते रहे।

आधुनिक युग में अनेक कारणों से वैदिक कर्माचरण में शिथिलता आयी। श्रद्धावान् आस्तिक भी संध्योपासना का महत्त्व ठीक से न समझने के कारण उस की उपेक्षा करते हुए दिखते हैं। वस्तुतः संध्योपासना अत्यंत प्रभावी और उपयोगी योगानुष्ठान है। उस के अंग-प्रत्यंगों में भरा हुआ रहस्य प्राचीन धर्मशास्त्र और आधुनिक विज्ञान-दृष्टि दोनों का समन्वय कर के प्रतिपादित किया जाय तो संशयों के जाल में अटके हुए अनेक साधक निःशंक होकर संध्यावंदन में आस्था से प्रवृत्त होकर बहुत लाभ उठा सकते हैं।

यह अत्यंत कठिन कार्य आधुनिक संत ब्रह्मलीन पू. स्वामी प्रज्ञानानंद सरस्वती महाराज ने परिश्रमपूर्वक संपन्न किया है। उन का जीवन, साधन, साहित्य और शैली सब कुछ अद्भुत है जिसे पढ़कर हम विस्मित हो जाते हैं। उन का यह ग्रंथ मुझे किशोरावस्था से ही अत्यंत प्रिय और उपयोगी रहा है। संध्योपासना विज्ञान का हिंदी संस्करण उपलब्ध करा कर धर्मश्री प्रकाशन ने हिंदीभाषी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आस्तिक-जनों के लिए वैदिक साधना का महाद्वार खोला है। इस के लिए प्रचुर परिश्रम डॉ. प्र. स. पंडित, श्री. श्रीरामजी गिल्डा तथा डॉ. प्रकाश सोमण ने किये। इन सभी का हार्दिक अभिनंदनऽ! आशा है, वैदिक विद्वान, छात्र एवं साधक तथा सामान्य भाविक जन भी इस का उपयोग कर अत्यंत लाभान्वित होंगे। ग्रंथलेखक प्रातःस्मरणीय पूज्य स्वामीजी महाराज की पुण्य-स्मृति में कृतज्ञतापूर्वक विनम्र वंदन! इति।

'धर्मश्री', पुणे. भगवत्पदाश्रित
दि. १८ जुलाई ९७ **किशोरजी व्यास**

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सन्ध्योपासना विमर्श

आज से लगभग ३०, ३२ वर्षों के आसपास दण्डी स्वामी पू. प्रज्ञानानन्द सरस्वतीजी ने 'सन्ध्या' के विषय में अत्यन्त परिश्रम एवं निष्ठा के साथ 'सन्ध्योपासना' नामक मराठी में एक महत्त्वपूर्ण प्रबन्ध लिखा। इसके विषय में सर्वसाधारण समाज़ को जानकारी नहीं है; अतः इसका हिन्दी अनुवाद होना आवश्यक था। हिन्दी भाषा प्रायः सभी प्रान्तवासियों को परिचित है, अतः सभी लोग इससे लाभान्वित हो सकेंगे।

स्वामीजी ने शास्त्रीय ग्रंथों, धर्मशास्त्रों, मूल ग्रन्थों तथा परम्परा को आधार मानकर ग्रंथ लिखा है। लेखन के विषय में यथोपलब्ध विद्वानों से भी परामर्श किया गया है। आधुनिक बातों का भी यत्रतत्र समन्वय दिखाया गया है। इन बातों से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ी है।

इस प्रबन्ध का हिन्दी अनुवाद अमलनेर (महाराष्ट्र) के प्रताप महाविद्यालय के भू. पू. उपप्राचार्य श्री प्रभाकर सदाशिव पंडितजी ने किया है। यह अनुवाद मूलग्रंथ का सम्पूर्ण शुद्ध प्रतिबिम्ब है। आचार्य किशोरजी व्यास की प्रेरणा से यह अनुवाद पंडितजी ने किया है।

आज के युग में भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्वों की रक्षा परम आवश्यक है। 'सन्ध्या' तो इसका मूलाधार ही है। 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' इस वचन से सन्ध्या की नित्यकर्मों में आवश्यकता सिद्ध होती है। गायत्री जप और सन्ध्या करने से ही वर्णाश्रम की रक्षा हो सकती है। शास्त्रीय दृष्टि से 'सन्ध्या' पर विचार करने पर एक विशाल कोष बन सकता है। पू. स्वामीजी ने प्रायः महाराष्ट्र में प्रचलित रीतियों के अनुसार विचार किया है। यदि विभिन्न प्रदेश के ब्राह्मणों (द्विजों) की परम्पराओं का अध्ययन करें तो बृहत् सामग्री उपलब्ध हो सकती है। 'यह ठीक है, यह ठीक नहीं है' यह निर्णय करना बहुत कठिन है। प्रत्येक परम्परा विभिन्न वेदशास्त्र से सम्बद्ध है और उसके विधायक सूत्रग्रंथ भी भिन्न हैं; अतः कुछ भेद हो सकता है। परन्तु अर्घ्यदान, गायत्री जप आदि में कोई भेद नहीं होगा।

मैंने 'द्विज' शब्द का प्रयोग इसलिए किया है कि ब्राह्मण के बाद जिन क्षत्रियों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

या वैश्यों में अविच्छिन्न संस्कार चले आ रहे हैं, वे सन्ध्या के अधिकारी हैं। सन्ध्योपासना के बाद ही अन्य कर्म किए जाते हैं। यह तो हुई वैदिक परम्परा की बात। अब आगम या तंत्रशास्त्र के अनुसार भी देखा जाए तो विभिन्न देवताओं की उपासना में उन देवताओं का संध्योपासन आवश्यक होता है। देवी भागवत का आरम्भ भी देवी गायत्री से है– 'सर्व चैतन्यरूपांतामाद्यां विद्याञ्चधीमहि बुद्धि या नः प्रचोदयात्' यह मंत्र है।

देवी भागवत की अधिष्ठात्री गायत्री या भगवती भुवनेश्वरी है और यह श्रीविद्या का बाह्यरूप है। सप्तशती रहस्य में 'लक्ष्यालक्ष्यरूपा सा' यह कहा है। उस पराशक्ति का बाह्यरूप वैदिक गायत्री है, और अन्तःस्वरूप महाविद्या श्री विद्या है। यह बात परमाचार्य श्री भास्करराय दीक्षितजी ने अपने 'वरिवस्या रहस्य' में प्रकाश डालते हुए कही है।

भारतवर्ष एक विशाल संस्कृति का उद्यान है। उसमें अनेक तरह के पुष्प हैं, उनका अवचयन विद्वान लोग करते आए हैं। अनेक संस्कार या मंत्र जो मूलतः वेद में नहीं मिलते इनको भी मान्यता दी जाती है, क्योंकि सभी का मूल वेद तथा आगम है। उदाहरणार्थ, यज्ञोपवीत धारण का मन्त्र 'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं' यह किसी शास्त्र में उपलब्ध नहीं है, परन्तु उसकी प्रामाणिकता अक्षुण्ण है। शिष्टाचार का मूल शास्त्र ही होता है, इसलिए श्रुति, स्मृति, सदाचार, संप्रदाय को लेकर ही विचार करना चाहिए। हमारी मीमांसा की शास्त्रीय पद्धति इसी बात को पुष्ट करती है। अस्तु।

सन्ध्या के विषय में बहुत बातें हैं, परन्तु यहाँ उनका विचार करना सम्भव नहीं है।

इस परम उपादेय ग्रंथ के प्रकाशन के लिए मैं आचार्य श्री किशोरजी व्यास तथा प्रो. प्र. स. पंडितजी के प्रति हार्दिक साधुवाद निवेदन करता हूँ।

विनीत,

प्रो. बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

राष्ट्रपति सम्मानित महामहोपाध्याय

अध्यक्ष, काशी पण्डित सभा

वाराणसी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुक्रम

पृष्ठ

लेखक का निवेदन .... चौदह

अध्याय १ मानव धर्म १

अध्याय २ सन्ध्योपासना १९

अध्याय ३ उपनयन तथा पुनरुपनयन ३४

अध्याय ४ यज्ञोपवीत (जनेऊ) ३७

अध्याय ५ गायत्री की महिमा................................... ४४

अध्याय ६ सन्ध्या करने से लाभ ५९

अध्याय ७ त्रिकाल सन्ध्या न करने के फल दुष्परिणाम ७२

अध्याय ८ सन्ध्या के पात्र ७५

अध्याय ९ शौचविधि ७८

अध्याय १० आचमन.. ८२

अध्याय ११ शिखा बन्धन तथा मोचन............................ ८९

अध्याय १२ स्नान (अभ्यंग) तथा तीर्थ ९४

अध्याय १३ स्नान के पश्चात् वस्त्रधारण १०२

अध्याय १४ पवित्रक धारण १०४

अध्याय १५ मृत्तिका, भस्मादि पुण्ड्र धारण.................... १०७

अध्याय १६ प्राणायाम.. ११४

अध्याय १७ सन्ध्या का संकल्प १२१

अध्याय १८ मार्जन तथा मंत्राचमन १२३

अध्याय १९ अघमर्षण (पाप-पुरुष निरसन)..................... १२६

अध्याय २० अर्घ्यप्रदान तथा प्रदक्षिणा १२८

अध्याय २१ बैठने के लिए आसन तथा आसनविधि १३३

अध्याय २२ न्यास तथा मुद्रा...................................... १३७

अध्याय २३ गोविन्दादि नामों का अंगुष्ठादि से सम्बन्ध १४८

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय २४ प्रणव व्याहृतियों के अर्थ १५१
अध्याय २५ गायत्री का ध्यान तथा आवाहन.................. १५५
अध्याय २६ मुद्रावर्णन १५९
अध्याय २७ गायत्री जप १७१
अध्याय २८ मंत्रजापक के पालन के लिए नियम............. १८१
अध्याय २९ जप की माला १८९
अध्याय ३० उपस्थानादि १९८
अध्याय ३१ गायत्री के सकाम प्रयोग २००
अध्याय ३२ गायत्री की आरती तथा स्तोत्र..................... २०५
अध्याय ३३ सूर्यस्तोत्र २१३
अध्याय ३४ ऋषि-छंद-देवतादि निर्णय २१६
अध्याय ३५ तैत्तिरीय सन्ध्या के मंत्र-ऋषि देवता............ २२९
अध्याय ३६ केशवादि नामों का अर्थ तथा परस्पर सम्बन्ध .. २३१
अध्याय ३७ पूजा का रहस्य...................................... २४०
अध्याय ३८ वैश्वदेव के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी २४५

❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेखक का निवेदन

श्री वासुदेव चरणाम्बुज-रस-मत्तालि-गुंजितं सुज़नाः।
शृण्वन्तु सावधानं मानवता-पूर्ति-साधनं सुलभम्।।१।।
दर्शनानि न साहित्यं न वा व्याकरणं श्रुतम्।
धर्मशास्त्रं न चाऽधीतं न वेदाऽध्ययनं कृतम्।।२।।
नाऽयं ज्ञानी न वाक्ज्ञानी न शास्त्री न च पण्डितः।
धार्ष्ट्यं तथापि कृतवान् सन्ध्योपासन-लेखने।।३।।
सन्ध्यावन्दन लेखन-भारं वोढुं क्षमं परिज्ञाय।
दूषणखरहा दूषणखरतायुक्तं खरं युयोजैनम्।।४।।
निगमां महिषमुखानें वदवी गौरीशृंगी पंगुस चढवी।
तो 'सन्ध्योपासना' पुस्तका-लेखक हरि करि तुच्छ भिक्षु-का।।५।।

श्रीमानस गूढार्थ-चन्द्रिका टीका-ग्रंथ के लिखे जाने पर ऐसा लगा कि इस देह से करने योग्य कार्य संपन्न हुआ। एक श्रीरामचरितमानस के अलावा अन्य ग्रंथ का वाचन अथवा किसी ग्रंथ का लेखन मनबुद्धि के लिए बोझ प्रतीत हुआ। ऐसा होनेपर और इस संदर्भ में किसी के स्नेहाग्रह के सम्मुख न झुकने का स्वभाव होने पर भी और श्रीमान् य. गो. जोशी द्वारा गत दत्तजयंति (१९६० ई.) के अवसर पर की गई प्रार्थना को 'अभी संभव नहीं' ऐसा उत्तर दिये जाने पर और बाद में नासिक में निवास करते समय उदर रोग से मरणासन्न अवस्था से उभरने के पश्चात् लौटते समय श्री. य. गो. जोशी द्वारा पुनः प्रार्थना करने पर 'हाँ, ठीक है' ऐसा उत्तर, इच्छा न होते हुए भी प्रकट हुआ, जिसे सुनकर इस हृदय को आश्चर्य हुआ। तथा इस वृत्ति का उदय हुआ कि 'प्रेरक हृदि रघुवंश विभूषण' (तु. रा.) 'निमित्तमात्रं भव' (भ.गी.) 'आपुलिया बळे नाही बोलवत, सखा भगवंत वाचा त्याची' (तुकाराम) (अपने बल से बोलता मैं नहीं। सखा भगवंत वाचा उसकी।)

कलिकाल की प्रेरणा से और भारतीय शासक एवं विविध प्रचारकों के प्रभाव से मराठी भाषा के मुहावरे तथा कहावतें निरर्थक हो गई हैं। इन में 'सन्ध्या की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तरह कण्ठस्थ' मुहावरा निरर्थक ही नहीं तो विपरीत अर्थसूचक हो गया है। धर्म क्विनाइन की दवा और सन्ध्या करना व्यर्थ कालापव्यय हो गया है। इस प्रकार अनेक भ्रामक एवं मानवता विनाशक धारणाओं का अधिराज्य सर्वत्र फैल गया है। यह श्रीमान् जोशी नहीं जानते होंगे ऐसा भी नहीं है। ऋग्वेदी, यजुर्वेदी सन्ध्या की अनेक सार्थ एवं सस्ती किताबें बाजार में उपलब्ध हैं। ऐसा होने पर भी एक विस्तृत ग्रंथ लिखवाकर उसे स्वयं धन लगाकर प्रकाशित करने की इच्छा श्रीमान् जोशी को क्यों हुई? ख्यातिप्राप्त अनेक प्रकांड पंडितों, शास्त्रियों एवं विद्वानों की जहाँ भरमार है ऐसे पुणे नगर में होते हुए और विख्यात लेखकों की किताबें उनके नामपर तुरन्त बिक जाती हैं यह तथ्य 'प्रसाद प्रकाशन' के संचालक अच्छी प्रकार से नहीं जानते हैं यह असम्भव होने पर उन्हें किसी एक कोने में स्थित देहात में रहनेवाले अप्रसिद्ध विद्वत्तारहित, पाण्डित्यहीन, शास्त्राभ्यासविहीन, संस्कृत भाषा का मामुली ज्ञान रखनेवाले, निश्चयी, निष्कांचन ऐसे एक ६८ वर्ष के वृद्ध संन्यासी को बार बार प्रार्थना करने की इच्छा होना एक महान् आश्चर्य ही है। इस घटनाचक्र से बुद्धि का निश्चय हुआ कि यह 'प्रभु इच्छा', 'प्रभु प्रेरणा' है। केवल वाचिक कर्म की तरह ग्रंथलेखन का उत्तरदायित्व वाग्देवता द्वारा स्वीकारने पर २-४ दिनों मे ही जिनका नाम भी कभी सुना नही था ऐसे धर्मशास्त्रग्रंथ बड़े वेग से और अकल्पित रूप से प्राप्त होने लगे। वे ग्रंथ जिनके पास थे उन्हें उनका अस्तित्व और नाम भी ज्ञात नहीं था; पूर्व-परिचितं अग्निपुराण ग्रंथ को निकालने के लिए हाथ बढ़ाया तो 'संस्कार-रत्नमाला' ही हाथ में आ गई। मराठवाडा (महाराष्ट्र) के एक छोटे से देहात में जहाँ धर्मसिंधु, निर्णयसिंधु जैसे प्रचलित सुप्रसिद्ध ग्रंथ मिलना अत्यंत कठिन, वहाँ एक व्यक्ति ने फटी-पुरानी हस्तलिखित पोथियों की गठरी ही सामने लाकर रख दी जिस में निर्णयसिंधु है, इतना ही उसे मालूम था, जिसे देखने पर चूहोंद्वारा कतरी हुई एक पोथी मिली। कभी जिसका नाम भी नहीं सुना था ऐसी 'मदन पारिजात' नाम की हस्तलिखित पोथी मिल गई। इस प्रकार अनेक ग्रंथ शीघ्र गति से इकट्ठा होने लगे। 'कलौ पाराशरस्मृतिः' इतना ही नाम पहले सुना था, परंतु संस्कार रत्नमाला में 'वृद्धपाराशरस्मृतिः' और उसका सन्ध्यावर्णन से संबंधित संदर्भ विस्तार के साथ प्राप्त हो गया। इस तरह अकल्पित रूप से जानकारी इकट्ठा होती गई।

पत्रव्यवहार से डाक के द्वारा ग्रंथ और पोथियाँ मँगाना, और उन्हें समय पर लौटाने के लिए लोगोंने ५०।६० रुपये खुशी से खर्च किए। बिशप चार्ल्स लेडबीटर द्वारा प्रकाशित (१९२६ ई. रचना) जिस में गायत्री मंत्र का सचित्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनुभव का अचानक पता लगा और पुणे में वह लेख प्राप्त भी हो गया। इन कतिपय उदाहरणों से यह सुस्पष्ट होगा कि इस ग्रंथरचना के मूलाधार के रूप में भगवत्-प्रेरणा और कृपा ही है। 'ऋक्प्रातिशाख्य' यह ग्रंथ 'उव्वटभाष्यसार' के साथ अचानक प्राप्त हो गया।

उपर्युक्त कथनानुसार श्रीमान् य. गो. जोशी के आग्रह के फलस्वरूप ग्रंथ रचना हुई। उनके पास अवलोकनार्थ कच्ची प्रति भेज दी गई जिस पर कई दिनों के पश्चात् उन्होंने सूचित किया कि ग्रंथ में निषेधात्मक सूचनाएँ बिलकुल नहीं होनी चाहिए और 'सन्ध्या न करने का फल' अध्याय निकाल दीजिए। मुद्रण प्रति (प्रेस कॉपी) लिखी जाने पर फिर से उन्होंने सूचित किया कि 'जो विषय उन्हें निकाल देने योग्य लगेगा उसे निकालने की अनुमति होगी तो ही ग्रंथ छापा जायेगा, अन्यथा नहीं।'

निषेध निकाल देने का 'अर्थ लोकरंजन के लिए धर्मशास्त्र छिपाना' जो इसके लेखक को कभी स्वीकार न होगा। उनके द्वारा सूचित किया गया कि उनकी अपनी इच्छा न होते हुए यदि ग्रंथरचना हो गई है तो उसमें दिए गए निषेध के साथ वह एक वर्ष में प्रकाशित होनेवाला है। आप के नाम पर इसके प्रकाशन का श्रेय न मिले, इसलिए उन्हें इस प्रकार न छापने की बुद्धि हुई है, ऐसी नियति की इच्छा दिखाई देती है। प्रारंभ में ही यदि उन्होंने निषेध के संबंध में कहा होता तो सम्भवतः यह ग्रंथरचना ही न होती, अतः परमात्मा ने निषेध के संबंध में उनके मुख से पहले कुछ नहीं कहा। इस ग्रंथ को लिखने की प्रेरणा मात्र का श्रेय उन्हें देने की प्रभु की इच्छा होगी।

उसके पश्चात् श्रीमान् ना. भा. जोशी के एक परिचित कोल्हापूर निवासी प्रकाशक श्रीमान् गो. वा. कुलकर्णी से पूछा गया और मुद्रण प्रति को पढ़कर उसे स्वयं प्रकाशित करने की उन्होंने स्वीकृति दी। सर्व प्रथम उन्होंने ही स्वीकृति दी इसलिए उन्हें यह ग्रंथ प्रकाशन के लिए दे दिया गया।

शास्त्र की आज्ञाओं का उल्लंघन करते हुए केवल लोकरंजन का हेतु रखकर प्रवचन में अथवा लेखन में बुद्धिभेद का श्रेय लेने की लेखक को स्वप्न में भी इच्छा न होने के कारण और अपनी रुचि या अपनी कृति है इसलिए लोगों के मत्थे मढना मन-बुद्धि को कभी प्रिय न लगने के कारण सन्ध्या जैसे वैज्ञानिक विषय पर विस्तार से साधार एवं शास्त्रशुद्ध लिखना, तथा वर्तमान बुद्धिनिष्ठों के लिए आवश्यक कार्यकारण भावदर्शक, वैज्ञानिक तथा मनोविज्ञान के आधारपर यथामति विवरण स्वानुभव के आधार पर करना क्रमप्राप्त हो गया। उस पर यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लेखक अपने को सर्वज्ञ, त्रिकालज्ञ, अतींद्रियज्ञानसंपन्न आदि कुछ भी माननेवाला न होने से अनेक पांडुलिपियों और छपी पुस्तकों का अध्ययन करते हुए विषयक्रम के अनुसार सामग्री संकलित करनी पड़ी, तथा कितने ग्रंथों का आधार लेना पड़ा यह प्रारंभ में दी गई सूची से ज्ञात होगा। सन्ध्या से संबंधित विविध संस्कृत ग्रंथों से प्राप्त सामग्री का संकलन १९३० ईसवी से किया जा रहा था वह पास में था ही।

कुशाग्र, तत्त्वग्राही, चिकित्सक बुद्धि आदि 'भगवान् की देन' जन्म से ही प्राप्त हुई, साथ में निःसंकोची, लोकमत के प्रति उदासीनता आदि 'कोंकणस्थ' व्यक्ति के जातीय गुणदोष स्वाभाविक रूप से साथ में थे ही, परंतु दूसरे के प्रति तिरस्कार या दो-टूक स्वभाव आदि का अभाव पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिला। १९१४ से १८ गुजरात में निवास और प्रधान मूलधन के रूप में श्री रघुनाथ एवं सद्गुरुकृपा तथा प्रेरणा के फलस्वरूप जो स्फुरण हुआ उसे परिश्रमपूर्वक, यथामति, विषयानुसार अंकित करते हुए, मन-बुद्धि आदि के द्वारा लिखे जाने का कार्य उस विश्वसंचालक के द्वारा किया गया। इस लेखक की पात्रता कितनी है, यह प्रारंभ में दिए गए श्लोकों से ज्ञात होगा।

ग्रंथों के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि उषःकाल में स्नान, आचमन, मृत्तिका एवं भस्मधारण, पवित्रक धारण आदि कई कार्य चारों वर्णों के लिए आवश्यक बताए गए हैं। इसलिए यह भी बताना क्रमप्राप्त हुआ कि सनातन धर्म के प्रत्येक व्यक्ति को मानवता की पूर्णता प्राप्त करते हुए दुःखातीत शुद्ध सात्त्विक सुख की अनुभूति के लिए द्विजेतरों को क्या करना चाहिए? अतः यह ग्रंथ द्विजों अर्थात ब्राह्मणों तथा द्विजेतरों को भी उत्तम रीति से परमहितकारी मार्गदर्शक होगा, ऐसा पुरोहित का कार्य करनेवाले ब्राह्मणों से लेकर समाज विभिन्न स्तरों के ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर आदि ग्रंथ पढ़नेवाले व्यक्तियों को प्रतीत हुआ और उन में से कुछ व्यक्तियों ने अपना यह मत श्रीमान् य. गो. जोशी को भी पत्रद्वारा सूचित किया।

इस ग्रंथ के दो भाग हैं। पहले भाग में शौच, आचमन से लेकर सन्ध्या समाप्ति तक विविध अंगों तथा उपांगों और गायत्री जप-ध्यानरूप प्रमुख सन्ध्या के विधि-निषेध वर्णन के साथ वैज्ञानिक चर्चा की है। प्रत्येक कर्म से होनेवाले लाभ तथा उस कर्म की वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक उपयुक्तता यथामति प्रदर्शित की गई है। शास्त्रों द्वारा सूचित लाभ प्राप्ति के उदाहरण भी यथासंभव दिए गए हैं। दूसरा भाग सन्ध्या के प्रत्यक्ष कर्मकांड के लिए उपयोगी है। पश्चिमी अनुसंधानकर्ताओं के अनुभव भी कुछ अध्यायों में दिए हैं। शौच एवं स्नान का सन्ध्या से प्रत्यक्ष

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सम्बन्ध न होने पर भी शौच की शिकायत होने पर जपादि कार्य सुचारू रूप से नहीं चलता है और स्नान के बिना सन्ध्या का अधिकार प्राप्त नहीं होता, अतः इन दो अध्यायों का समावेश करना पड़ा।

वैज्ञानिक पद्धति से तैय्यार किए गए यज्ञोपवीत मिलना आजकल बहुत कठिन हो गया है तथा उनको मंत्र-संस्कारित करनेवाले भी दुर्लभ हो गए हैं, इसे जानते हुए दोनों के संदर्भ में सुलभ विधि 'यज्ञोपवीत' अध्याय में दी गई हैं। अग्निहोत्र से प्राप्त भस्म मिलना भी अत्यंत कठिन हो गया है और जो थोड़ा कभी मिल जाता है वह शुद्ध नहीं होता; इसीलिए किसी भी सन्ध्या सीखे द्विज को सहज, अत्यंत अल्प कष्ट से एकदम शुद्ध भस्म तैय्यार करने का सरल मार्ग 'मृत्तिका भस्मधारण' अध्याय में सूचित किया गया है।

आधारभूत सभी उद्धरण दिये जाते तो ग्रंथ का स्वरूप डेढ़ गुना हो जाता। अतः केवल प्रमुख श्लोकों का अर्थ देते हुए अन्य श्लोकों का केवल अर्थ प्रस्तुत किया गया है तथा मूल श्लोकों का आधार-स्रोत कोष्टक में संक्षिप्त नाम देकर सूचित किया है।

रचना के अन्तर्गत आए संस्कृत श्लोक तथा अन्य संस्कृत उद्धरण यथासंभव संधि-विग्रह के साथ प्रत्येक पद स्वतंत्र दिया है, जिसका हेतु यह है कि थोड़ा संस्कृत जाननेवालों को सारांश तो भी मालूम हो। ईशपूजा का रहस्य और वैश्वदेव की समस्याओं को दूर करनेवाली साधार जानकारी भी सन्ध्या के सभी अध्यायों के अंत में दी गई हैं।

ग्रंथ में मंत्रों को सस्वर प्रस्तुत किया गया है फिर भी किसी तज्ज्ञ के द्वारा संथा लेनी पड़ेगी ही, यह यद्यपि सत्य है; फिर भी सन्ध्या सीखनेवालों को फिर से पोथी की आवश्यकता होगी और संथा देनेवाले को भी उच्चारण करते समय संधि का विग्रह किस प्रकार करना है, इसकी कठिनाई कभी हो सकती है और गलत स्थान पर शब्दों को तोड़ने से अनर्थ हो जाता है। इसलिए पूरे मंत्रों को या आधे मंत्रों को सामासिक रूप में देने की पद्धति से अनर्थ होता है। जैसे बटू के अग्निकार्य में 'तेजसा मासमनज्मि' ऐसा एक वाक्य है, वह कभी 'तेजसामा समनज्मि' जैसा पढ़ाया जाता है। तेजसा-अग्नि के तेज से; मासम्-मेरा मुख; अनज्मि-मैं चुपड़ता हूँ या पोतता हूँ; मेरे मुख पर मैं अग्नि का तेज चुपड़ता हूँ; ऐसा उसका अर्थ है। परन्तु 'तेजसामा' पद का कुछ भी अर्थ नहीं है। ऐसे कई अनर्थ सन्ध्यादि कर्मों में मंत्र के उच्चारण में किए हुए सुनाई देते हैं। तब तप्त तेल कान में डालने जैसा प्रतीत होता था। देश-कालादि संकल्प के सरल उच्चारण में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी ऐसे ही अनर्थ किए हुए सुनाई देते थे और आज भी विशेष प्रसंगों में वैसा ही सुनाई देता है। मंत्रपुष्पांजलि, पुरुषसूक्त के मंत्र, रुद्र और कहाँतक गिनाए, सन्ध्या के मार्जन के मंत्रों में भी 'ईदमापः प्रवाहत' और कभी 'इद्यापः प्रवाहत' ऐसा उच्चार सन्ध्या पढ़ानेवाले भी करते हैं। स्वरों के सम्बन्ध में तो कुछ पूछिए मतऽ!

मंत्रों के शब्दों का तथा स्वरों के शुद्ध उच्चारण का ध्यान न रखने से कितने विपरीत परिणाम होते हैं, किसी अक्षर पर अधिक जोर देने से किस तरह अर्थ बदल जाते हैं, इसके कई उदाहरण इतिहास में अंकित हैं। इसी तरह लेडबीटर को भी शुद्ध-अशुद्ध उच्चारण के जो प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुए उन में एक उन्होंने 'ए टेंपल थॉट फॉर्म' इस लेख में चित्र के साथ प्रस्तुत किया है। प्रणव के साथ भूः भुवः स्वः आदि सात व्याहृतियों का विसर्ग सहित सुव्यवस्थित शुद्ध उच्चार करने पर शांति एवं प्रसन्नता की एक बड़ी लहर धनुष की तरह अंतरिक्ष में फैल जाती है; वहीं पर विसर्ग एवं अक्षरों का कठोर, कर्णकटु एवं गलत अक्षरों को जोर से पढ़ने पर वही लहर काँपती हुई करवत की तरह टेढ़ीमेढ़ी अंकित होती है। वह चित्र स्वतंत्र पृष्ठ पर दिया गया है जिस से यह बात स्पष्ट होगी।

अर्थज्ञान के साथ भावपूर्ण हृदय से गायत्री मंत्र का उच्चार करने पर जहाँ सूर्य है वहाँ से उच्चारण करनेवाले तक सौर तेज का प्रवाह किस तरह आता है और उसके हृदय तथा मस्तिष्क में प्रवेश करते हुए समा जाता है और बाहर निकलता है। इस संबंध में लेडबीटर के स्वानुभव 'ए टेंपल थॉट फॉर्म' नाम के लेख में 'गायत्री की महिमा' अध्याय के अंतर्गत (६२-६३) दो रेखाचिंत्रों के साक्ष दिए गए हैं।

The Mantric recitation of भूः भुवः स्वः etc; sends forth a wonderful wave of peace which prepares the way for action of गायत्री. At least, that is what it should do-, what it really does when the recitation is properly managed.

The whole series of words, when pronounced more smoothly and softly makes a wave of peace, the edge of which is a beautiful continuous curve spreading steadily outwards as in fig (a) whereas every time the harsher sound is introduced the line of this curve is broken, previsely as it would be if some one jogged the elbow of the artist who was trying it, producing an effect like that shown in fig. (b).

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

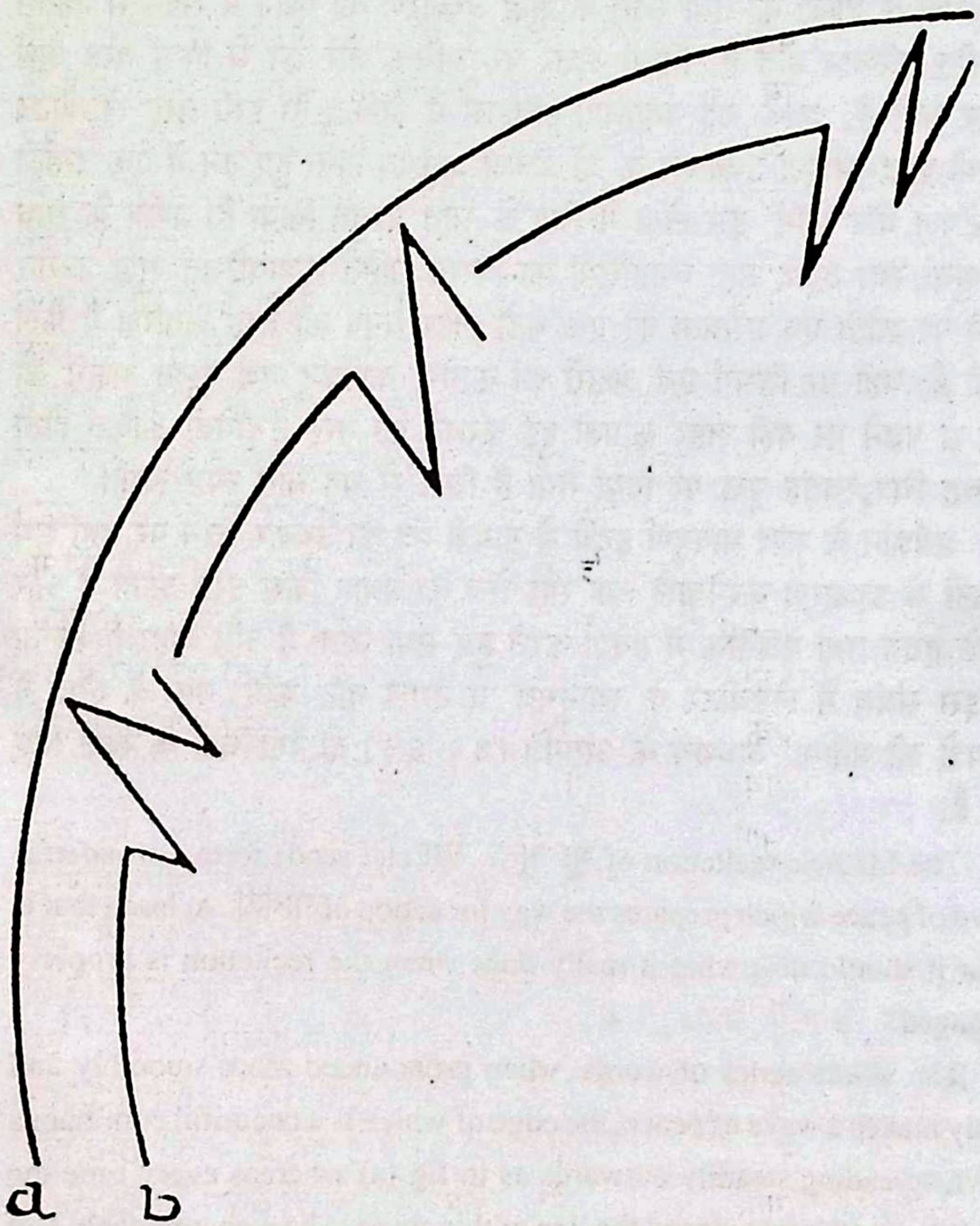

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस लेख में वे लिखते हैं कि गायत्री मंत्र जैसा अद्भुत परम प्रभावी मंत्र अन्य किसी भी धर्म में नहीं है। उन्हें मार्जन, मंत्राचमन, आसनविधि आदि मंत्रों के भी अत्यंत रमणीय भिन्न भिन्न परिणाम दिखाई दिए जिन्हें लेख में ग्रथित किया गया है। जो विभूति (भस्म) लगाई जाती है, वह भस्म न होकर तेजस्वी अग्नि को ही उँगलियों में लिया गया है, ऐसा दिखाई दिया। इस प्रकार 'अग्निः इति भस्म' यह कथन सप्रयोग सिद्ध हुआ, उसका पूरा विवरण यहाँ करना आवश्यक होगा। जो अंग्रेजी भाषा अच्छी प्रकार से जानते हैं, वे उस लेख को अवश्य पढ़े और उसका अनुवाद प्रकाशित करें। यह अनुवाद-कार्य इस पंक्ति का लेखक नहीं करेगा। क्यों कि उसके पास समय नहीं है और अंग्रेजी का ज्ञान अब बहुत मलिन हो गया है। वह लेख १९२६ अप्रैल के 'थिऑसाफिस्ट' के अंक में प्रकाशित हुआ है। उस वर्ष का अंक पुणे नगर के थिऑसाफिकल सोसायटी के ग्रंथालय में रखा हुआ है।

ऋग्वेदी सन्ध्यांतर्गत मंत्रों के ऋषि-छंद-देवता आदि निश्चित करने के लिए 'ऋक्सर्वानुक्रम' सूत्रों की सामग्री सूत्रविवरणसहित पुणे नगर के शास्त्री से प्राप्त की तथा सांगली नगर के एक वैदिक के द्वारा सर्वानुक्रम सूत्र एवं गृह्य परिशिष्ट (अ. १, खं. ८) सामग्री प्राप्त हुई। इन दो स्रोतों की सामग्री में कुछ मंत्रों में मतभेद दिखाई दिए और विवरण में छंदशास्त्र विरोधी कथन प्राप्त हुए, अतः उन त्रुटियों को छंदशास्त्रानुसार तथा अन्य प्राप्त प्रमाणों के आधार पर दूर करना पड़ा। उस संबंध में मंत्रशः साधार चर्चा 'ऋषि छन्द देवतादि' निर्णय अध्याय में की गई है। इस एक अति महत्त्वपूर्ण तथ्य से संबंधित वैज्ञानिक निर्णय दुरभिमान-पक्षाभिमान रहित होकर करने के लिए पर्याप्त पत्राचार करना पड़ा और करीब ४५ दिन केवल इसी एक अध्याय ने खा डाले। एक निरभिमानी व्याकरणाचार्य-वेदान्ताचार्य की सहायता लेनी पड़ी।

कच्चा लेखन पूर्ण हो जाने पर उसे अवलोकनार्थ पुणे में भेजने पर १४-१०-६१ दिनांक को सुबह यह वृत्ति निर्माण हुई कि सम्भवतः अग्निपुराण में छन्दशास्त्र की जानकारी शायद प्राप्त हो, तब सुबह देखने पर सद्गुरूकृपा से 'छन्द सार' और 'छन्दोजाति' यह दो अध्याय प्राप्त हुए, उनका काफी उपयोग हुआ। जैसे ऋग्वेदी सन्ध्या के दूसरे मार्जन में 'पंचमी वर्धमाना सप्तमी प्रतिष्ठा' ऐसा पाँचवें तथा सातवें मंत्र के छन्द का उल्लेख है। सन्ध्या करनेवाले अधिकांश लोगों की धारणा है कि गायत्री, अनुष्टुप आदि छंदों की तरह यह दो स्वतंत्र छन्द होंगे, परंतु वैसा नहीं है। गायत्री छंद के अनेक प्रकारों में से वे दो प्रकार हैं। ६, ७, ८ अक्षरों के तीन चरणोंवाला 'वर्धमाना गायत्री' (एक-एक अक्षर प्रत्येक चरणों में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बढ़ता है इसलिए उसे 'वर्धमाना' (गायत्री) कहा है। ८, ७, ६ अक्षरों की तीन चरणोंवाली 'प्रतिष्ठा गायत्री' ९, ९, ७ नागी; ७, ९, ९ वाराही, ६ अक्षरों की चार चरणों की चतुष्पदा, ८, ८, ८ त्रिपदा आदि गायत्री के अनेक भेद हैं। उष्णिग्, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, अनुष्टुप और जगती इनके भी विविध प्रकार हैं। त्रिपदा गायत्री छंद प्रथम, उसके चौबीस अक्षर हैं, तथा आगे चलकर प्रत्येक छंद में ४।४ अक्षर अधिक होते हैं, इसप्रकार कुल २१ मुख्य छंद हैं; अंतिम 'उत्कृति' जिस में १०४ अक्षर होते हैं। 'ऋक प्रातिशाख्य' तथा पिंगल सूत्र मिलने से बहुत ठोस प्रमाण मिल गया।

तैत्तिरीय में मंत्रों के ऋषि-छंदादि का उच्चार करने की पद्धति नहीं है, ऐसा सांगली नगर के अग्निहोत्री तथा मुंबई नगर के एक तैत्तिरीय शास्त्री द्वारा डाक से सूचना मिली। निर्णयसागर ग्रंथ में भी नहीं दिए हैं। तथापि बृहत्पाराशर स्मृति, संवर्त स्मृति, अग्निपुराण आदि ग्रंथों में कई तैत्तिरीय मंत्रों के ऋष्यादि दिये गये हैं। तैत्तिरीय नारायणोपनिषद् में गायत्री तथा प्रणव इनके प्राप्त होते हैं। तैत्तिरीय कालाग्निरुद्र उपनिषद् में तो उस उपनिषद् के भी ऋषि, छंद, देवता दिए हुए प्राप्त हुए। तैत्तिरीय शुकरहस्योपनिषद् में तत्, त्वम्, असि इन तीन पदों के ऋषि, छंद, देवता, बीज, शक्ति, कीलक और विनियोग तथा उनके न्यास एवं ध्यान सहित निर्देश प्राप्त होते हैं। ऋष्यादि का ज्ञान तथा उच्चारण आवश्यक होने की बात जिस बृहत्पाराशरादि स्मृतियों में तथा अन्य पुराणों में कही गई हैं वहाँ भी तैत्तिरीयों का अपवाद नहीं किया गया है। संस्कार रत्नमाला ग्रंथ में तथा तैत्तिरीय सन्ध्या प्रयोग में गलत क्यों न हो किन्तु सभी मंत्रों के ऋष्यादि दिए गए हैं।

इन सभी प्रमाणों से निःसंदेह निश्चय हो जाता है कि तैत्तिरीयों ने भी सन्ध्या, यज्ञ, याग आदि कर्मों मे ऋषि, छंद, देवता तथा विनियोग इनका उच्चार करना अत्यंत आवश्यक कर्म माना है, तब इस अप्रसिद्ध संन्यासी के निर्णय और मत की क्या महत्ता है? अतः जगद्गुरु श्रीमत् शंकराचार्य शृंगेरी मठ को टूटे फूटे संस्कृत में पत्र लिखने का साहस करना पड़ा। उनका पता मालूम न होने से पंचवटी में स्थित शृंगेरी मठ के म्हैसूर निवासी मॅनेजर द्वारा उस पत्र को भेजना पड़ा। श्रीमद् शंकराचार्य द्वारा जो साधार निर्णय प्राप्त हुआ, उससे इस संन्यासी के मत की पुष्टि की गई है, इसलिए तैत्तिरीय मंत्र के ऋष्यादि उत्तरार्ध में दिए गए हैं।

"आपस्तंबगृह्यसूत्र-भाष्ये सुदर्शनकृते... ऋष्यादि स्मरणमावश्यकमिति

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रतिपादितम्। वक्तव्यं छन्द आदौ तु ततश्चर्षिप्रकीर्तितः। देवताविनियोगश्च तैत्तिरीयकपाठकैरिति स्मृतौ तैत्तिरीयैरपि अवश्यं ऋष्यादिस्मरणं विहितमस्ति।'' यह उन प्रमाणपत्रों में से एक परिच्छेद है।

प्रमाणपत्र की (नकल) प्रति
श्री शृंगेरी जगद्गुरु महासंस्थानं, शारदापीठम्
शृंगेरी, कडूर, मैसूर स्टेट
Camp बेंगलूरु
Date ३.१०.६१

श्रीमत्परमहंस प्रज्ञानानन्द सरस्वती-स्वामिपादेषु

सादरा सनतिका विज्ञप्तिः

भवद्भिः सभक्तिश्रद्धं लिखितं विज्ञप्ति पत्रमस्मद्धस्ततलं प्रापत्, यथावसरं श्रीगुरुचरणारविन्दयोः निवेदितं च। तैत्तिरीयक सन्ध्याविषये ऋष्यादिस्मरणं उच्चारण सहितं कर्तव्यं वा नवेति संशये निर्णयः श्रीचरणैराज्ञापितः इत्थं वर्तते।

तैत्तिरीयके ऋष्यादिकं मंत्रादौ वक्तव्यमेव, तत्र प्रमाणं तु, निरुक्त भाष्योदाहृत-ब्राह्मणवाक्यम्, यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो दैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा, स्थाणुं वर्च्छति गर्ते वा पात्यते प्रमीयते वा पापीयान् भवति इति। अथर्ववेदे च गणकः ऋषिः निचृद्गायत्रीछन्दः गणपतिर्देवता इति वचनं; पारिजाते 'आर्ष छन्दो दैवतं च विनियोगस्तथैव च। वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विपश्चिता' इति वचनं, एवमेतादृशानि बहूनि सर्वशाखिभिरपि ऋष्यादिकं वक्तव्यमेवेति प्रतिपादयन्ति, स्पष्टं तैत्तिरीयाणां नारायणोपनिषदि ऋष्यादिकं स्मर्यते, ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म। अग्निर्देवता ब्रह्म इत्यार्षम्। इति, तथा गायत्रिया गायत्रीच्छन्दो विश्वामित्र ऋषिः सविता देवता इत्यादिना ऋष्यादिस्मरणम्। आपस्तंब-गृह्यसूत्रभाष्ये सुदर्शनकृते पूर्वोदाहृत छान्दोग्यब्राह्मणवाक्यमेवोदाहृत्य ऋष्यादिस्मरणमावश्यकमिति प्रतिपादितम्।

वक्तव्यं छन्द आदौ तु ततश्चर्षिः प्रकीर्तितः। देवता विनियोगश्च तैत्तिरीयकपाठकैरिति स्मृतौ, तैत्तिरीयैरपि अवश्यं ऋष्यादिस्मरणं विहितमस्ति। भट्टभास्करकृते रुद्रभाष्ये मंत्रभेदं विना पाठे अग्निः काण्डर्षि महाविराट्छन्दः शम्भुर्देवता इति वक्तव्यमिति उक्तम्, मंत्रभेदपक्षे च ऋष्यादयः भिन्नभिन्नाः उक्ताः इदानींतनसांप्रदायेपि अस्य रुद्रस्य प्रश्नस्येत्यारभ्य द्वे जगत्यौ इति पर्यंतं ऋष्यादिकं पठ्यते इति त्रिशंकोर्वेदानुवचनम् इति शिक्षावल्ली मंत्रस्य शांकरभाष्ये ऋषिस्मरणं कर्तव्यमित्येतत्सूचनार्थे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

त्रिशंकोर्नामग्रहणमिति उक्तम् 'न च स्मरेदृषिं छन्दः श्राद्धे वैतानिके मखे। ब्रह्मयज्ञे तथा तद्वदोंकारं तु विवर्जयेदितिवचनेन कदाचित् ऋष्यादिस्मरणं प्रतिषिध्यते तथा तैत्तिरीयाणामृष्यादि वदन प्रतिषेधकं वचनं नोपलभ्यते, तद्वदत्र-प्रायश्चित्त बोधकं वा वचनं समस्ति; अतः तैत्तिरीयैरपि ऋष्यादिस्मरणं उच्चारणपूर्वकं कर्तव्यमेव प्रामादिकमेवास्मरणमृष्यादीनाम् इति शम्

के. शामभट्ट
आस्थान पण्डितः,
श्रृंगगिरिजगद्गुरु संस्थानम्।
C/o. N. लक्ष्मीनारायण शास्त्री,
प्रायव्हेट सेक्रेटरी श्रीमज्जगद्गुरु
श्री श्रृंगेरी मठ, श्रृंगेरी-कडूर.

वेदपठन-अध्यापन तथा कर्म मंत्रार्थज्ञान के साथ ही होना चाहिए।

अनुष्ठानमर्थावबोधपूर्वकमाचरणीयम्। तथा सति महत्फलं भवति नेतरथा। अत एव छान्दोग्ये श्रूयते, 'यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवति' इति। विद्या सम्यगर्थज्ञानम्। श्रद्धाऽऽ स्तिक्यबुद्धिः। अर्थज्ञाने सति समग्रं फलं भवति इत्याशयेन वीर्यवत्तरमित्युक्तम्।

निरुक्तेऽपि-स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं यो न विजानात्यर्थम् योऽर्थज्ञ इत्सकलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा' इति।

अर्थविहीनपठनम्

स्मृत्यन्तरे– यदधीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैधो न तज्ज्वलति कर्हिचित्।

लघुव्यासोऽपि– 'वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्मशास्त्रस्य चापि यत्। अजानतोऽर्थ **तत्सर्वं तुषाणां कण्डनं यथा**।' तुषकण्डनवद्वृथा प्रयास एव इत्यर्थः

यथा पशुर्भारहारी न तस्य भजते फलम्। द्विजस्तथाऽर्थाऽनभिज्ञो

न वेदफलमश्नुते'। वैदिक कर्म फलभाग् न भवति। अत एव **व्यासः** 'ज्ञात्वा ज्ञात्वा च कर्माणि जनो यो योऽनुतिष्ठति। विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा नाऽविदुषो भवेत्।।' अत एव तेषां पूजनमपि न कार्यमिति स एवाह-

पाठमात्ररतान् वेदे द्विजातींश्चाऽर्थवर्जितान्। पशूनिव न तान् प्राज्ञो वाङ्मात्रेणाऽपि पूजयेत्। '**अर्थज्ञानसंपन्नस्य फलमाह मनुः** वेद शास्त्राऽर्थतत्वज्ञो यत्र, यत्राश्रमे वसेत्। इहैव लोके तिष्ठन् स **ब्रह्मभूयाय कल्पते**।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हारीतोऽपि।

–मंत्रार्थज्ञो जपन् जुहून् तथैवाऽध्यापन् द्विजः। अधीत्य यत्किंचिदपि वेदार्थाधिगमे रतः। **ब्रह्मलोकमवाप्नोति धर्मानुष्ठानतो द्विजः।।**

न वेदपाठ मात्रेण संतुष्टः स्याद् द्विजोत्तमः।
पाठमात्राऽवसायी तु पंके गौरिव सीदति।।
योऽधीत्य विधिवद् विप्रो वेदार्थं न विचारयेत्।
स सान्वयः शूद्रसमः, पात्रतां न प्रपद्यते।।

तस्मादकरणे प्रत्यवायश्रवणात् करणे चाऽभ्युदयसंभवाद् अर्थज्ञानमावश्यकमिति सिद्धम्।। इति (श्रीकृष्ण पण्डित विरचितसन्ध्याभाष्ये, अधिकविस्तरस्तत्रैव द्रष्टव्यः)

उपर्युक्त श्रुति-निरुक्त स्मृत्यादि वचनों का सार इतना ही है कि अर्थज्ञान के बिना वेदों का पठण करना बहुत बड़ा दोष है, यह सन्ध्या न करने जैसा ही है। अर्थ के साथ वेदपठण अभ्युदयकारक है। अल्प क्यों न हो अर्थ के साथ वेदपठण करते हुए धर्मानुष्ठान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है, अतः कम से कम नित्य कर्मों के मंत्रों का अर्थ जानना तो आवश्यक है। उन मंत्रों का उच्चार अर्थ की ओर ध्यान देते हुए करने से द्विज-ब्राह्मणों को **अभ्युदय एवं निश्रेयस् की प्राप्ति सहजता से होगी ऐसा विश्वास है।** 'स्मृतिमुक्ताफल' ग्रंथ में भी उपर्युक्त कथन की तरह ऋष्यादि की आवश्यकता सूचित की गई है।

विशेष- इन दोनों 'उद्धरणों की विशेषताएँ अधोरेखित की गई हैं। अग्निपुराण से प्राप्त जानकारी का छन्दोनिर्णय करने में कैसे उपयोग हुआ इसे कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट करना आवश्यक है।

उदाहरण – १

'सर्ववर्णे... सरस्वति' इस १६ अक्षरों के (८+८) मंत्र का छंद सं.र.मा. ग्रंथ में द्विपदा गायत्री दिया है, परन्तु 'द्विपादसूर्य वस्वर्णेः' (अग्नि पुराण) ऐसा द्विपद गायत्री का लक्षण है। सूर्य= १२ + वसु = ८; **अर्णे**= अक्षरों का द्विपद गायत्री छंद होता है, अतः इसे द्विपद गायत्री कहना अनुचित सिद्ध होता है। ८/८ अक्षरों के तीन चरणों का त्रिपद गायत्री छंद प्रसिद्ध है, इसलिए ८/८ अक्षरों के दो चरणों को द्विपद गायत्री नाम तर्क के आधार पर दिया गया। ८/८ अक्षरों के चार चरणों का मुख्य अनुष्टुप् छंद होता है, अतः यह 'द्विपाद अनुष्टुप्' छंद सिद्ध हुआ। इसे प्राजापत्य-अनुष्टुप् ऐसा ऋक्प्रातिशाख्य के पटल १७ में कहा गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उदाहरण – २

'भद्रं नो अपि वातय मनः' इसका 'एक पदा विराट्' ऐसा उल्लेख सूत्रविवरण में किया गया है। एक चरण का विराट् छंद कहने से पूर्ण बोध नहीं होता। 'न्यूनाधिकेन एकेन' (अक्षरेण) 'निचृद् भुरिजौ,' और 'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ' ऐसे पिंगलसूत्र हैं। एक अक्षर कम होने से उस छंद को निचृद् यह उपपद लग जाता है। एक अक्षर अधिक होने पर उसे 'भूरिक्' उपपद लगाना चाहिए। दो अक्षर कम होंगे तो विराट् और दो अधिक होनेपर स्वराट् उपपद लगाना चाहिए। यहाँ १० अक्षर होनेपर एकपदा विराट् कहा है; अर्थात् जिस छंद के एक चरण में १२ अक्षर होते हैं उसका यह एकपाद है। इसलिए यह एकपदा विराट्जगती छंद है क्योंकि 'जगत्याः आदित्याः पादः' (अग्नि पु.) आदित्य याने १२, जगती छंद का प्रत्येक पाद १२ अक्षरों का होता है। पिंगलसूत्र भी यही तय करता है।

इस प्रकार से ही तैत्तिरीय मंत्रों और अन्य मंत्रों के छंदादि का निर्णय किया गया है। निवेदन में इतने उदाहरण पर्याप्त हैं।

मंत्रों के अर्थ तथा लेखन पद्धति।

मंत्रों के अर्थ, खण्डराजदीक्षितकृत भाष्य, बह्वृचसन्ध्यापद्धति भाष्य; भट्टोजी दीक्षितकृत्य भाष्य, (उनके द्वैत मतों को छाड़कर) और श्रीकृष्णपंडितकृत भाष्य के समन्वय से दिए गए हैं। किस शब्द का कौनसा अर्थ है यह न बताते हुए केवल सरल अर्थ देने से मंत्र कहते कहते ही अर्थ सहज ध्यान में आ जाना सुसंस्कृत, पढे-लिखे लोगों के लिए, स्नातकों के लिए भी सम्भव नहीं होगा, तथा दिए गए अर्थों से कुछ अधिक लाभ नहीं होगा, केवल अर्थ देकर रिक्तस्थानपूर्ति करने जैसा होगा, अतः भाष्य पद्धति से मंत्रों के शब्द (अन्वयक्रम से) कोष्ठक में देते हुए उन्हीं के सामने उन शब्दों का साधारण एवं विशेष अर्थ दिया गया है। मंत्र का उच्चारण करते हुए अर्थ के समझ में आने से भाव का उद्दीपन होना सुलभ होगा, अर्थ तथा उस अर्थ के समझ में आने से भाव का उद्दीपन होना सुलभ होगा, अर्थ तथा उस अर्थ के अनुसार भाव होने से मंत्र के द्वारा होनेवाला लाभ परिपूर्ण होगा। यह लेडबिटर साहब ने भी कहा है।'निर्णयसागर पोथियों में छपा है उसी प्रकार शब्दों को यथासंभव न तोड़ते हुए, एक बड़े समास की तरह मंत्रों को दो चरणों में छापना, छपाई की दृष्टि से भले ही सुविधाजनक हो फिर भी मंत्र कहते समय कहाँ रुकना है यह समझ में न आने से पूर्वकथनानुसार चाहे जहाँ शब्द तोड़-मरोड़ दिए जाते हैं, इसलिए, भाष्य पद्धतिनुसार यथा संभव शब्द अलग तोड़कर मंत्र दिए हैं। उदाहरणार्थ-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'आपोहिष्ठा मयोभुवस्तानऊर्जेदधातन' ऐसा न देते हुए आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन' ऐसा दिया गया है।

कोई कहेगा कि ग्रंथ का विस्तार क्यों किया है? कोई कहेगा कि और अधिक अनुभव दिए जाते तो अच्छा होता। एक बार ही सन्ध्या करनेवालों की संख्या दिन प्रतिदिन कम हो रही है, तब त्रिकाल सन्ध्या, अनेक न्यास, मुद्रा, आदि क्यों कि। जिन स्मृति-पुराणकार ऋषि-महर्षियों ने कलिप्रभाव का पहले ही वर्णन कर रखा है, उन्हें इस लेखक की अपेक्षा बहुत अधिक अक्ल थी। उन्होंने कह रखा है इसलिए और शास्त्रविरुद्ध, निराधार, काटछाट करना ग्रंथलेखक होने के कारण दोषयुक्त होता और 'न बुद्धिभेदं जनयेत्' ऐसी भगवान की आज्ञा होने से कम से कम जितना अनिवार्य था उतना ही दिया गया है। ग्रंथ पढ्नेवाले हर एक को ऐसा करते नहीं बना फिर भी ऐसा विश्वास है कि पक्षाभिमानहरित हृदय से साम्प्रदायिक तथा परंपरागत वृथाभिमान त्यागकर जो कोई इस ग्रंथ के पूर्वार्ध का पठन-मनन करेंगे उन में से अधिकांश सन्ध्या न करनेवाले द्विज सन्ध्या करना प्रारंभ कर देंगे।

कुछ लोग कहेंगे कि संन्यासियों ने गायत्री मंत्र का त्याग किया होता है, अतः गायत्री मंत्र तथा सन्ध्या से सम्बन्धित ग्रंथ लिखना क्या अधर्म नहीं है? पैसे लेकर लिखा होता तो घोर पातक हो जाता, क्योंकि संन्यासियों को रुपये, नोट या सोना आदि देनेवाले भी नरक में जाते हैं, कि श्रीमदाद्य शंकराचार्यजी ने 'गायत्री-भाष्य' लिखा है; यदि उन्होंने अधर्म किया होगा तो वह दोषार्ह नहीं है।

सन्ध्या विस्तार

सन्ध्यान्तर्गत कर्मों का कम से कम विस्तार करने का हेतु ध्यान में रखा जाने से तथा व्यक्तिगत शास्त्राधारसहित इच्छा संबंध कदापि न आने देना उचित होने से, अनेक स्मृति-पुराणादि ग्रंथों का अवलोकन करना पड़ा। उस मंथन से जितना आवश्यक सिद्ध हुआ उतना ही प्रयोग में दिया गया है। आचमन तथा प्राणायाम और ऋग्वेदी सन्ध्यान्तर्गत मार्जनों को हटाने का एक भी प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ। परन्तु तैत्तिरीय सन्ध्या के दूसरे मार्जन में 'पवमानः सुवर्जनः' इस १७ मंत्रों के अनुवादक का भट्टोजी दीक्षित तथा श्रीकृष्ण पंडित इनके भाष्यों में तथा स्मृतियों में केवल निर्देशतक प्राप्त नहीं हुआ, अतः वे १७ मंत्र छोड़ दिए हैं; जिनकी इच्छा होगी उनके लिए छपे ग्रंथों में तथा पुरानी पोथियों में मिल जाएंगे। यजुर्वेदी सन्ध्या का प्रयोग मा. आ. सू. इनकी संक्षिप्त सन्ध्या से लिया गया है। परन्तु उसमें 'विष्णुर्विष्णुः। वाग्वाक्' आदि से किए जानेवाले कर्म को स्मृत्यादि में कोई प्रमाण नहीं मिला, इसलिए उतना ही नहीं लिया गया। उनका संक्षिप्त प्रयोग मूल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्वरूप में ही बड़ा ग्राह्य है।

अर्घ्यदान में कुछ वृद्धि करनी पड़ी, क्योंकि अस्त्रोपसंहरण अनेक स्मृतियों, देवी भागवत तथा कई सन्ध्याभाष्यों में सहेतु दिए गए हैं तथा आश्वलायन वचन (सं.र.मा. पृ. २२६) में भी उसी अर्थ का वचन प्राप्त हुआ अतः उसे देना पड़ा। फिर भी वह मंत्र देते समय मध्वाचार्य भाष्यादि में दिए गए बड़े तथा सन्ध्या प्रयोग में सम्भवतः प्राप्त न होनेवाले मंत्र न लेते हुए, केवल छोटा तथा सन्ध्या का ही मंत्र 'गायत्री शिरोमंत्र' लिया गया। ग्रंथकार कहते हैं कि अर्घ्य देना याने मंदेह राक्षसों के वध के लिए गायत्री अस्त्र को फेंकना या छोड़ना है। छोड़ा गया अस्त्र कार्य पूरा करने पर लौट आवे इसलिए अस्त्रोपसंहार मंत्र का उपयोग करना ही पड़ता है। महाभारत के युद्धवर्णन से भी यही सिद्ध होता है, अतः उस विधि को दिया गया है।

न्यास तथा मुद्रा

कुछ लोग कहेंगे कि न्यास तथा मुद्रावर्णन क्यों दिया है? बृह. पारा. (कलौ पाराशरस्मृतिः); दे. भा; गुरुचरित्र तथा अन्य कुछ स्मृतियों में तो २४ अक्षरों के ऋषि, छंद, वर्ण(रूप), शक्ति, कला तथा न्यासों का फल इनका भी अन्तर्भाव किया गया है, परन्तु वह वर्णन अग्नि पु; ब्रह्म पु. पद्म पु. आदि के सन्ध्यावर्णन में नहीं है। इन सभी ग्रंथों में जो समानरूप से है उतना ही लिया गया है। वर्णदेवताओं के नामों में थोड़ा भेद दिखाई दिया और वर्णों के तत्त्वों के उल्लेख में कुछ गलतियाँ तथा असावधानी दिखाई दी, परन्तु पद्मपुराण तथा अग्निपुराण के वर्णन बिलकुल एक जैसे तथा निर्दोष दिखाई दिए, अतः उन्हें ही लिया है।

गायत्री का ध्यान एवं आवाहन

पंचमुखी गायत्री का ध्यान प्रमुख है। तीन सन्ध्याओं में गायत्री-ब्रह्माणी, सावित्री-रुद्राणी और सरस्वती-वैष्णवी तीनों, उसी के तीन भिन्न स्वरूप हैं। ध्यान तथा आवाहन प्रकरण देखिए। आवाहन के 'आयातु वरदा देवी' आदि तैत्तिरीय मंत्र, दो ऋग्वेदी सन्ध्या-भाष्य में हैं। एक में नहीं हैं। उस में केवल 'आगच्छ वरदे देवि' यही है। प्रयोग में दोनों दिए हैं। अपनी इच्छानुसार कीजिए। तैत्तिरीय सन्ध्याभाष्य में दोनों प्रकार दिखाई दिए। प्रथम आचमन, प्राणायाम होने के बाद, संकल्प से पहले आवाहन है। यह उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि किसी देवता को निमंत्रित कर उसकी पूजा, ध्यान, जप आदि न करते हुए साधक का मार्जन, मंत्राचमन तथा अर्घ्य देना होनेतक उसे रोक रखना याने देवता का अनादर करना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ही है। आवाहन करते ही देव-देवता आ जाते हैं। तथा योग्य साधक को खुली आँखों से या बंद आँखों से दिखाई देते हैं–

जिन भाष्यकारों ने पहले उसे दिया है उनके नाम भी उसमें नहीं हैं तथा प्रकाशकों को वे प्राप्त नहीं हुए हैं। इस के विरुद्ध भट्टोजी दीक्षित जैसे सुप्रसिद्ध धर्मशास्त्र पंडितों ने, हरिभक्तों ने तथा श्रीकृष्ण पंडितजी ने अपने भाष्य में आवाहन, अर्घ्यप्रदान प्रदक्षिणा के पश्चात् ही दिए हैं। सं. र. माला में गोपीनाथभट्टजी ने भी वैसा ही दिया है। यजुर्वेदी सन्ध्या में भी वह प्रारंभ में नहीं है। इसलिए अर्घ्य तथा प्रदक्षिणा होने पर ही आवाहन करना उचित होने पर भी इस लेखक का कोई दुराग्रह नहीं है। 'येनेष्टं तेन गम्यताम्' 'ध्यातस्य पूजां कुर्वीत' ऐसा नियम होने से और ग्रंथकारों ने नित्य सन्ध्या में पंचोपचार मानसपूजा ही बताई होने से उस पूजा की बिलकुल संक्षिप्त विधि को निर्देशित किया है। इसका कारण यह है कि मानसपूजा से चित्त की एकाग्रता तुरन्त साध्य होती है। बाह्य पूजा से ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इच्छा हो तो फोटो की पंचोपचार पूजा करनी चाहिए। मुद्रा के सम्बन्ध में विशेष जानकारी 'न्यास तथा मुद्रा' अध्याय में देखिए।

पंचमुखी गायत्री के वर्णन में वरमुद्रा तथा अभय मुद्रा हैं। मंत्र महार्णव में उनके लक्षण इसप्रकार प्राप्त हुए हैं। 'अधःकृतो दक्ष हस्तः प्रसृतो वरमुद्रिका।।उर्ध्वीकृतो वामहस्तः प्रसृतोऽभयमुद्रिका।।' परन्तु बाजार में प्राप्त होनेवाले गायत्री के चित्रों में ये दो मुद्राएँ बिलकुल विरुद्ध दिखाई देती हैं। ब्रह्मर्षि सातवलेकर से पूछने पर कि क्या इन लक्षणों के विरुद्ध कोई प्रमाण है?' तब उनके दिनांक-२३-१२-६२ पत्रोत्तर में उन्होंने लिखा,'देवताओं के प्रचलित चित्र शुद्ध नहीं हैं। इस में चित्रकार का भी दोष हो सकता है, परन्तु निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता। आप की खोज अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भगवान् इस कार्य में आप को सुयश दें यही प्रार्थना है।' गायत्री के वर्णन में मंत्रमहार्णव के लक्षणों के अनुसार मुद्राएँ दी गई हैं। म.म. गोपीनाथशास्त्री कविराज (M. A., Litt) इन्हें भी इस सम्बन्ध में दि. २१-१-६२ को पत्रद्वारा पूछा गया है।

शापविमोचन

जो तांत्रिकों के नहीं हैं ऐसे ग्रंथों में शापविमोचन आवश्यक बताया गया है। अनेकों ने बडे बडे चार मंत्र दिए हैं। किसीने एक ही मंत्र कहा है और देवी भागवत में न्यासादिकों का काफी विस्तार करते हुए शाप देनेवालों का स्मरण ही शापविमोचन में कहा है। अतः उतना ही दिया है। गायत्री को ब्रह्मा, विश्वामित्र,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वसिष्ठ और वरुण इन चारों के शाप हैं।

उपस्थान

बृ.पाराशर.; अग्नि-पु.; ब्रह्म पु; कूर्म पु; पद्म पु; देवीभागवत, आदि ग्रंथों में तथा ऋग्वेदी दो भाष्यों इन में दी गई उपस्थान मंत्रों की संख्या और प्रचलित पोथियों में प्राप्त संख्या में बहुत बड़ा अन्तर है। बृ.पारा. तथा देवी भागवत इन में न्यासादि का काफी विस्तार करते हुए उपस्थान के ३/४ से अधिक मंत्र नहीं हैं। बौद्धायनों ने सायं उपस्थान में 'इमं मे वरुण' 'तत्त्वा यामि इति द्वाभ्यामेव'; प्रातः सन्ध्या में 'मित्रस्य चर्षणीधृतो' 'मित्रो जनान् यातयति प्रजानन् इति द्वाभ्याम्' ऐसा कहा है। तथा इसी प्रकार ही अन्य ग्रंथों में २/३ अथवा कहींपर चार मंत्र ही आवश्यक बताए हैं। परन्तु सभी ने केवल उन्हीं मंत्रों को नहीं दोहराया है। बह्वृच- सन्ध्याभाष्य में तो 'जातवेदसे' 'तच्छंयोरावृणीमहे' और 'नमो ब्रह्मणे' ये तीन ही मंत्र दिए हैं तथा मध्याह्न एवं सायंसन्ध्या विशेषतः निर्देशित करते हुए केवल मंत्राचमन के अलग मंत्र दिए हैं और 'शेषं प्राग्वत्' शेष सभी पहले की तरह, अर्थात् प्रातःसन्ध्या की तरह ऐसा कहा है। सायंसन्ध्या के उपस्थान मंत्र वरुण देवता के हैं, इसलिए कुछ पोथियों में 'वरुणोपस्थाने विनियोगः' ऐसा दिया है; परन्तु वह श्रुति-विरोधी होने से त्याज्य है। सायं उपस्थान रात्रि में ही करना चाहिए, सूर्यास्त के समय में अर्घ्य तथा बाद में तीन घटिका जप तथा उसके पश्चात् उपस्थान करना चाहिए। (यजुर्वेदी सन्ध्या में अर्घ्यदान के तुरन्त बाद उपस्थान दिया है तथा बाद में जप दिया है।)

श्रुतिप्रमाण इसप्रकार हैं। 'वारुणीभिरादित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणम्' (सन्ध्याभाष्य समुच्चय-पृ. १४२) तैत्तिरीय सन्ध्याभाष्य में चर्चा के बाद यह सिद्धान्त कथन होने से तैत्तिरीय सन्ध्या की पोथियों में तथा ग्रंथों में भी 'वरुणोपस्थाने विनियोग;' ऐसा कहा है! निर्णयसागर ऋग्वेदी सन्ध्या वर्णन में भी वही गलती हुई हैं। यजुर्वेदी त्रिकाल सन्ध्या में उपस्थान मंत्र सूर्य देवता के ही हैं, अतः वहाँ यह प्रश्न उपस्थित नहीं होता है।

सूचना- उपस्थान में अधिक मंत्र नहीं कहना चाहिए ऐसा निषेध मात्र नहीं है, सौरसूक्त आदि भी कहे जा सकते हैं।

केशवादि चौबीस नामों के विविध अर्थ देते हुए उनके परस्पर संबंध क्या हैं यह भी सिद्ध किया है। तथा 'अंगुष्ठाग्रे तु गोविन्दं तर्जन्यां तु महीधरम्' इस करन्यास के गोविन्दादि नाम तथा अंगुष्ठादि स्थानों का क्या संबंध है यह भी पूर्वार्ध के अध्यायों में सहज स्फुरण के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ओंकार तथा उसके 'प्रणव' आदि पर्याय एवं सात व्याहृती इनके विविध अर्थ एक अध्याय में दिए गए हैं। अर्थ की दृष्टि से सात व्याहृतियों का पूर्वापर संबंध दिखाया गया है।

त्रैवर्णिक होते हुए 'यज्ञोपवीत' संस्कार न होने से जो 'व्रात्यं बन गए हैं उन्हें श्री सविता एवं गायत्री की उपासना वेद मंत्रों से करने नहीं आती, इसलिए उनके लिए सूर्योपनिषद् का पद्यानुवाद और गायत्री स्तोत्र तथा गायत्री की आरती जो पहले ही लिखी गई है, तथा अन्य कुछ सूर्य स्तोत्र, गायत्री कवच और पौराणिक स्तोत्र एक अध्याय में दिए हैं। ब्राह्मणेतरों को भी यथाधिकार उसका उपयोग करना चाहिए।

गायत्री विसर्जन

जहाँ आवाहन किया गया है, वहाँ उस कर्म के अन्त में आवाहित देवताओं का विसर्जन करना ही चाहिए। अन्यथा 'मंत्राधीनं तु दैवतम्' होने से आए हुए भगवान् या देवता नहीं जाते हैं। क्यों नहीं जाते हैं ऐसा पूछने पर उत्तर मिला कि जाने की विधिवत अनुमति नहीं मिली है। परन्तु आश्चर्य की बात है कि ऋग्वेदी पोथियों में वैश्वदेवरूप देवयज्ञ के प्रयोग में अग्नि का आवाहन दिया हुआ होकर भी विसर्जन नहीं है। अन्य किसी भी यज्ञ में, होम में अग्नि का पूजन होने पर 'गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ' इस मंत्र से विसर्जन करते हैं। यजुर्वेदी ग्रंथों में है, ऋग्वेदी वैश्वदेव में क्यों नहीं इसका स्पष्टीकरण शास्त्रज्ञों को करना चाहिए और उसे प्रकाशित करना एक महत्त्व का कर्तव्य है।

सूचना- शास्त्रकारों ने जो निषेध सूचित किए हैं उन्हें देना धर्मशास्त्र से संबंधित ग्रंथलेखक का कर्तव्य होने से विधि के साथ निषेध को भी देना पड़ा। विधि का पालन और निषेधों का त्याग करना यही धर्म का पालन होता है। शास्त्रकारों ने अथवा संतों ने ग्रंथ में जो निन्दा की है वह व्यक्ति की निन्दा न होकर योग्य व्यक्ति की प्रशंसा व्यक्त करने के लिए होती है। श्री ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं, "तैसा अशेषार्था। जो गोसावी हो म्हणे पार्था। तेणे श्रुति-स्मृति माथा। बैसो घापे।। "शास्त्र म्हणेल सांडावे। ते राज्यही तृण मानावे। जे घेववी ते न म्हणावे। विष ही विरुद्ध।।" ऐसी वैदिक निष्ठा। जालेया सुभटा। तरि के आहे अनिष्टा। भेटावे गा।। (अ. १६/२४) 'शास्त्र म्हणेल सांडावे' अर्थात् 'शास्त्र जिसे छोड़ने के लिए कहते हैं', कथन में निषेधों का त्याग करने के लिए कहा है। और 'जे घेववि ते न म्हणावे। विषहि विरुद्ध' कथन के द्वारा 'जो लेने योग्य शास्त्र के द्वारा कहा है वह विष भी स्वीकारने योग्य होता है,' यही सूचित किया है। विधि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

का पालन अवश्य करना चाहिए, भले ही वह प्रतिकूल लग रहा हो। अतः दो बातों का पालन करना ही शास्त्र-पालन होता है, यह ज्ञानेश्वरमहाराज के कथन से सिद्ध होता है।

विशेष कर्म न करनेवाले वे ब्राह्मण नहीं हैं, वे शूद्र या शूद्रसमान हैं, आदि वचनों का भावार्थ इतना ही है कि वे केवल नाम से या जन्म से ब्राह्मण हैं, आचार से नहीं। विशेष कर्म न करने से वे निष्फल ऐसा जहाँ कहा जाता है, वहाँ भाव इतना ही होता है कि उस कर्म का उचित फल उसे नहीं मिलता; परंतु कुछ कर्म व्यवहार में भी ऐसे होते हैं, कि उचित समय पर न करने से अथवा शास्त्रोक्त पद्धति से न करने पर संपूर्ण निष्फल होते हैं। अथवा कभी कभी विपरीत फल भी मिलता है। `A Doctor after death.' (किसी के मर जाने पर डॉक्टर को बुलाना') अथवा 'अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गई खेत' आदि कथन इसी बात को सूचित करते हैं। वायु का मिश्रण करते हुए जल तैय्यार करना हो तो (H_2O) हायड्रोजन दो भाग तथा ऑक्सिजन एक भाग इस परिमाण में एकत्रित करने होंगे, अन्यथा वह पदार्थ, परिश्रम तथा समय पूरी तरह निरर्थक ही होगा। उचित परिमाण में मिश्रण न करते हुए, जल निर्माण करने की दृष्टि से कोई गंधक एक भाग, हाइड्रोजन दो भाग, और ऑक्सिजन चार भाग इकट्ठा करेगा, और उसमें जहाज छोड़ेगा तो वह गंधकाम्ल या सल्फुरिक ॲसिड बन जाने से उस में जल उठेगा। पटाखे तैय्यार करते समय स्फोट होकर आदमी जलकर भस्म होते हैं, मकान उध्वस्त हो जाते हैं, वे इसी अनुचित क्रिया के फलस्वरूप। भक्त शिरोमणि तुकाराम महाराज तथा एकनाथ महाराज आदि संतों ने वैज्ञानिक सत्य एवं निषेध को छिपा नहीं रखा है। परन्तु अत्यंत कटु शब्दों में फटकार सुनाई है। तुकाराम महाराज का एक ही पद का उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

'ऐसे संत झाले कली। तोंडी तमाखूची नळी।।
भांग-भुर्का हे साधन। पचनी पडे मद्यपान।।
तुका म्हणे ऐशा नरा। मोजून माराव्या पैंजारा।।

अर्थात् तुकाराम महाराज कहते हैं कि कलियुग में अब ऐसे संत होने लगे हैं, जिन के मुँह में तमाखू की नली या बीडी-सिगरेट होती है। अफीम या भंग पीते हैं और शराब पीने की आदत हो जाती है। तुकाराम कहते हैं कि ऐसे संत बने नर को गिनकर जूते मारने चाहिए।' (पैंजारा = जूते)

इस कथन में निषेधों का त्याग न करनेवालों को जूते मारे गए हैं। एकनाथ महाराज कहते हैं, 'मुक्तपणे मोला चढले।ते वनिता अधरी फशी पडले। कुश्चिळरसें

CC0. In Public Domain Kiritkant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिडबिडले।' आदि अर्थात् इसमें उन्होंने स्वाति जल से निर्मित मोतियों की दुर्दशा का वर्णन करते हुए 'मैं मुक्त हुआ' ऐसा समझकर जो प्रतिष्ठा को प्रिय मानते हैं उनका अधःपतन कितना और कैसे होता है, यह दिखाया है। अर्थ अधिक स्पष्ट करने के लिए मन तथा कलम की हिंमत नहीं हो रही है, अतः इतना ही पर्याप्त है। इस ग्रंथ में अर्थात् ऐसे उद्धरण नहीं दिए हैं।

यह ध्यान में रखना चाहिए कि सन्ध्या, जप आदि का फल जो शास्त्रकारों ने बताया है अथवा लेडबीटर जैसे समीक्षकों को प्रतीत हुआ है, वह सब को एक जैसा मिलेगा, ऐसा नहीं है। निषेधों का त्याग जिस प्रमाण में होगा, श्रद्धा एवं भाव जितना शुद्ध तथा उच्च श्रेणी का होगा और यमनियमों का जितना अधिक पालन किया जायेगा, उतना अधिक पूर्वसंस्कारनुरूप तथा संगति और व्यवसाय के अनुरूप अल्पाधिक प्रमाण में फल मिलेगा। संक्षेप में सार-कथन यह है कि चित्तशुद्धि जितनी कम-अधिक हुई होगी उतना कम-अधिक काल के बाद परिणाम दिखाई देगा। नीचे गिरा हुआ परिपक्व नारियल फिर से उगने के लिए छः महिने लगते हैं, परन्तु मेथी-भिंडी के बीज तीसरे दिन ही उग आते हैं, परंतु मेथी के बीजों को विशेष द्रव्य के २१ पुटों से संस्कारित कर बोने से वे दस दिन में ही छः इंच के हो जाते हैं। उसी प्रकार पूर्वसंस्कार एवं सुसंगति के संस्कार जिन चित्तों पर अधिक होंगे, और कुसंगति धूप जिन्हें नहीं लगी होगी, उन्हें उतनी जल्दी तथा अच्छे अनुभव आएँगे। अब लेडबीटर ने जो देखा और जिसके आधार पर सिद्धान्त की रचना की उसे बताकर इस कथन को समाप्त करेंगे।

लेडबीटर कहते हैं कि मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति जितनी अधिक होगी उतना अधिक परिणाम उसके उच्चारित मंत्रों से होगा। उसकी जड़देह के चारों ओर रहनेवाली तैजस देह का वलय Aura (ऑरा) बढ़ता है। वह कई यार्डों के व्यास का बन जाता है। इसीलिए भागवत में कहा है कि जलमय तीर्थ और मृत्तिका पाषाणमय देवता दीर्घकाल के बाद पावन करते हैं परन्तु साधु-संगति तत्काल पावन करती है। साधुओं का तेजोवलय बहुत ही विशाल होता है। उस वलय में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति पर उसका संस्कार अल्पाधिक प्रमाण में हुए बिना नहीं रहता है। मछली बाजार में दुर्गंधि भले ही न दीखती हो तथा अत्तरों के बाजार में सुगंधि दिखाई न देती हो और नाक पकड़ कर भी हम उस में से निकल जाएँ, फिर भी दुर्गंध और सुगंध मिल ही जाती है, वैसा ही संतसंगति एवं सुसंस्कारों का है।

जिन वेदमंत्रों की प्रशंसा लेटबीटर, ॲनी बेझंट जैसे व्यक्ति मुक्तकण्ठ से

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करते हैं; जिन वेदों का पठण अर्थज्ञानसहित होने की लालसा पश्चिमी ख्रिश्चन राष्ट्रों को हो रही है और वह इतनी बढ़ गई है कि 'अँग्रेजी भाषा में अर्थ बतानेवाले वैदिक चालीस शिक्षक उन्हें चाहिए' ऐसे विज्ञापन तक प्रकाशित हो गए हैं, उन वेदों के संबंध में तथा सभी वेदों का सारसर्वस्व, वेदमाता, वेदोपास्या गायत्री (मंत्र) के संबंध में ब्राह्मण समाज में कितनी आस्था है तथा सार्थ वेद, कम से कम सार्थ सन्ध्या सीखने की छटापटाहट कितने लोगों को है, इसका विचार सुशिक्षितोंको तो भी करने की क्या आवश्यकता नहीं है?

समय नहीं मिलता इसलिए सन्ध्या न करनेवाले हजार में १/२ भी नहीं होंगे, तथापि ऐसे लोगों को न्यूनतम कितना करना चाहिए तथा प्राकृतिक आदि आपत्तियों में क्या करना चाहिए इसका विचार 'सन्ध्योपासना' अध्याय में किया गया है।

श्रुति-स्मृति आदि अनेक ग्रंथों में जो वचन प्रमाण के रूप में लिए हैं वे सभी ग्रंथ विस्तार के भय से इस ग्रंथ में नहीं दिए हैं, केवल उन ग्रंथों के नाम कोष्ठक में दिए हैं। फिर भी ग्रंथ में दिए गए सभी उद्धरण तथा न दिए गए उद्धरण लेखक ने अपने पास सुदृढ, अच्छी तीन बहियों में सुरक्षित लिख रखे हैं। बही के हर पृष्ठ में १८ पंक्तियाँ होती है, ऐसी छपी बहियों के २२५ पृष्ठ भरे पड़े हैं। उस हर बही में अनुक्रमणिका भी लिखी हुई है। व्यक्तिशः देखने के लिए मिल सकती है, डाक से नहीं भेजी जाएँगी।

यह ग्रंथ लिखने में जिन्होंने सहायता की उन में से कुछ व्यक्तियों का निर्देश करना आवश्यक है।

१- ब्रह्मर्षि सातवलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी (गुजरात) ने अत्यंत आस्था से और तुरन्त प्रत्येक आशंका का समाधान पत्रद्वारा किया। 'ससृषीस्तदपसो.' इस मंत्र के मूलस्थान तथा ऋषि, छंद; 'तच्छंयोरावृणीमहे.' इसका स्थान, 'असावादित्यो.' इसके ऋषि, 'सुमित्रया न आपः' इन के सभी स्थान तथा 'सन्ध्या भाष्यसमुच्चय' आनन्दाश्रम, पुणे में जानकारी मिल सकती है यह ब्रह्मर्षि सातवलेकरजी से ज्ञात हुआ।

२- पुणे निवासी वे. शा. सं. विनायकशास्त्री पारखी तथा सांगली निवासी वे. शा. सं. दत्तंभट टिळक से ऋक्सर्वानुक्रम सूत्र के कुछ परिच्छेद आदि जानकारी मिली। इस सम्बन्ध में इसके पूर्व कहा जा चुका है।

३- 'कल्याण' पत्रिका के संपादक श्रीमान् हनुमानप्रसाद पोद्दार तथा उनके कार्यालय के विद्वान श्रीमान रामनारायण दत्त शास्त्री से कुछ महत्त्वपूर्ण जानकारी मिली।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

४– श्रीमज्जगद्गुरु श्रृंगेरी पीठ के शास्त्री के. शामभट्ट से 'स्मृति मुक्ताफल' ग्रंथ के तैत्तिरीय सन्ध्या-मंत्र के ऋषि छंद देवता के सन्दर्भ प्राप्त हुए।

५– मुंबई के श्रीमान गजाननशास्त्री रानडे व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य आदि से 'ब्रह्म इत्यार्षम् ' से सम्बन्धित निर्णय प्राप्त हुआ।

६– नगर के वे. शा. सं. सदाशिव शास्त्री मुले के द्वारा लिखित सूचना मिली कि 'गायत्र्यस्येकपदी.' यह मंत्र पुरानी पोथी में 'परोरजेससावदों मा प्रापत्', इतना है।

इसके अलावा अनेकों ने अनेक प्रकार से सहायता की; परन्तु उनका नामनिर्देश उनके लिए दुःखद होगा, अतः इतना ही कहा जा सकता है कि प्रभु उनपर कृपा करें और जिन्होंने टालना चाहा अथवा गलत जानकारी दी उनपर भी प्रभु कृपा करें।।

।। शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १

मानव धर्म

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषां अधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।
क्रियाहीने न धर्मः स्यात् धर्महीने कुतः सुखम्।
सुखं तु वांछते सर्वः तत् च धर्मसमुद्भवम्।। (दक्ष स्मृ.)

खाना-पीना, निद्रा लेना, भय और मैथुन-ये चार बातें पशु एवं मानव में समान हैं। परन्तु मनुष्य में जो विशेषता अधिक है, वह है धर्म। धर्महीन मानव पशु समान ही है। कर्म या क्रिया किए बिना धर्म नहीं होता तथा धर्महीन व्यक्ति को सुख नहीं मिलता। सुख तो सभी चाहते हैं और दुःख बिलकुल नहीं चाहते। परन्तु ये दोनों बातें धर्माचरण से ही मिलती हैं।

आहारादि बातों में कई मानव पशु से भी नीच आचरण करते हैं। इसका कारण यह है कि वे कामक्रोधलोभादि के चंगुल में फँस कर धर्म को, इन्सानियत को पीठ दिखाते हैं।

धर्म या कानून पशु-पक्षियों के लिए किसी भी देश में कहीं पर भी नहीं हैं। 'रास्ते में बाईं ओर से चलिए' आदि सूचना-फलक बैल-घोड़ो के लिए नहीं होते। वे मनुष्यों के लिए होते हैं। इसका कारण यह है कि मनुष्य मिली हुई थोड़ी सी बुद्धि की स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर सकता है। अपने ही स्वार्थ के लिए वह दूसरों के या समाज के सुख-दुःख का विचार ही नहीं करता है।

'ज्ञानं हि तेषां अधिको विशेषः ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः' ऐसा भी पाठ है। इस में सुख की ऊँचाई निर्देशित की है। परन्तु यहाँ इस श्लोक में सुख का आधार बताया गया है। धर्माचरणरूप आधार निर्दोष, मजबूत तथा शास्त्रशुद्ध होगा तभी साधनरूप भवन निर्माण होकर दुःखरहित नित्यसुखरूप ज्ञान का शिखर दिखाई देगा।

आजकल भौतिक ज्ञान-विज्ञानरूप बड़े-बड़े ऊँचे भवन निर्माण हो रहे हैं,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परन्तु उन में मानवधर्मरूप सुदृढ़ नींव न होने से दुनिया के सभी देशों में अशांति, भय का साम्राज्य बढ़ रहा है। अतः सभी को मानवधर्म का पालन सब से पहले करना चाहिए क्योंकि हिंदू, मुसलमान, बौद्ध आदि कोई भी हो, सभी मानव हैं। इसीलिए पहले मानवधर्म चाहिए, परन्तु मानवधर्म कौनसा है यह देखना चाहिए। मानवधर्म याने सभी मानवों का प्रमुख धर्म। प्रत्येक मनुष्य को ऐसे धर्म का पालन करना ही चाहिए जिसका उपदेश नारद महर्षि ने राजा युधिष्ठिर को दिया है। (शूद्र कमलाकर)

'सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्।। १।।
सन्तोषः समदृक्सेवा काम्येहोपरमः शनैः।
न्दणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्।। २।।
अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः।
तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव।। ३।।
श्रवणं कीर्तनं चाऽस्य स्मरणं महतां गतेः।
सेवेज्याऽवनतिर्दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।। ४।।
नृणां अयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति।। ५।।

इन पाँच श्लोकों में मनुष्जाति का परम श्रेष्ठ धर्म कहा गया है, जिसके तीस लक्षण हैं। उनका संक्षेप में वर्णं करना अनिवार्य है।

१) **सत्य–** सत्यभाषण; झूठ न बोलना और दिए वचन का पालन करना;
२) **दया–** प्राणिमात्र पर दया करना;
३) **तप–** ग्यारस आदि उपवास तथा पैदल यात्रा आदि;
४) **शौच**–अन्तर्बाह्य शुद्धता, निर्मलता;
५) **तितिक्षा–** विरोध या प्रतिकार न करते हुए सब प्रकार के दुःखों को सन्तोष के साथ सहना;
६) **ईक्षा–** अवलोकन; कार्य-अकार्य, योग्य-अयोग्य, विहित-निषिद्ध; सार-असार; स्तुत्य-निंदनीय क्या है इसका विचार या विवेक करना;
७) **शम–** मन का निग्रह; मन को जीतना; अकार्य, अयोग्य, निषिद्ध, असार, निंद्य कार्य करने का विचार या संकल्प भी मन के द्वारा न करना;
८) **दम–** इन्द्रिय निग्रह; इन्द्रियों को अपने वश में रखना;
९) **अहिंसा–** किसी भी जीव को शरीर से, वाणी से या मन से दुःख या पीड़ा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देना याने हिंसा; द्वेष, ईर्ष्या करना ही मानसिक हिंसा है, दूसरे का बुरा सोचना भी हिंसा ही है, ऐसी हिंसा न करना याने अहिंसा है।

१०) **ब्रह्मचर्य–** वीर्य संरक्षण करते हुए परस्त्री को माता, बहन, कन्या जैसा मानकर व्यवहार करना;

११) **त्याग–** आवश्यकताओं को कम करते जाना; दान देना, आय का कम से कम १/१६ तो भी दान करना ही चाहिए। जो नहीं करेंगे या नहीं करते, उन्हें अग्निदण्ड, चोरदण्ड, राजसत्तादण्ड, वैद्य-डॉक्टर दण्ड आदि किसी न किसी रूप से १/१६ से कितनी गुना अधिक द्रव्यहानि सहनी पड़ती है।

१२) **स्वाध्याय–** जिसका जैसा अधिकार, प्रकृति-स्वभाव, तथा अभिरुचि होगी वैसा जप, धर्मग्रंथ, संतचरित्र आदि का अध्ययन-मनन करना चाहिए।

१३) **आर्जवम्–** ऋजुता या सरलता, छिपाना या मन से एक या वाणी से दूसरी तथा कृति में तीसरी बात सोचना या व्यवहार न करना; निष्कपट व्यवहार;

१४) **संतोष–** 'जैसी स्थिति आहे तैशापरी राहे, कौतुक तू पाहे स्वकर्माचे' अर्थात् कैसी भी प्रतिकूल परिस्थिति क्यों न आए, संकट आनेपर न घबराते या न व्याकुल होते, अन्य किसी को दोष न देते हुए सन्तोष से रहना;

१५) **समदृक् सेवा–** समान दृष्टि रखनेवाले, 'विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे, गवि हस्तिनी। शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः (भ.गी.) ऐसे जो साधु संत होंगे उनकी सेवा करना; तब यह ध्यान में रखना कि यहाँ या भगवद्गीता में ही समदर्शी कहा है, समवर्ती नहीं कहा है। 'भेद ईश्वरे निर्मिला, तो त्याचे वाचेनि न वचे मोडिला।' (समर्थ रामदास) अर्थात् भेद भगवान् के द्वारा निर्मित है, उसे वह वाणी से भी नहीं तोडता। लौकिक व्यवहार में यथाधिकार भेद मानते हुए और यथाधिकार व्यवहार करते हुए भी हृदय मे समत्त्व-भाव होने से द्वेष-ईर्ष्या आदि निर्माण ही नहीं होते। 'विष्णुमय जग, वैष्णवांचा धर्म। भेदाभेद भ्रम अमंगळ।।' (तुकाराम महाराज) अर्थात् भेद-अभेद या हृदय में ऊँच-नीच मानना तथा व्यवहार में अभेद मानना, ये दोनों भ्रम हैं, दोनों अमंगल-अपवित्र हैं।

(१६) **काम्येहोपरमः शनैः–** (काम्य-ईहा-उपरमः शनैः) स्वर्गसुख, विषयसुख, धन, सम्पत्ति, सुन्दर स्त्री, पुत्र, प्रतिष्ठा, मान-सन्मान आदि अनेक कामनाओं-इच्छाओं का धीरे धीरे, दृढ़ प्रयास द्वारा नाश करना; पहले दुर्व्यसनों तथा दुर्वासनाओं का त्याग करते हुए बाद में धीरे धीरे अन्य इच्छाओं का त्याग

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करना चाहिए। यह जन्ममृत्युजराव्याधि-दुःख दोष' का चिन्तन करने से, विषयों के दुष्परिणामों का भयावह और घृणास्पद चित्र मन के सामने रखने से सहज सिद्ध होता है। पुत्र होगा तो सुख देगा ऐसा मनुष्य को लगता है, परन्तु श्रुतिमाता कहती है कि 'अजायमानोऽपि पुत्रो दुःखाय भवति' जन्म न लेनेवाला या अजन्मा पुत्र भी दुःख देता है। तब जन्म लेने पर वह सुख देगा ऐसा मानना कितनी बुद्धिमानी का लक्षण है?

१७) **नृणां विपर्ययेहेक्षा–** (विपर्यय-इहा-ईक्षा) जो लोग दुःखदायक, निंद्य, निषिद्ध कामनाओं की प्राप्ति के लिए कष्ट करते हैं उन्हें सच्चा सुख नहीं मिलता या कामना सिद्ध होने पर भी दुःख या असंतोष प्राप्त होता है; उनके आचरण से दूसरों का, समाज का, राष्ट्र का हित होता है या अहित; उनके व्यवहार से दूसरों को अधिक सुख मिलता है कि दुःख, इसकी विचारपूर्वक खोज करना (ईक्षा-अवलोकन);

१८) **मौन–** स्नान, दान, जपादि कार्य करते समय बोलना नहीं चाहिए, शास्त्रों ने जिसके साथ भाषण न करने के लिए कहा होगा उस व्यक्ति के साथ या कार्य में न बोलना। सत्य भाषण से किसी की अकारण प्राणहानि हो रही हो तो उस समय बिलकुल न बोलना, मौन कहलाता है। सत्य परन्तु अप्रिय बोलना पड़ता है। वहाँ कुछ भी न बोलना मौन होता है। वादविवाद, अकारण डींग न हाँकना भी मौन होता है। परनिंदा या परदोष चर्चा न करना, चुगली न करना मौन है।

१९) **आत्मविश्वास–** आत्मचिन्तन-मनन करना, आत्मा-अनात्मा कौन, मैं, 'मैं ऐसा जिसके संबंध में कहा जाता है वह कौन, उसका क्या स्वरूप है, आदि का विचार सन्त तथा सत्-शास्त्र की सहायता से करना। जो समदृक् सेवा प्रेम से करता है उसे यह सहज साध्य हो जाता है।

२०) **'अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः'–** अपने पास होनेवाले अन्न, वस्त्र, जल आदि वस्तुओं में से अपनी शक्तिनुसार तथा लेनेवाले की आवश्यकतानुसार दीन, दुर्बल, दरिद्री, दुःखी, संकट में फँसे हुए, भूखे आदि को शत्रु-मित्र आदि का विचार न करते हुए देना।

२१) **'तेषु** (भूतेषु) **आत्मदेवताबुद्धि'** और **'सुतरां नृषु आत्मदेवताबुद्धिः'–** सकल प्राणीमात्र के सम्बन्ध में आत्मबुद्धि रखना। मैं– मेरी आत्मा-और सभी प्राणियों की आत्मा एक ही है, ऐसी भावना रखना ही ज्ञानमार्ग की भावना मानी जाती है। मैं जिसका भजन करता हूँ, जिसका नाम लेता हूँ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वही भगवान्, ईश्वर, देवता, परमेश्वर, गॉड, अल्ला सब में है। सभी उसी के केवल भिन्न भिन्न रूप हैं, ऐसा भाव भक्तों को रखना चाहिए। इसलिए सन्त-महन्त कहते हैं–

'नारायण असे विश्वीं। तयाची पूजा करीत जावी।
म्हणोनिया तोषवावी। कोणी तरि काया।।–श्रीसमर्थ रामदास

(नारायण विश्व में व्याप्त है, इसलिए उसकी पूजा करनी चाहिए। और सेवा के द्वारा शरीर को संतुष्ट करना चाहिए।)

'जें जें दिसे भूत। तें तें मानिजे भगवंत।।'– श्री ज्ञानेश्वर (जो जो भी प्राणी दिखाई देगा, वह भगवान् मानकर उसे भजना चाहिए।)

इस प्रकार का भाव मनुष्य के प्रति प्रथम तथा विशेष रखना चाहिए।

सत्य, दया आदि का आचरण होने लगे और समदर्शी सन्तों की सेवा करने पर इक्कीसवाँ लक्षण-गुण प्राप्त करना सहज-सुलभ हो जाता है, परन्तु आत्मभाव अथवा भगवद्भाव अत्यन्त दृढ़ होने के लिए भगवान् की कृपा होनी चाहिए। उसे संपादित करने के लिए और नौ गुणों की प्राप्ति होनी चाहिए। वे सन्त-सेवा से और- दृढ़ अभ्यास से सहज प्राप्त होते हैं। वे नौ गुण हैं, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, (इज्या) अर्चन, वन्दन (नमन), दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। यह नवविधा भक्ति ही है। केवल वह किस की है यह बताते हुए विष्णु, नारायण, कृष्ण, राभ, शिव, देवी, देव, हरि आदि किसी का निर्देश न करते हुए इस चतुराई से वर्णन किया गया है कि दुनिया के किसी भी धर्म या सम्प्रदाय के अनुयायी अपने भाव के अनुसार उन्हें ग्रहण कर सकेंगे। 'महतां गते' सच्चे महात्मा, संत, साधु इन्हें भी एक ही गति, एक ही लक्ष्य, आराध्य, एकमात्र आधार आदि का श्रवण करना, वह आधार अर्थात् ईश्वर, परमेश्वर, अल्ला, गॉड, खुदा आदि विविध नामों से निर्देशित परमात्मा।

नवविधा भक्ति के लक्षण और वह किस प्रकार करनी चाहिए, इस सम्बन्ध में सरल वर्णन 'श्रीमत्-दासबोध' के नौवें समास में किया गया है, उसे देखिए।

बायबल में भी एक ही वाक्य में सत्यादि २१ गुणों का समावेश किया गया है।

`Do unto others as you would have others do unto you.' अर्थात 'दूसरे अपने साथ जिस तरह व्यवहार करें ऐसा तुम्हें लगता है, वैसा तुम उनके साथ व्यवहार करो।'

कोई हम से झूठ न बोले (सत्य)। मुझे कोई कष्ट न दे। (अहिंसा); मेरे साथ

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कोई छलकपट न करे (ऋजुता)!; मेरी कोई भी वस्तु मुझसे पूछे बिना लेना मुझे अच्छा नहीं लगता, (अस्तेय)। कभी मैं गलती करूँ तो भी दूसरे मुझे क्षमा करें, (दया)। कोई भी पराया व्यक्ति मेरी पत्नी की ओर आँख उठाकर देखें, उसके साथ एकान्त में बात करें या उसे स्पर्श करें, यह मुझे बिलकुल पसंद नहीं हैं, मैं चिढ़ जाता हूँ, (ब्रह्मचर्य)।, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति चाहता है, इसलिए हर एक को दूसरे के साथ ऐसा ही व्यवहार करना चाहिए। सत्य, दया, अहिंसा, ऋजुता, ब्रह्मचर्य, अस्तेय इनका स्पष्टीकरण जिस प्रकार किया गया है वैसा ही अन्य सभी गुणों का उस वाक्य से दिया जा सकता है।

'कोई एक गाल पर थप्पड मारे तो दूसरा गाल आगे करना चाहिए' इस एक वाक्य में सहनशीलता, क्षमाशीलता और अक्रोधता इन गुणों की पराकाष्ठा प्रकट की गई है।

पड़ोसी के कर्तव्य या धर्म, भूखे को अन्न और प्यासे को पानी देना, दूसरे को सुख देना, दुखियों के दुःख दूर करना, शरण में आए हुए (शत्रु को भी) संरक्षण देना, परदोषचर्चा, परनिन्दा या चुगली न करना आदि सद्गुणों की आवश्यकता उपर्युक्त प्रथम आज्ञा से सूचित होती है।

ईश्वर इस जगत् का कर्ता, पालक और संहर्ता है; वह पक्षपातरहित होकर हर किसी के कर्म का फल उन्हें देता है; वह कृपासिंधु, दयासागर, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वसाक्षी है; वह बहुत दूर न होकर हर-एक के बिलकुल पास है। वह सज्जनों का संरक्षक और दुर्जनों को दण्ड देनेवाला है। वह एक है। उसके समान दूसरा नहीं है। उसकी यथासमय नियमित पद्धति से प्रार्थना करनी चाहिए। वह क्षमासागर है; आदि भाव बायबल द्वारा प्रतिपादित ईसाई (ख्रिश्चन) धर्म में और कुरान प्रतिपादित इस्लाम धर्म में भी प्रकट किए गए हैं। इस्लाम इस अरबी शब्द का अर्थ भी ईश्वराज्ञापालन ऐसा ही है। और इन्हें जो व्यवहार में लाता है, वही मुसलमान, बौद्ध है, ऐसी भावना अन्य धर्मियों की है यह कहने की आवश्यकता नहीं है।

यदि कोई यह कहे कि बायबल में आत्मनिवेदन कहाँ है तो यह देखिए. `Oh God, give me my daily bread.' हे भगवन्! (God) मुझे रोज लगनेवाली रोटी दीजिए। ऐसी प्रार्थना हर एक को करनी चाहिए, ऐसी उनकी आज्ञा है। कोट्याधीश सम्राट को भी ऐसी प्रार्थना क्यों करनी चाहिए? इस प्रार्थना में ही जड़ या स्थूल आत्मनिवेदन है। भाव यह है कि मेरे पास रहनेवाली सब सम्पत्ति, हे भगवन्, तुम्हारी है, मेरा कुछ भी नहीं है; इस में से आवश्यक उतना अन्न (रोटी) वस्त्र आदि मुझे दीजिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कुराण में भी इन में से अधिकांश धर्मों या गुणों की आवश्यकता बताई गई है; यह जिन्हें देखना हो वे डॉ. मौलवी हकीम सूफी मीर मोहंमद याकूबखान का किया हुआ कुरान का सार्थ अनुवाद देखें, विशेष रूप से अध्याय २ मंत्र १५३; १५/९; २/१७७; २/१७३ के विवरण देखिए; अ. २; ५/२ आदि स्थलों का अवलोकन कीजिए। 'नाऽमूलं लिख्यते किंचित्' यह पूर्वसूरियों के ब्रीद पालन का मन-बुद्धि से स्वभाव बन गया है, इसलिए दोनों धर्मों के मूल ग्रंथ मँगवाकर जुलाई १९६१ में उन्हें फिर से पढ़ा गया।

जीव ईश्वर का अंश है, परन्तु वह ईश्वर या परमेश्वर नहीं है यह सिद्धान्त इस्लाम धर्म में एक संगीत वाक्य में कहा है। 'आदम (जीव) को खुदा मत कहो, आदम खुदा (परमेश्वर) नहीं! लेकिन खुदा के नूर से आदम जुदा (भिन्न) नहीं।' (नूर = प्रकाश, चित्); देह मरने पर, जमीन में गाड़ने पर भी उस जीव का पुनरुत्थान उपर्युक्त दोनों धर्मों में भी माना गया है, अर्थात् 'जीवो नित्यः' जीव नित्य है इसे वे मानते ही हैं। 'याऽऽहू' यह 'सोऽहं' इस अर्थ का मंत्र मुसलमानों के सूफी सम्प्रदाय में भी है। अनेक मंत्रों के जप, उपवास, तीर्थयात्रा आदि प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में आवश्यक कर्तव्य माने गए हैं, विधि-निषेध भी हैं। विधि-निषेध इसलिए होते हैं कि मनुष्य को दैवी सम्पत्ति की प्राप्ति होनी चाहिए और दुःखरहित चिरसुख की अनुभूति प्राप्त करने के लिए उसे मानवता की परिपूर्णता प्राप्त करना सम्भव हो। `Man is a miniature of God' मनुष्य यह परमात्मा की छोटी प्रतिकृति है, इसे ईसाई धर्म में भी माना गया है।

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः' (भगवद्गीता)

जन्म लेते ही प्राप्त सभी गुणदोष संमिश्र!

उपर्युक्त तीस गुण जिस व्यक्ति में परिपूर्णता तक पहुँचे होंगे वही संपूर्णरूप से दुःखरहित और सदा सुखी हो सकता है तथा परमेश्वर के निकट सम्मान के साथ बैठ सकता है, अर्थात उपासक हो जाता है। तीस गुणों से कुछ गुण बीजरूप में हर मनुष्य में जन्म से ही विद्यमान् रहते हैं। परन्तु उनके साथ कुछ पशुस्वभाव के कुछ दोष और आसुरी-दानवी स्वभाव के कुछ महादोष भी होते ही हैं। प्राणिमात्र में दोष-गुणों का अस्तित्व कम-अधिक प्रमाण में जन्म से ही रहता है। संपूर्ण निर्दोष ऐसा केवल एक परमात्मा ही है। परमात्मा जब नरावतार लेता है तब उसे भी मानवी दोषों का अभिनय कभी कभी करना पड़ता है और उसी के कारण 'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्।' (भ.गी.) जैसी स्थिति बन जाती है, क्योंकि उस अवतारचरित्र में भासमान् दोषों को मूर्ख लोग सत्य ही मानते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मनुष्य को शास्त्र के अनुसार विधि का पालन और निषेध का त्याग करने का दृढ़ प्रयास किए बिना दोषों का त्याग और दैवी गुणों की संस्थापना, संरक्षण, वृद्धि और पूर्ति नहीं होती है। प्रथम करनी और बाद में कथनी सिद्ध होने के लिए राम-कृष्णादि पूर्ण अवतार ने भी 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' उक्ति अनुसार जीवन-यापन किया। श्री एकनाथ महाराज जैसे सन्त भी 'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते' इस आज्ञा का आचारयुक्त पालन करते थे।

मानवता की परिपूर्णता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बुद्धि, मन, दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ, प्राण और शरीर को वश में रखनी पड़ता हैं। उसका कारण यह है कि उन सब का जन्मसिद्ध स्वभाव पशु की तरह बाहर विषयों की ओर अनिर्बंध रूप से दौड़ने का होता है।

'परांचि खानि व्यतृणत् स्वयंभूः।
तस्मात् पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्ऽ।। ' (कठ.)

इसीलिए इन्द्रियाँ अन्दर की ओर दौड़ने के लिए कभी तैयार नहीं रहतीं। उन पर विजय प्राप्त करने के लिए मनुष्य देह सुदृढ़, स्वस्थ रखना और बिलकुल अत्यावश्यक हो उतना ही अन्न, वस्त्र आदि उसे उचित समय पर देना आवश्यक होता है। कलियुग में तो प्राण तथा जीवन अनाश्रित होते हैं। ये सब बातें धर्मशास्त्र के निर्देशानुसार विधियों का पालन और निषेधों का त्याग करने से तथा शास्त्र कथित साधन यथाधिकार बचपन से नियमित एवं निष्ठा से करने पर सहज सिद्ध हो जाती हैं।

धर्मशास्त्र– श्रुतिस्मृतिपुराणरूप धर्मशास्त्र ने पूर्वसंस्कार भेद तथा प्रकृतिभेद की विशेषतानुसार वर्णाश्रम कहे हैं। धर्मशास्त्र के 'श्रुतिस्मृति उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतं' (दे. भा.) अर्थात् श्रुति और स्मृति ये दोनों नेत्र हैं और पुराण हृदय है। नेत्र का अर्थ है योग्य मार्ग से, हित के मार्ग से ले जानेवाले, नेत्रों से यद्यपि दिखाई दे फिर भी उसका-मर्म या रहस्य हृदय ही समझ सकता है,. इसीलिए पुराणवचनों का अत्यन्त महत्त्व है। 'इतिहासपुराणाभ्याम् वेदार्थमुपबृंहयेत्'

षट्कर्म

धर्मशास्त्र ने द्विजों के लिए छः कर्म आवश्यक बताए हैं।

'संध्या स्नानं जपो होमः देवतानां च पूजनम्।
वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं षट्कर्माणि दिने दिने' (अनेक स्मृति)

स्नान सब कर्मों का और विशेष रूप से सन्ध्या का एक अंग ही है यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूचित करने के लिए ही 'स्नान-सन्ध्या' ऐसा क्रम न रखते हुए 'सन्ध्या-स्नानं' ऐसा ही क्रम रखा गया है। इन छः कर्मों में सन्ध्या का प्रथम निर्देश किया गया है। क्रिया के क्रम से देखने पर स्नान का निर्देश प्रथम होना चाहिए, परंतु यज्ञोपवीत संस्कार होने पर प्रथम सन्ध्या कर्म न होकर, होम यह कर्म होता है और पश्चात् प्रथम सायंसन्ध्या होती है और इसीलिए स्मृति में सन्ध्या का काल सूचित करते समय प्रथम सायंसन्ध्या का काल बताया गया है। उसीप्रकार 'स्नानं होमस्तथा सन्ध्या' ऐसा कहा गया होता, परन्तु सन्ध्या का सर्वश्रेष्ठत्व सूचित करने के लिए 'सन्ध्यास्नानं' ऐसा कहा गया है। उपर्युक्त छः कर्म द्विजेतरों के लिए भी हैं, परन्तु **पुराण के मंत्रों से।** इसीलिए अब सन्ध्योपासना विषय का सर्वांगपूर्ण विवेचन, शास्त्रों का आधार नींव के रूप में लेते हुए, उनके विधि-निषेध और उपयोगिता आदि की तर्कपूर्ण चर्चा पूर्व भाग में अध्यायशः करते हुए, उत्तरार्ध में सन्ध्या के प्रयोग संबंधित मंत्रों के अर्थों के साथ तथा उन मंत्रों से किए जानेवाले कर्म निष्फल या निरर्थक होंगे जैसे 'साखरेच्या गोण्या बैलाचिया पाठी' अर्थात् बैलों की पीठ पर लदे शक्कर की थैलियों की तरह होंगे (शक्कर का स्वाद बैलों के लिए कुछ नहीं होता) वैसे ही बिना अर्थ जाने कहे जानेवाले मंत्र कहनेवालों के लिए निरर्थक होंगे। इस कथन का सार इतना ही है कि कर्मों का अपेक्षित उतना फल नहीं मिलता, अत्यन्त अल्प मिलता है।

गायत्री मंत्र का तथा सन्ध्या के अंग-उपांगों का स्वयं अनुभव लेकर, देखा हुआ अथवा सुना हुआ प्रभाव, शास्त्रवचन, सन्ध्या के मंत्रों का अर्थ तथा भगवत् प्रेरणा आदि के द्वारा निःसंदेह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जो कोई द्विज इस ग्रंथ में निर्देशित बातों पर मनन चिन्तन करते हुए यथाविधि अर्थ की ओर यथाधिकार ध्यान देते हुए त्रिकाल सन्ध्या, कम से कम १०८ गायत्री जप उत्तम काल में करेंगे और न्याय से अर्जित धन पर जीवन-यापन करते हुए सदाचारी और नीतिसम्पन्न रहेंगे उन्हें मुक्ति मिलेगी।

'याच देही याच डोळा। भोगिला शुद्ध सुखाचा सोहळा।
झालो भवदुःखा वेगळा। निरन्तर।।

अर्थात्, इसी जीवन में उन्हें शुद्ध सुख का उत्सवानन्द प्राप्त होगा तथा भव दुःख से सदा के लिए मुक्ति मिल जाएगी। मंत्रों के अर्थ और सकामता कुछ मंत्रों के अर्थ देखने पर निष्काम कर्म की डींग हाँकनेवाले शायद यह कहेंगे कि अनेक मंत्ररूप प्रार्थनाएँ सकाम हैं। ऐसा कहनेवाले लोग पेट पालने के लिए जो प्रयत्न करते हैं, वे सकाम है या निष्काम? सन्त एकनाथ महाराज सकाम भक्त थे ऐसा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
कहने का साहस पागल के सिवा और कोई नहीं कर सकेगा। उन्होंने सन्ध्या के सकाम प्रतीत होनेवाले मंत्रों का प्रयोग किया ही है। संतश्रेष्ठ एकनाथ महाराज कहते हैं कि जिसे सच्चे परमार्थ में रुचि होगी उसे परिवार-पोषण के लिए और अन्न-वस्त्र के लिए धन लेने का प्रयास नहीं करना चाहिए।' (एकनाथी भागवत) वैसा प्रयास करने का अर्थ है भगवान् की इस प्रतिज्ञा 'योगक्षेमं वहाम्यहम्' पर विश्वास न होना ही क्या सिद्ध नहीं होता है? प्रवचन, कीर्तन करते हुए गाँव-गाँव भटकना और थाली में रखे हुए पैसे लेना भी क्या सकामता नहीं है? ऐसा प्रयास करने की अपेक्षा गायत्री, सूर्य, वरुण, जल आदि सभी देवता, परमात्मस्वरूप मानते हुए, व्यावहारिक पेटपालन के लिए उनकी प्रार्थना करना क्या बुरा है? उनकी कृपा से सकाम कर्म ही श्रद्धा एवं निष्ठा के बल पर निष्काम बन जायेगा। नूतन यज्ञोपवीतधारी बटु या नवविवाहित युवकों को संपूर्ण निष्काम बनना असंभव है।

सकाम लगनेवाले मंत्रों में परिवारसहित आवश्यक योगक्षेम चलने से अधिक कुछ नहीं माँगा गया है। उतनी याचना करना जिन्हें उचित नहीं लगेगा वे यदि बीमार पड़ गए, परिवार जनों को आधा पेट भरना भी मुष्किल हो जाए, देह दुर्बल हो जाए और पत्नी कटु वचन जिजाई (तुकाराम पत्नी) की तरह कहने लग जाए और रो-रोकर आक्रोश करने लग जाए, तब कितने ऐसे निष्काम कर्मवालों की शान्ति बनी रहेगी? इससे तो मंत्रों के सकाम लगनेवाले शब्दों का अर्थ ही निष्काम की तरह प्रतीत हो तो काम हो जायेगा। जैसे सप्तशती का अनुष्ठान याने सकाम अनुष्ठान है ऐसा कुछ लोग कहते हैं; क्योंकि उस में 'पुत्रान् देहि धनं देहि यशो देहि द्विषो जहि' जैसी प्रार्थना है। पुं नामक नरक से तारनेवाला, धन का अर्थ है 'अभयं सत्त्वसंशुद्धिः' आदि गीता में निर्देशित मोक्षदायक दैवी सम्पत्ति। यश का अर्थ है परमार्थ साधना में सफलता, परन्तु काम-क्रोध आदि महारिपुओं का, आशाओं का समूल नाश हुए बिना वह संभव नहीं है, इसलिए 'द्विषः' अर्थात कामक्रोधादि महाशत्रुओं का जहि अर्थात्, नष्ट करो, ऐसा मानने पर सकामता कहाँ शेष रह जाती हैं? 'काम एव क्रोध एष.. विद्ध्येनमिह वैरिणम्' (भ.गी.) इन वचनों को श्रुति में भी पर्याप्त आधार मिल जाता है। 'श्रद्धापत्नी, (त्रिसुपर्ण) प्राणाग्निहोत्र-उपनिषद् में संपूर्ण रूपक ही प्रस्तुत किया गया है। 'माधुकरमातरम्', 'श्रद्धा कलत्रम', 'वैराग्यजनकम्', 'ज्ञानऩन्दनम्' ऐसा एक उपनिषद् में कहा गया है।

अणुशक्ति अच्छी है या बुरी? ऐसा पूछने पर भौतिक विज्ञान विशारद कहेंगे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कि अच्छाई या बुराई उसमें न होकर, उसका उपयोग करनेवालों पर निर्भर है। उसके द्वारा जगत् का संहार करनेवाला घोर राक्षस कहलाएगा और जीवों को सुख देने के लिए उसका उपयोग करनेवाला सज्जन कहलाएगा। ऐसा ही अग्नि, जल, वायु, तलवार, अन्न आदि के संबंध में है। उसी प्रकार सकाम दीखनेवाले मंत्रों के संबंध में है। निष्काम दीखनेवाले कृष्णाय नमः, रामाय नमः आदि सात्त्विक मंत्र भी, सिद्ध हो जाने पर जारण-मारणादि निंदनीय, घोर कर्मों में उनका उपयोग किया जा सकता है। उन छः अभिचारकर्मों की विधि भी मंत्रशास्त्र में बताई गई है। परन्तु उस संबंध में जानकारी 'गायत्री के सकाम प्रयोग' इस अध्याय में जानबूझ कर नहीं दी है। मंत्रशास्त्र में सूचित जारण-मारण, उच्चाटनादि प्रयोग क्षत्रियों को धर्मसंरक्षण, प्रजासंरक्षण, राष्ट्रसंरक्षण के लिए करना दोष नहीं है। दुष्टों का नाश, थोडे लोगों को नष्ट किए बिना सज्जनों एवं बहुजनों का परित्राण, संरक्षक भगवान् के अवतारों को भी करना सम्भव नहीं होता है। यथासम्भव स्वसंरक्षण के लिए ब्राह्मण अभिचार प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु उन्हें क्षत्रियादिकों के आश्रित, सेवक, दास, गुलाम नहीं बनना चाहिए, ऐसा शास्त्रों का अभिमत है।

साठ वर्ष की आयु होने पर भी संपूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कठिन हो रहा है, परिवार के पोषण के लिए नौकरी अर्थात् कुत्ते से अधिक हीनवृत्ति स्वीकारने में तथा गुलाम बन जाने में जिन ब्राह्मणों को गर्व महसूस होता हो, चाय-बीड़ी आदि व्यसनों को छोड़ देने तक भी जिनके पास इन्द्रियनिग्रह की शक्ति नहीं है, ऐसे व्यक्तियों का वेद मंत्रों के तथाकथित सकामता पर आक्षेप लेना क्या सचमुच हास्यास्पद नहीं है? 'सेवा श्ववृत्तिराख्याता' ऐसे कुछ वचन हैं, जिन पर यह कहा गया है,

'सेवा श्ववृत्तिर्यैरुक्ता न सम्यक् तैरुदाहृतम्।
स्वच्छन्दचरितः क्व श्वा विक्रीतासुः क्व सेवकः।।
पणीकृत्यात्मनः प्राणान् ये वर्तन्ते द्विजाधमाः।
तेषां दुरात्मनामन्नं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्।।' (रा.चं.)

जिन्हें सन्ध्यादि विहित कर्म करने की इच्छा नहीं है, ऐसे लोग इस प्रकार कुछ असंबद्ध प्रलाप या बकबक करते हुए कामना और कामदेव के दास होते हुए भी प्रतिष्ठा एवं बुद्धिमत्ता का ढोंग करते रहते हैं। स्वहित साधकों को और मानवता की पूर्ति की इच्छा रखनेवालों को इन आरोपों को जरा भी महत्त्व न देते हुए 'कुतर भुखत है भुकवा दे' यह कबीरदासजी का कथन ध्यान में रखते हुए वेदनिंदकों की संगति को टालना चाहिए तथा वाद-विवाद के चक्कर में नहीं

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

फँसना चाहिए। (उपर्युक्त श्लोक का अर्थ जानबूझकर नहीं दिया गया है।)

गुड मीठा, खट्टा या नमकीन जैसी आशंकाओं का समाधान वादविवाद से करना स्वयं ब्रह्मदेव के लिए भी सम्भव नहीं है। विश्वासार्ह व्यक्ति पर भरोसा रखते हुए तथा उसे खाए बिना स्वाद का निर्णय लेना सम्भव नहीं है। श्रुति-स्मृति-पुराण तथा रामायण-महाभारत जैसे इतिहास और इनको शिरोधार्य माननेवाले श्री ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम तथा समर्थ रामदास जैसे संत और भगवान् परमेश्वर ये ही जीवमात्र के सच्चे आप्त, सुहृद् हैं, अन्य सभी 'सुर, नर, मुनि सबही की रीति। स्वार्थ लाग कर हि सब प्रीति' (तु. रा.)

श्रुति-स्मृती-पुराण और इतिहास भगवान् के निःश्वास हैं। (बृह. २/४/१०) इसलिए उनके वचनों पर और सुहृदों के वचनों पर विश्वासयुक्त श्रद्धा रखकर जो कोई सदाचार सम्पन्न रहकर स्नानसन्ध्यादि शास्त्रकथित आवश्यक कर्म यथाधिकार, यथाविधि करेंगे उन्हें अधिक से अधिक एक वर्ष के अन्दर यह अनुभव आ जायेगा कि समाधान, आरोग्य, उत्साह और स्वान्तः सुख की थोड़ी वृद्धि हुई है।

इतना ही नहीं बल्कि सन्ध्या के सभी मंत्रों का अर्थ न जानते हुए भी केवल गायत्री मंत्र का अर्थ ध्यान में रखकर उषःकाल में अथवा कम से कम सूर्योदय के पहले ठण्डे पानी से स्नान कर गायत्री जप १०८ कर संपूर्ण सन्ध्याविधि पूर्ण करते हुए सूर्योदय के साथ उपस्थान अथवा सन्ध्या-समाप्ति करने का नियम किसी भी स्थिति में जो टूटने नहीं देगा, उसके चरणों पर वैराग्य साष्टांग प्रणिपात करने दौड़ पड़ेगा, मृत्युभय भाग जाएगा। परन्तु केवल उसे अहिंसा, सत्य आदि यम-नियमों का पालन करने का प्रयास एकनिष्ठ होकर करना चाहिए। ' परधन विष ते विष भारी' अर्थात् परधन यह सभी विषयों में भयावह विष है' ऐसा मानते हुए जो सदाचार तथा नीति का पालन करेगा, उसे यह निश्चय हो जाएगा कि मृत्यु जब, जहाँ और जिस तरह से आनेवाली हो, वह वैसे आनेवाली अवश्य है और जब तक वैसा क्षण नहीं आता तब तक बिलकुल चुपचाप सुपारी इतना बड़ा शुद्ध सोमल का टुकड़ा (भयावह विष) आत्महत्या के हेतु से खा लेने पर भी कुछ विष उतरने का उपाय न करने पर भी उसे मौत नहीं आती है। १०६° डिग्री मियादी-बुखार होनेपर भी प्रातःकाल में कुएँ में स्नान कर के सन्ध्या समय पर करने की शक्ति उस में आ जाती है और बुखार नहीं बढ़ता; नदी के गहरे पानी में सुबह और शाम घनघोर जंगल में स्नान करते समय उस पानी में मुँह बाए घूमने वाले मगरमच्छों की उसकी ओर आने की इच्छा भी नहीं होती है। ऐसे भीषण स्थान पर जाते समय सुबह शेर की दहाड़ और रीछों की गर्जना सुनाई देनेपर भी जिसके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पैर पीछे नहीं हटते हैं और वाघ-रीछ उसकी तरफ नहीं आते। सुबह जप को आरंभ करते समय सिर के ऊपर खूँटी पर भीषण विषधर नाग दीखने पर भी उसकी ओर ध्यान न जाते हुए एकाग्रता से जप किया जा सकता है और वह नाग उसकी ओर नहीं आता आदि लेखक के अनुभव उसे भी आ सकते हैं। इन अनुभवों से संपूर्ण निर्भय होकर वृद्धावस्था में भी किसी भी परिस्थिति में सदाप्रसन्न और उत्साही बना रह सकता है। बीमारी, निर्धनता आदि प्राप्त होने पर भी किसी प्रकार की चिन्ता उसे स्पर्श भी नहीं करेगी। केवल भगवान् पर और प्रारब्ध पर पूरा भरोसा तथा दृढ़ निश्चय अवश्य होना चाहिए।

अपने ही दो चित्र - सन्ध्या आदि नित्यकर्म अव्यवस्थित तथा अनियमित करनेवाले अपने अन्तःकरण तथा स्वास्थ्य आदि का ३६ वर्ष की आयुतक का एक चित्र और सन्ध्या आदि यथाविधि, यथासमय करनेवाले अन्तःकरण एवं स्वास्थ्य का दूसरा बदला हुआ ५० वर्ष की आयु तक का चित्र स्वयं ही देख चुका हूँ, (अन्य लोगों ने भी देखा होगा); इसीलिए वह अन्य लोगों को बता रहा है कि सदाचारी तथा नीतिसम्पन्न रहकर, कुपथ्य का त्याग करते हुए, 'जेणे विठ्ठलमात्रा घ्यावी, तेणे पथ्यें सांभाळावी।। (तुकाराम महाराज) अर्थात तुकाराम महाराज कहते हैं, जो विठ्ठलरूप दवा ले रहा है, उसे पथ्य-पालन अवश्य करना चाहिए।

सूर्योदय से पहले १२०० गायत्रीयुक्त जप संपूर्ण सन्ध्या के साथ करते हुए, सूर्योदय के अवसर पर सूर्य के सामने खड़े रहकर उपस्थान (अर्थ न समझने पर भी) मंत्रों का उच्चार कम से कम छः महीने तो भी कर के देखिए और सुख, समाधान तथा स्वास्थ्य में रुपये में दो पैसे भी वृद्धि न हुई तो वह अपनी आधी मूँछ उतार देगा! आश्रमांतर होने के बाद इसी प्रकार का आवाहन अलग ढंग से वह करते आए हैं और परिणामस्वरूप कई सुशिक्षित स्नातक आदि लोग समय पर सन्ध्या करने लगे और उन्होंने भी स्वानुभव से अन्य लोगों को सन्ध्या करने के लिए प्रवृत्त किया। उसमें भी यह अनुभव आया कि जो केवल दसवीं कक्षा तक पढ़े हुए हैं, वे बिलकुल व्यवस्थित रूप से तथा नियमित सन्ध्या करने लग जाते हैं, उतनी श्रद्धा से, नियमपूर्वक एवं दिखावा न करते हुए अर्धशिक्षित एवं 'सनातनी' अपने को मानेवाले ढोंगी, वाचिक अभिमानी प्रवृत्त नहीं होते हैं। यह भी थोड़ा अधिक विस्तार गायत्री के स्वानुभूत प्रभाव से ही किया गया है। बिलकुल पूर्ण निरक्षर व्यक्ति भी सद्भावना के बल पर व्यवस्थित करने लग जाते हैं। परन्तु ऐसे द्विजों में बिलकुल नहीं है ऐसा कहना गलत सिद्ध नहीं होगा। द्विजेतरों में ऐसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनेक हैं, परन्तु उनका द्विजों की सन्ध्या से सम्बन्ध नहीं आता है। अन्य कर्म वे यथाविधि, यथाकाल करते हैं और हमें प्रणव का, गायत्री का जप क्यों नहीं करना चाहिए, ऐसा भी कभी नहीं पूछते।

सद्यः परिस्थिति-अवनति तथा ब्राह्मण्यरक्षण

'उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्धर्मस्य शाश्वाती।
स हि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्मभूयाय कल्पते।। (मनु.)
ब्राह्मणा जंगमं तीर्थं निर्मलं सार्वकामिकम्।
येषां वाक्योदकेनैव शुध्द्यन्ति मलिनाः जनाः।। (अगस्त्यः)
यत्क्रोधभीत्या राजाऽपि स्वधर्मनिरतो भवेत्।। (शुक्रनीति)
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशात् अग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।। (मनु.)

उपर्युक्त वचनों का सार यही है कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति याने धर्म की मूर्ति, ब्राह्मण, मानो चलते घूमते तीर्थ, जिनके शब्दरूप जल से अन्य मलिन -पापी शुद्ध हो सकते हैं, इस देश में जन्म लिए ब्राह्मणों से जगत् के मानवों को चारित्र्य तथा शील की शिक्षा लेनी चाहिए।' कुछ लोग कहेंगे कि ये बहुत प्राचीन काल की, अन्य युगों की बातें हैं।' परन्तु केवल सौ वर्ष पूर्व मॅक्समूलर इस पश्चिमी महापण्डित ने हिंदुस्थान के ब्राह्मण समाज के सम्बन्ध में क्या कहा है वह देखिए,– भारत देश को, हिन्दुस्तान को क्रिश्चियन या ईसाईस्तान बनाने के लिए ही जिन्होंने पूरी कोशिश की उनका मत और अनुभव देखिए। ब्राह्मणों के चरित्र, चारित्र्य इस संबंध में एक पत्र में उन्होंने लिखा है–

`With hardly one exception, they have displayed a far greater respect for truth and for more manly, generous spirit than we are accutstomed to, even in Europe and America.' अर्थात, युरोप और अमरिका के निवासियों से भी भारत के ब्राह्मण सत्य एवं मानवोचित उदारता में अधिक श्रेष्ठ हैं। इसमें कहीं एक भी अपवाद सम्भवतः नहीं मिलता।

परधर्मियों तथा ईसाई धर्म के प्रबल भक्तों के द्वारा भी प्रशंसा करने योग्य जिस ब्राह्मण समाज की आज क्या स्थिति? यह अन्तर क्यों निर्माण हुआ? वही ब्राह्मण्य, वही सत्यनिष्ठा, वही उच्च कोटि की मानवता, वही तेज, आदि सब कहाँ लुप्त हो गए और क्यों? इसका मुख्य कारण बहुसंख्य ब्राह्मणवर्ग स्वधर्मच्युत हो गया। यह परिणाम १९२१ ईसवी के पश्चात् बहुत शीघ्र गति से हुआ। जिन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मॅक्समूलर साहब ने निजी पत्रों में उपर्युक्त वाक्य लिखे, उन्होंने छिपे तौर पर किए हुए बुद्धिभेद का परिणाम भी नहीं हुआ ऐसा नहीं कहा जा सकता। पुरुषार्थ मासिक पत्रिका के १९५८ के अंकों में इन छिपे हिंदुधर्मशत्रुओं के पत्रों को अवश्य देखना चाहिए। सर्वोत्तम, सर्वस्वप्रदायक ऐसे मंत्र से परम तेजोमय देवता की उपासना, दृश्य ब्रह्म की सन्ध्यारूप में उपासना, सदाचारों एवं यमनियमों के पालन का अभाव गत ४० वर्षों में बहुत जोर से होता रहा। उसी का परिणाम यह है कि राष्ट्रपुरुष के शिरस्थान पर विराजित ब्राह्मण समाज ही निस्तेज, निर्वीर्य, ब्राह्मण्यरहित, व्यक्तिस्वार्थसाधक, सत्तालोलुप, प्रतिष्ठालोलुप बन गया। उसी के कारण 'निःशंकं दीयते बालैः पश्य भस्मचये पदम्' ऐसा सहजता से हो गया। जिस राख की ढेरी से जरा भी धुवाँ न निकल रहा हो, उस पर छोटे-छोटे बच्चे भी निर्भय होकर नाचने लगे तो किसे दोष दिया जाए? मस्तक बिगड़ने पर हाथ, पैर, जंघादि सुदृढ़ होने पर भी राष्ट्रपुरुष का, धर्म पुरुष का, समाज का और व्यक्ति देह का भी यथोचित पालन, पोषण, रक्षण करना संभव नहीं होता। इतना ही नहीं बल्कि इसके विपरीत असंतुलित मस्तिष्क की प्रेरणा से हाथ, पैर, जंघा कितना और क्या अनर्थ करेंगे इसका कोई भरोसा नहीं है। ऐसा ही हुआ है और हो रहा है।

''ब्राह्मण्यस्य रक्षणादेव रक्षितः स्याद्वैदिको धर्मः''

ब्राह्मण्य के संरक्षण से ही वैदिक धर्म का संरक्षण हो सकेगा, ऐसा श्रीमत् शंकराचार्यजी का वचन है। सदाचारसंपन्न रहकर, यथाकाल, यथाविधि सन्ध्योपासना करने से ही ब्राह्मण्य का संरक्षण हो सकेगा और ब्राह्मण समाज में जिस प्रमाण में ब्राह्मण्य बढ़ेगा, उस प्रमाण में राष्ट्रोन्नति, धर्मोन्नति की वृद्धि समाज में तथा राष्ट्र में होगी।

विश्वामित्र जैसे महातपस्वी महावीर ने, जिस ब्रह्मतेज के सामने

'धिग् बलं क्षत्रिय-बलं, ब्रह्म-तेजोबलं बलम्।
एकेन ब्रह्मदण्डेन हतं मे क्षत्रियं बलम्।।'

ऐसे उद्‌गार प्रकट किए, वह ब्रह्मतेज नमूने के लिए भी दिखाई नहीं दे रहा है, वह किस कारण? 'ब्रह्मदण्ड' यह एक अस्त्र है, उसका मंत्र गायत्री मंत्र की तरह ही बना हुआ है, वह मंत्र 'गायत्री की महिमा' इस अध्याय में दिया है।

एक ८/१० वर्ष की आयु का ऋषिकुमार, परीक्षित जैसे महाराजा को ब्राह्मणों के द्वार का द्वारपाल (श्वान) कहता है और शाप देता है तथा उस शाप से

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परीक्षित को कोई बचा नहीं सकता है! यह जो ब्रह्मतेज सत्यनिष्ठादि यमनियमों का तथा धार्मिक शास्त्रों का आचारों का पालन करते हुए गायत्री के अनुष्ठान से प्राप्त होता है। इतना ही नहीं बल्कि पिता के अर्थात जनक के व्यक्तित्त्व में प्राप्त ब्रह्मतेज जन्म से ही उसके पुत्र में भी आनुवंशिक रूप में आ जाता है। यह इन ऐतिहासिक उदाहरणों से सिद्ध होता है। स्पष्ट है कि ८/१० वर्षों की आयु के बटु ने कितना अनुष्ठान किया होगा? जो शाप दिया वह भी (पितृभक्ति से) प्रेरित था। अपने पिता का जानबूझ कर अपमान परीक्षित ने किया है ऐसा उस कुमार को लगा, इसलिए उसने शाप दिया। ऐसी पितृभक्ति कितने ब्राह्मण-कुमारों में दिखाई देती है? उस परमोत्कृष्ट तेज की उपासना तथा सदाचार आदि का पालन जैसे जैसे कम होने लगा, वैसे वैसे वह तेज क्षीण होने लगा और असमाधान, अशांति, रागद्वेष आदि अनेक दोषों को अपने पूरे बल से धूम मचाना संभव हुआ।

आजकल कम से कम महाराष्ट्र में तो क्षत्रियों, वैश्यों में द्विजत्व पूरी तरह नष्ट हुआ प्रतीत होता है। उत्तर भारत में वह अल्प प्रमाण में क्यों न हो जागृत हुआ सा लगता है। यह भी दिखाई दिया कि श्रीमान् जयदयाल गोयंदका जैसे लोकप्रसिद्ध त्यागी, लोककल्याणेच्छु कार्यकर्ता, प्रवचनकार द्विज (वैश्य) त्रिकाल सन्ध्या योग्य समय पर करते हैं। तथा सन्ध्या के समय प्रवचन आदि नहीं करते हैं। महाराष्ट्र में क्या हो रहा है? अच्छे प्रसिद्ध प्रवचनकार, कीर्तनकार ब्राह्मण भी बिलकुल प्रातःसन्ध्या के समय में भी मंदिरों में प्रवचन करते हैं। तथा बैठने का स्थान अच्छा नहीं मिलता है इसलिए बहुत देर पहले ही ब्राह्मण समाज इकट्ठा हो जाता है।

अब तो ब्राह्मण वर्ग में कुछ गृहस्थ भी यज्ञोपवीत धारण नहीं करते हैं और कभी एकाध बार पहन लिया तो कार्य पूरा हो जाने पर वह खूँटी पर टांग दिया जाता है। बालक के यज्ञोपवीत संस्कार के अवसर पर यज्ञोपवीत गले में डाल लेते हैं, तब वह बालक बटु दूसरे ही दिन पिता से पूछता है कि पिताजी, मैं यज्ञोपवीत कब निकाल कर रख दूँ और उसे कहाँ रखूँ? यह बात कल्पित न होकर प्रत्यक्ष घटित एक उदाहरण है। पुणे नगर में भी अपने पाँच छः पुत्रों का यज्ञोपवीत संस्कार पिता ने नहीं किया जब कि उनकी आयु विवाह-योग्य हो गई। ऐसे कितने ही युवक आजकल होंगे।

कुछ तथाकथित देशभक्त, सत्याग्रही, आज की भाषा में 'स्वातंत्र्यसैनिक कहलानेवाले सुशिक्षित ब्राह्मण, जो पहले जनेऊ पहनतते थे, सुबह स्नान करते हुए कम से कम प्रार्थना तो भी करते थे, उन्होंने भी जनेऊ पहनना छोड़ दिया है

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐसा दिखाई दिया। वे १९१७ ईसवी के पहले उनके मित्र थे। उनसे (१९४५-४६ साल होगा) पूछने पर उत्तर मिला कि जनेऊ पहनकर जो करना चाहिए वह मैं कर रहा हूँ। तब उन्हें यह कहा गया कि अधिक कुछ न कहते हुए इतना ही सुझाना है कि आप प्रवाहपतित होकर ब्राह्मण्य और महाराष्ट्रीयत्त्व भूल गए हैं, इसका विचार करें। आप जैसे बड़े बनाए गए तथा बड़े बने हुए को एक अत्यंत अप्रसिद्ध, अति छोटे संन्यासी के द्वारा कुछ अधिक कहना उचित नहीं है। जो १९१८ ईसवी के पूर्व शिवाजी महाराज की निंदा करनेवालों की गर्दन काट देने तक क्रोधायमान संतप्त हो जाया करते थे, अब वे स्वयं देशभक्त बनकर शिवाजी महाराज की निंदा खुद अपने व्याख्यान में करते हैं। इसके विपरीत जिनके घर में भगवान् स्वयं सब काम करते थे और गोदावरी-गंगा नदी से पानी भरते थे, वे एकनाथ मध्याह्न-सन्ध्या-ब्रह्मयज्ञादि के लिए दोपहर, पैदल, गंगा की तपी बालू में जाते थे।

यहाँ इतना ही सूचित करना है कि ब्राह्मणवर्ग का अधःपतन ऐसा ही चालू रहा तो ब्राह्मणसमाज, हिंदुधर्म तथा राष्ट्र की अधिकाधिक अवनति होती जायेगी और जो दुर्गति होगी उसका वर्णन न करना ही अच्छा है। अभी भी सचेत होकर ब्राह्मण अपने ब्राह्मण्य की प्राप्ति के लिए सरल साधनों का अवलंब करें तथा न्यायोचित धन मिलाते हुए सदाचारी और नीतिसम्पन्न बनें। यह सदाचार कौनसा है इसे बाद के अध्यायों में विषय के अनुसार शास्त्रवचनों के आधार पर स्पष्ट किया गया है। मानव धर्म में ही नीतिधर्म का समावेश हो जाता है, इसे पहले ही सूचित किया गया है।

ब्राह्मण्य-संपादन के लिए स्वाधीन, सुलभ एवं बिना किसी खर्च का मुख्य साधन त्रिकाल-सन्ध्या को यथाविधि करना है। उसे पूरा करने के लिए कम से कम एक घटिका या आधा घंटा और अधिक से अधिक चार घटिका अथवा दो घंटे चाहिए। प्रतिदिन १ या सवा-घंटा भी इस कार्य के लिए खर्च करना संभव नहीं ऐसा व्यक्ति नहीं होगा। इच्छा, आस्था और भाव के अभाव से यह कार्य नहीं होता। और सबसे अधिक आलस्य यही एक प्रमुख कारण है।

अष्टांग योग साधन भी सन्ध्या में न जानते हुए किया जाता है। **'यम नियमों'** का पालनरूप मानवधर्म तो सभी साधनों का मूल आधार है। वह तो होना ही चाहिए। **'आसन एवं प्राणायाम'** सन्ध्या में है, इतना ही नहीं बल्कि सर्वोत्तम मंत्र के साथ है। इंद्रियों की बहिर्मुखी दौड़ रोक कर, जबरदस्ती उन्हें अन्तर्मुख, ध्येय की ओर खींचे बिना एकाग्रता सिद्ध नहीं होती है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसीलिए **'प्रत्याहार'** अवश्य चाहिए और उसका धीरे धीरे अभ्यास होता है। हृदय, भ्रूमध्य आदि किसी स्थान पर चित्त को स्थिर रखे बिना, अर्थात् **'धारणारूप'** छठे साधन के बिना ध्यान सिद्ध नहीं होता है। ध्यान सिद्ध होना प्रमुख है। ध्यान जितनी अधिक एकाग्रता से तथा अधिक समय होगा उतना अधिक लाभ विशुद्ध आनंद का होगा। और दृढ अभ्यास से, व्याकुलता से, तथा भगवती गायत्री की कृपा से **'समाधि'** भी सिद्ध होगी। तथा दुःखानुभवरहित आत्यंतिक सुख की अवस्था में रहना सम्भव होगा। ऐसे एक व्यक्ति के सम्पर्क में रहकर सैंकड़ो लोग अधिकाधिक सुखी बनेंगे।

जो उपनीत द्विज जनेऊ पहनते हैं और उन में से थोड़े, टूटीफूटी थोड़ीसी सन्ध्या कर लेते हैं वे भी जो जनेऊ पहनते हैं वह शास्त्रशुद्ध नहीं होता। जनेऊ कैसे और कब पहनना चाहिए यह भी कई लोग नहीं जानते। इसीलिए 'यज्ञोपवीत' अध्याय में आवश्यक उतनी जानकारी दी है। केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को ही जनेऊ धारण करना चाहिए, अन्य लोगों के द्वारा उसे धारण करना पाप है। परन्तु जो यज्ञोपवीत धारण करता है वह ब्राह्मण है, ऐसी गलत मिथ्या धारणा फैल जाने से की लोग जनेऊ धारण करने लग गए हैं और जिन्हें वह धारण करना चाहिए, उनका वह कर्तव्य है वे उसे धारण नहीं करते। और उसे ही वे 'सुधार' ऐसा मोहक नाम देते हैं। सनातन हिन्दू धर्म की ही अवनति हुई है ऐसा न होकर बिलकुल आधुनिक काल में निर्मित दो हजार वर्षों के बीच निर्मित धर्मों की भी अवनति हुई है। परंतु वह इस ग्रंथ का विषय नहीं है इसलिए उसका विस्तार नहीं कर रहे हैं।

ब्राह्मणस्य तु देहोऽयं क्षुद्रकामाय नेष्यते (न इष्यते)।।
कष्टाय तपसे चेह (च इह) प्रेत्याऽनन्तसुखाय च।।

ब्राह्मणों की देह क्षुद्र-तुच्छ-नश्वर कामनाओं की तृप्ति के लिए नहीं दी गई है, यहाँ परिश्रम करते हुए, ज्ञानरूप तप करते हुए, इहलोक में तथा देहनाश के पश्चात्, शाश्वत, अनंत सुख पाने के लिए वह दी गई है। सन्त कहते हैं, 'आधी कष्ट मग फळ। कष्टचि नाही ते निर्फळ' अर्थात् प्रथम परिश्रम और बाद में फल-प्राप्ति होती है। जहाँ परिश्रम ही नहीं है वहाँ फल नहीं है।' 'कष्टांची बरी भाजी भाकरी। तूप साखरे चोरुं नको।' अर्थात्, कष्ट से प्राप्त साग-भाजी रोटी अच्छी है, परन्तु चोरी से घी-शक्कर प्राप्त नहीं करनी चाहिए। ईश्वर के अनुग्रह से नरदेह और उन में श्रेष्ठतम ब्राह्मण देह प्राप्त होती है।

ईश्वरानुग्रह से प्राप्त मनुष्य देह, द्विजदेह का सदुपयोग करते हुए मानव धर्म

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

के तीस लक्षणों की प्राप्ति परिपूर्णता के साथ की गई तो ही जन्ममृत्युरूप दुःसह दुख तथा ताप से मुक्ति मिलेगी, अन्यथा यहाँ भी सुख-शान्ति, सन्तोष कभी नहीं मिलेगा और मरने के बाद अपार यमयातनाओं को भुगतना पड़ेगा। उन यातनाओं तथा ताप को सदा के लिए टालने के लिए त्रिकाल-सन्ध्या आदि कर्मों एवं उपासना से तीस गुण का संपादन सहज-सुलभ होगा। उन तीस गुणों की प्राप्ति करने की जिनमें योग्यता है वे जीव ही मानव जन्म धारण करते हैं। मानव देह यह 'स्व'तंत्रता (आत्मतंत्र) का **'ताम्रपट्ट'** है। अर्थात्, परमात्मा का जीव को दिया गया सहज अधिकार-पत्र है।

उपनयन होने पर ही त्रैवर्णिकों को सन्ध्योपासना का अधिकार प्राप्त होता है। इसीलिए उपनयन तथा पुनरुपनयन के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी आगे के अध्याय में दी गई है।

।। 'जय जय संध्ये आदिशक्ति जय' ।।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २

सन्ध्योपासना

अहरहः सन्ध्याम् उपासीत।
ये सन्ध्याम् उपासते ब्रह्म एव तदुपासते। (श्रुति)
सन्ध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा।। (अत्रि)
यः त्रिसंध्यं उपासीत ब्राह्मणः श्रद्धयान्वितः।
तत्तेजः वर्धतेऽत्यन्तं घृतेनेव हुताशनः।। (स्मृति)
विप्रो वृक्षः तस्य मूलानि सन्ध्या।
वेदाः शाखाः धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मात् मूलं यत्नतः रक्षणीयं।
छिन्ने मूले नैव वृक्षो न शाखाः।। (दे.भा.)

विप्र यह एक विशाल वृक्ष है। सन्ध्या उसकी जड़े हैं। चार वेद उसकी बड़ी शाखाएं हैं। धर्म तथा धर्मादिकर्म उसके पत्ते हैं। इसीलिए सन्ध्यारूप मूल या जड़ों का प्रयत्नपूर्वक रक्षण करना चाहिए। जड़े ही टूटने पर तो शाखा-पल्लव कुछ भी नहीं बचेगा। इस अर्थ का श्लोक विश्वामित्र कल्प में है। भाव यह है कि ब्राह्मण यदि त्रिकालसन्ध्या नहीं करेंगे तो उनके वेदाध्ययन, अन्य सभी धर्म-कर्म तथा धर्माचरण निरर्थक हो जाएंगे। और वे केवल नाममात्र के ब्राह्मण रहेंगे।

मूलानि सन्ध्या– इसलिए कम से कम तीन बार संध्या ऐसा अर्थ होता है। श्रीमद्भागवत में आदिवृक्ष का वर्णन करते समय भी 'एकायनोऽसौ द्विफलः त्रिमूलः' तीन जड़े जिसकी हैं ऐसा ही कहा है। यहाँ तीन जड़ो का अर्थ है, प्रातः सन्ध्या, मध्याह्न सन्ध्या तथा सायंसन्ध्या.

'ब्रह्मादयोऽपि सन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च।।
वेदा जपंति तां नित्यं वेदोपास्या ततः स्मृता।। (दे. भा.)

ब्रह्मादिक भगवान् भी संधि-काल में सन्ध्या का ध्यान तथा जप करते हैं, इसीलिए उसे 'वेदोपास्या' कहा जाता है।

CC0. In Public Domain. Shri Shri Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संध्योपासना किसे कहते हैं?

सन्ध्या शब्द के यहाँ अनेक अर्थ हैं तथा उसके अनुसार संध्योपासना के भी अनेक अर्थ हैं। (१) संध्येति सूर्यगं ब्रह्म-सूर्यमंडलान्तर्गत ब्रह्म याने सन्ध्या (अत्रि) (२) सन्ध्या नाम चिच्छक्तिरूपा देवता– या सन्ध्या सा जगत्सूतिः मायातीता हि निष्कला। ईश्वरी केवला शक्तिः तत्त्वत्रयसमुद्भवा।। (गौतम) सन्ध्या याने चित्शक्तिरूप देवता। जो सन्ध्या वही जगत् की उत्पत्ति आदि करनेवाली, मायातीत, पूर्ण ऐसी केवल ईश्वर की शक्ति है। 'या सन्ध्या सैव गायत्री, सावित्री च सरस्वती।।' सन्ध्या ही गायत्री, सावित्री और सरस्वती है। (३) उपासनं सन्ध्या सूर्यस्य' (व्यासः) सूर्य की उपासना सन्ध्या है। (४) संधौभवा क्रिया सन्ध्या' (व्यास) संधिकाल में की जानेवाली क्रिया, वह सन्ध्या है।

इन चार वचनों के अनुसार 'सन्ध्योपासना के तीन अर्थ सूचित होते हैं–

(१) संधिकाल में की जानेवाली सूर्यमण्डलान्तर्गत ब्रह्म की जो उपासना है, वह संध्योपासना है।

(२) संधिकाल में की जानेवाली सूर्यमण्डलान्तर्गत सच्चिदानंद स्वरूपिणी आदिशक्ति सावित्री-गायत्री की जो उपासना वह संध्योपासना है।

(३) संधिकाल में की जानेवाली सूर्य की जो उपासना वही संध्योपासना है।

अधिकार भेद के अनुसार ये तीनों अर्थ उपयुक्त एवं योग्य हैं। इन तीन अर्थों के अनुसार गायत्री मंत्र के भी तीन अर्थ हैं।

यह उपासना किस प्रकार करनी चाहिए?

'तस्य (तस्याः) दासोऽहम् अस्मि। इति; सः (सा) अस्मि इति वा मतिः' भवेत उपासकस्येति ह्येवं वेदविदो विदुः (स्मृति) उसका/उसकी मैं दास/दासी हूँ। अथवा वही मैं हूँ। ऐसी उपासक की बुद्धि तथा भाव होना चाहिए या वह होगा ऐसा वेदवेत्ताओं ने जान लिया है। सूर्यबिंब के अन्तर्गत ब्रह्म का अर्थात् सूर्यरूप ब्रह्म का, सूर्यबिंबान्तर्गत गायत्री देवता का, अथवा सूर्य का, 'वही मैं हूँ अथवा उसका मैं दास हूँ' इस भाव से ध्यान-चिंतन करना याने संध्योपासना-संध्योपास्ति सन्ध्यावंदन है।

संधिकाल में किया जानेवाला कर्म यह अर्थ अत्यंत व्यापक है। इसके पूर्व दिए गए अर्थ और यह अर्थ इस में अन्तर होने से (संधिकाल) सन्ध्याकाल कौनसा इसका कथन दो प्रकार से किया जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सन्ध्याकाल–

> ***'उत्तमा तारकोपेता, मध्यमा लुप्ततारका,***
> ***अधमा सूर्यसहिता, प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता।***
> ***उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्त भास्करा (लुप्ततारका-पा. भे)***
> ***अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता।। (मनु आदि)***
> ***तारकाओं के रहते सन्ध्या करना यह उत्तम काल है।***

परन्तु तारकाएँ मध्यरात्रि में भी होती हैं, इसलिए दूसरी एक स्मृति में कहा गया है कि 'उदयात् प्राक्तनी सन्ध्या घटिकात्रयमुच्यते।' अर्थात् प्रातः सन्ध्या का उत्तम काल सूर्योदय के पूर्व तीन घटिका तथा इसी उपलक्षण के आधार पर सूर्यास्त से तीन घटिका काल लेना चाहिए। आचमन से प्रारंभ करने का यह काल है ऐसा किसी को प्रतीत होगा इसलिए अग्निस्मृति आदि में कहा है कि,

> ***'सन्ध्याकालः प्रागुदयात् विप्रस्य द्विमुहूर्तकः।।***
> ***क्षत्रियस्य तदर्धं वा; तदर्धं स्यात् विशोऽप्युत।।***

प्रातः सन्ध्या का उत्तम काल ब्राह्मणों के लिए सूर्योदय के पूर्व दो मुहूर्त अर्थात् चार घटिका माना गया है, वही क्षत्रियों तथा वैश्यों के लिए है। परन्तु 'वा' शब्द सूचित किया है कि उन्हें दो घटिका लेना दोषार्ह नहीं है। सायंसन्ध्या का काल स्कंदपुराण में इस प्रकार बताया गया है :–

> ***'रवेरस्तमयात् पूर्वं घटिकैका यदा भवेत्।***
> ***सायं सन्ध्यां प्रकुर्वीत...'***

सूर्यास्त के लिए एक घटिका हो तब सायंसन्ध्या प्रारंभ करनी चाहिए। अर्थात सूर्योदय के पूर्व चार घटिका प्रातःसन्ध्या के आचमनादि कर्मों का प्रारंभ करना चाहिए, यही उत्तम काल है और सूर्यास्त के लिए एक घटिका हो तब आचमनादि प्रारंभ करना चाहिए। इस ग्रंथ में दिए गए, आचमन से लेकर न्यास-मुद्रा तक सभी कर्मों को एक घटिका (आधा घंटा) काफी होता है, ऐसा अनेक व्यक्तियों का अनुभव है। इस प्रकार सुबह प्रातःकाल के पूर्व तथा सन्ध्याकाल में या शाम को सूर्यास्त के पूर्व अर्घ्य दिए जा सकते हैं तथा प्रमुख सन्ध्या का तीन घटिकाओं का उत्तम काल मिल जाता है। आगे 'गायत्री जप' अध्याय में साधार सिद्ध किया है कि सन्ध्या का सर्वाधिक प्रमुख कर्म गायत्री का ध्यानयुक्त जप है।

ध्यान– तीन प्रकार के ध्यान में सूर्यबिंब के अन्तर्गत ब्रह्म का ध्यान सर्वाधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि उसी के कारण ब्रह्मरूप में होनेवाले जीव को ब्रह्मरूप

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

की अनुभूति प्राप्त होती है। अर्थात् दुःखरहित नित्य शुद्ध सुख की, जीवनमुक्ति की प्राप्ति होती है। मानवता की परिपूर्णता हो जाती है। जिनको यह ध्यान नहीं सधता, उन्हें दूसरे प्रकार के; तथा वह भी संभव न हो तो उन्हें तीसरे प्रकार के अर्थात् गहरे लाल रंग के सूर्यबिंब का ध्यान करना चाहिए। नए यज्ञोपवीतधारी बच्चे को भी यह सहज साध्य होगा। परन्तु ध्यान के संबंध में उन्हें कोई बताता ही नहीं है। सूर्यबिंबध्यान से प्रारंभ करना चाहिए। इस अभ्यास से तथा गायत्री की कृपा से क्रमशः सहज प्रगति होगी, होती है तथा धीरे धीरे अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

द्विजत्व प्राप्त होने के बाद अन्तिम साँस तक सन्ध्या करनी ही चाहिए। संध्योपासना करना याने ब्रह्म की ही उपासना करना है। इस अर्थ की श्रुति इसके पूर्व दी गई है। वैसे ही आत्मविद् (अर्थात् आत्मज्ञानी) पुरुष को भी रोज त्रिकाल सन्ध्या करनी चाहिए, इस अर्थ की अत्रिस्मृति का वचन प्रारंभ में ही दिया गया है। संत श्री एकनाथमहाराज भी त्रिकाल सन्ध्या करते थे। फिर दूसरों को सन्ध्या न करने से कैसे सन्तोष प्राप्त होगा?

आशंका– 'सन्ध्याम्' ऐसा एकवचन श्रुति के द्वारा दिए जाने पर त्रिकाल सन्ध्या क्यों?

समाधान– केवल वेदश्रुति यही एकमात्र धर्मशास्त्र नहीं है। 'श्रुति स्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्' आदि पहले ही कहा जा चुका है और श्री ज्ञानेश्वरजी की पंक्तियाँ भी दी गई हैं। केवल अत्रि स्मृति में ही त्रिकाल सन्ध्या का निर्देश है ऐसा नहीं।

'एतत् सन्ध्यात्रयं तत्र न स ब्राह्मण उच्यते।। (छांदोग्य परिशिष्ट, गोभिल स्मृति) इस प्रकार के अनेक वचन स्मृतियों में तथा पुराणों में दिए हैं। बृ. पाराशर स्मृति में (जो कलियुग में प्रमुख प्रमाण मानी गई है) तो स्पष्ट कहा है कि जो मध्याह्न सन्ध्या नहीं करेगा वह अंधतामिस्र नामक नरक में जाएगा। (अ. २/२४/ २७) इसका कारण भी वहाँ दिया गया है। मध्याह्न सन्ध्याकाल-निर्णय गायत्री जप नामक अध्याय में देखिए ताकि नौकरी आदि करनेवालों को सन्ध्या करना असंभव प्रतीत नहीं होगा।

आशंका– सूर्यमण्डलान्तर्गत ब्रह्म का ध्यान, गायत्री मंत्र का जप करना यही यदि सन्ध्या का मुख्य कर्म होगा तो विष्णु, राम, कृष्ण, शंकर, गणपति, आदि भी ब्रह्मस्वरूप परमात्मा हैं तथा उनके मंत्र भी भोग-ज्ञान-मोक्ष देनेवाले हैं, तब उन मंत्रों से उनका ध्यान क्यों नहीं करना चाहिए?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समाधान– ब्रह्म याने जिससे, जिसके कारण जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होता है 'वह'। वह ब्रह्म निष्क्रिय, निरंजन, निर्गुण, निराकार, कार्यकारणातीत, अदृश्य, अग्राह्य आदि प्रकार का है। राम, शिव, कृष्ण यद्यपि ब्रह्मस्वरूप हैं और उत्पत्ति आदि कार्य होते हैं, फिर भी वृष्टि, अनाज, वनस्पति, प्राणी आदि उनके कारण ही उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं तथा नष्ट होते हैं, क्या यह प्रत्यक्ष अनुभव में आता है? जो कोई इन देवताओं की उपासना करने लग जाता है, उसने कभी उन देवताओं को नहीं देखा होता। चौबीस वर्ष, पूरे जन्म तक उपासना करने के बाद भी अनेकों को वे दिखाई नहीं देते। उनके कारण ही अनाज पक जाता है, अन्नजल, प्रकाश-ऊष्णता मिलती है तथा जगत् के व्यवहार उनकी प्रेरणा से चलते हैं यह प्रत्यक्ष प्रयोगों से सिद्ध नहीं किया जा सकता है। आदि अनेक बातें हैं।

सूर्य सभी को दिखाई देता है। जन्मांध को भी उसका अस्तित्व तथा उसके उदय-अस्त के परिणाम समझ में आ जाते हैं। सूर्य किरणों की ऊष्णता से जल की भाप हो कर बादल बनते हैं तथा पानी बरसता है। सूर्य की किरणें कई दिनों तक पृथ्वी पर न आए तो फसल अच्छी नहीं होती है। तथा मनुष्यों को भी वे दुर्दिन प्रतीत होते हैं। 'मेघच्छन्नेऽन्हि दुर्दिनम्।' उन दिनों उस में उत्साह नहीं होता है तथा कब सूर्य के दर्शन होते हैं ऐसी उत्सुकता उसे लगती है।

महाराष्ट्र में ठण्ड काल में सूर्य केवल ११ या १०॥ घंटे ही रहता है; अर्थात् दिन के १२ घंटो में एक या सवा-घंटा कम ही रहता है। तब वहाँ के लोग 'बहुत ठण्ड लग रही है' कहने लगते हैं। चिड़ियाँ, बगुले, मच्छर आदि जंतु और कभी कभी कुछ आदमी भी ठण्ड से ठिठुरकर मर जाते हैं, तब यदि सूर्य चौबीस घंटे उदित ही न हो तो क्या अवस्था होगी इसकी कल्पना ८-१० वर्षों का बालक भी कर सकता है। अगर वैसा हुआ तो मनुष्यों के साथ सभी प्राणी मृत हो जाएँगे। गरमी में महाराष्ट्र में सूर्य बारह घंटों से अधिक १-१। घंटा रहता है तो वहाँ के लोग 'कितनी कड़ि धूप है' चिल्लाने लगते हैं। कुछ लोग ऊष्माघात (सनस्ट्रोक) से तुरन्त चल बसते हैं। सूर्य का यदि एक दिन भी अस्त न हुआ तो सभी प्राणी नष्ट हो जाएँगे। इस से किसी को भी विश्वास होगा कि जगत् का जीवन सूर्य पर ही पूरी तरह अवलंबित है। यह जैसे कोई भी समझ सकता है, वैसे विष्णु, शंकर, गजानन आदि के संबंध में उसकी समझ में कुछ नहीं आसकता। सूर्य छोटे बच्चों को भी दिखाई देता है। सूर्य याने प्राणियों की क्रियाओं को, प्राणों को प्रेरणा देनेवाला (अ.व्या.सु.) 'सूर्य प्राणों का प्रेरक है' इसकी प्रतीति कोई भी ले सकता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। किसी भी मंत्र का प्रातःकाल में १/२ घंटे जप गिनकर कीजिए। और उसी दिन सूर्योदय के पश्चात् छः घटिका (तीन घंटे) धूप में जाकर पहले की तरह ही जप कीजिए। तब यह ध्यान में आ जाएगा कि उतने ही समय में जप की संख्या सवा से लेकर डेढ़गुना बढ़ गई है। इसका कारण सूर्य के तेज से अधिक प्रेरणा प्राणों को मिलती है। प्राणस्पंदन बढ़ने से वाणी की गति बढ़ जाती है। यह अनुभव इसके पहले कई बार आया है। इसीलिए ही सूर्य को प्रजा के प्राण कहा गया है। 'प्राणः प्रजानाम् उदयति एषः सूर्यः' (प्रश्न ३.) जिस कमरे में सूर्य की किरणें बिलकुल नहीं आतीं, वहाँ रहनेवाला मनुष्य फीका, निस्तेज, निरुत्साही बन जाता है। आरोग्यहानि होती है। पहले अंधेरी-कोठी की सजा दी जाती थी। कलकत्ता की अंधेरी-कोठी इतिहास में प्रसिद्ध-कुप्रसिध्द है। सूर्य को ही कार्यकी दृष्टि से 'सविता' कहा गया है। 'सविता' का अर्थ है जगत् की उत्पत्ति आदि करनेवाला। उसकी जो चित्शक्ति, वही सावित्री है, उसे ही 'गायत्री' यह नाम मिला है।

आशंका– महाशयजी! लेकिन उत्तर ध्रुव के प्रदेश में सूर्य छः मास तक उदित ही नहीं होता है तथा छः मास तक डूबता भी नहीं है, तब वहाँ मानव प्राणी किस तरह जीवित रहते हैं और कैसे उनका व्यवहार चालू रहता है?

समाधान– ऐसा माननेवालों को उस प्रदेश में १/२ मास तक जाकर रहना चाहिए। तब स्वानुभव से उन्हें पता चल जाएगा कि वहाँ लोग-प्राणी कैसे जीवित रहते हैं, क्या खाते हैं, कहाँ रहते हैं, तथा उनकी संख्या कितनी है? राम राम! कैसा है वह जीवन!! उस प्रदेश में अनाज नहीं, वृक्ष, लता, घासफूस आदि कुछ भी नहीं है। पाषाण नही, मिट्टी नहीं, तालाब, कुआँ, नल का पानी आदि नहीं है। जिन छः महीनों में आकाश में सूर्य नहीं होता, उस समय में सूर्य का परिवर्तित प्रकाश, जिसे 'आरोरा बोरिआलिस' कहते हैं, सदा रहता है और जिन छः महीनों में वह बिलकुल अस्त नहीं होता है, तब वह अपने यहाँ क्षितिज के पास रहनेवाले अस्तंगत सूर्य की तरह दिखाई देता है, वही रहकर वह गोल परिभ्रमण करते रहता है। इसलिए उसकी ऊष्णता बाधक नहीं होती है। डूबते सूरज की किरणें अपने यहाँ जितनी सौम्य होती हैं, उतनी भी ऊष्ण वहाँ नहीं होती है। इसका कारण यह है कि चारों ओर सर्वत्र बर्फ ही बर्फ फैली रहता है। गर्मी के दिनों में भी बर्फ से पानी बनाकर वहाँ प्यास बुझानी पड़ती है। सूर्योपनिषद में तो स्पष्ट ही कहा है कि सूर्य पर ही सभी जगत् अवलंबित रहता है। उस उपनिषद का पद्यानुवाद आगे चलकर एक अध्याय में अष्टक के रूप में दिया गया है।

पश्चिमी देशों में तथा विशेष रूप से अमरिका में स्वास्थ्य के लिए संपूर्ण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

शरीर वस्त्रहीन करते हुए सूर्य किरणों में तपाया जाता है जिसे 'सनबाथ' कहते हैं। इस उद्देश्य से वहाँ नग्नसंस्थाओं (न्यूड सोसायटी) की निर्मिति बहुत वर्षों पहले हुई है। हिंदू-धर्मशास्त्र में भी सूर्यकिरण-स्नान का गौण-स्नान में अन्तर्भाव किया है; परन्तु नग्नावस्था में नहीं।

अमरिका में प्रमुख रूप से स्वास्थ्य के लिए तथा इन्द्रियनिग्रह के लिए स्त्रियों तथा पुरुषों की एकत्रित रहनेवाली नग्न संस्थाएँ निर्माण हो रही हैं, वहाँ महाराष्ट्र में नामकरण विधिसे ही शिशुओं को पैर से लेकर सिरतक, नखशिखान्त कपड़ों में लपेट कर उनकी त्वचा को सूर्यकिरणों का स्पर्श भी न होने देने की सतर्कता, फॅशन के नाम पर, बरती जाती है। इस प्रकार शैशवावस्था से ही उसकी रोगप्रतिकारशक्ति को नष्ट किया जाता है। इसके कारण डॉक्टरों को बुलाने की तथा चिन्ता एवं कष्ट की बार-बार आवश्यकता पड़ जाती है।

पानी पर सूर्य के किरणों को डालकर विविध बीमारियाँ दूर करने की चिकित्सा पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है, जिसे 'क्रोमोपॅथी' कहा जाता है।

सन्ध्या आदि कर्म करते समय कंचुक (गंजी या सिला हुआ कपडा) शरीर पर नहीं होना चाहिए ऐसा नियम है। गरम वस्त्र डाला जा सकता है, उस संबंध में 'वस्त्रधारण' अध्याय में अधिक विस्तार से कहा गया है।

आशंका– सूर्यबिम्बान्तर्गत ब्रह्म की उपासना स्वीकार है, परन्तु गायत्री या सावित्री किसलिए चाहिए?

समाधान– ब्रह्म निष्क्रिय, निर्गुण, निराकार, आदि प्रकार का होता है यह सम्भवतः आप को मालूम नहीं है ऐसा लगता है। ब्रह्म कुछ नहीं कर सकता। किसी को प्रेरणा, ठंड या गरम आदि कुछ देने में असमर्थ है। श्रीमदाचार्य 'आनन्दलहरी' के प्रथम श्लोक में ही कहते हैं,

'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं।
न चेदेवं देवो न खलु भवति स्पंदितुमपि।।'

शक्ति से युक्त होने पर ही शिव अपना प्रभाव डाल सकता है। उसके बिना वह जरा भी स्पंदन या हिलना-डोलना नहीं कर सकता है। श्रीमद् भागवत में भी यही कहा है–

'न घटते उद्भवः प्रकृतिपुरुषयोः अजयोः।
उभययुजा भवन्ति असुभृतः जलबुद्बुदवत्।। (भागवत १०/८७)

प्रकृति एवं पुरुष (आदिशक्ति एवं ब्रह्म) अज होनेपर भी किसी एक को दूसरे के बिना कुछ भी नहीं करते बनता है। दोनों का योग होनेपर भी भूतों की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्पत्ति आदि क्रिया घटित हो सकती है। शिव ने आदिशक्ति महेश्वरी से कहा है कि हे देवि! तुम्हारे बिना मैं (शिव) शव जैसा हूँ। आदि; 'शक्तिं विना महेशानि! सदाऽहं शवरूपकः' (दे. भा.) अमृतानुभव रचना में श्री. ज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं, 'जेणे देवें संपूर्ण देवी। जियेवीण काही ना तो गोसावी। किंबहुना एकोपजीवी। येकमेकांची।।' अर्थात्, पुरुष के कारण देवि को पूर्णता मिली है। देवि के बिना वह कुछ भी नहीं है, इसप्रकार दोनों एकरूप परस्परावलंबित हैं।'

मनुष्य और उसकी शक्ति का भी यही संबंध है। मनुष्य के आधार बिना शक्ति कुछ भी कार्य नहीं कर सकती। तथा शक्ति की सहायता के बिना मनुष्य-जीव कुछ भी नहीं कर सकता। वस्तुतः सारा कर्तृत्व केवल शक्ति का ही है। और वह पूरी तरह नष्ट हो जानेपर मनुष्य शव जैसा ही नहीं बल्कि शव ही हो जाता है। प्राणों को प्रेरणा देनेवाली वही है। 'जे जडाते जीववी। चेतनाते चेतवी। मनाकरवी मानवी। शोक मोहो।।'' (श्रीज्ञानेश्वरमहाराज) अर्थात् वही शक्ति जड़ को जीवित बना देती है, चैतन्य को प्रेरणा देती है तथा मन के द्वारा शोक-मोह आदि का अनुभव करा देती है।

यह कार्य जीवभूत पराप्रकृति अर्थात् जीव की शक्ति करती है। देवी भागवत में आदिशक्ति ब्रह्मदेव से कहती है, यदि कोई प्राणी दुर्बल हो जाए, तो कहा जाता है कि वह अशक्त या शक्तिहीन बन गया। 'उस में निहित शंकर-विष्णु का अंश कम हो गया' ऐसा कोई नहीं कहता है। सर्व व्यापक ब्रह्मतत्त्व तो मृतदेह-शव में भी होता ही है, परन्तु क्या वह कुछ करता है? इस तथ्य से यही सूचित होता है कि शक्ति के बिना ब्रह्म को स्पंदन करना भी संभव नहीं है। ब्रह्म जिस प्रकार अदृश्य है, उसे स्पर्श करना संभव नहीं है, उसी प्रकार शक्ति भी दिखाई नहीं देती है, उसे स्पर्श करना संभव नहीं है। वह इंद्रिय का विषय नहीं है। केवल उसका कार्य दिखाई देता है। वह अनुभवगम्य है तथा अनुमान के आधार पर उसके अस्तित्व का बोध होता है, इसीलिए शक्ति को, आदिशक्ति को 'कार्यानुमेया' कहा जाता है। मनुष्य की शक्ति कभी किसी को सगुण-साकार रूप में चर्मचक्षुओं से दिखाई नहीं देती। परन्तु सूर्यब्रह्म की, सविता की चित्शक्ति सावित्री, गायत्री को सगुण-साकार स्वरूप में कई लोगों ने खुली आँखों से देखा है तथा उसने उनके साथ संभाषण भी किया है। गौतम ऋषि को वह साक्षात् दिखाई दी आदि गौतमकृत स्तोत्र से सिद्ध होता है। १३३१ ईसवी में श्रृंगेरी मठ के शंकराचार्य श्रीमत् विद्यारण्यस्वामीजी को गायत्री ने दर्शन दिए थे तथा उनके साथ उसने संभाषण भी किया था।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

क्या गायत्री ब्रह्म से अलग है? नहीं। गायत्री ही ब्रह्म है। 'गायत्री ब्रह्म इति उपासीत' गायत्री ब्रह्म है ऐसा जानकर उसकी उपासना करनी चाहिए। 'न भिन्नां प्रतिपद्येत गायत्रीं ब्रह्मणा सह' (व्यास) ब्रह्म से गायत्री को भिन्न नहीं माने। सन्ध्या = ब्रह्म, सन्ध्या = गायत्री, 'या सन्ध्या सा एव गायत्री,' अतः गायत्री ब्रह्म। 'गायत्र्याख्यं ब्रह्म गायत्री-मुखेन उक्तम्' (नृ.पू. ४/२) गायत्री नामक जो ब्रह्म है उसी का प्रतिपादन गायत्री मंत्रद्वारा किया जाता है।

'गायत्री परदेवतेति गदिता ब्रह्म एव चितूरूपिणी।।
यया प्रकाश्यते ब्रह्म सच्चिदानन्दलक्षणम्' (बौध स्मृ.)

गायत्री को श्रेष्ठ देवी कहा गया है। वह चिद्रूपिणी ब्रह्म ही है। और उसके द्वाराही सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म प्रकाशित किया जाता है, ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। अपरोक्षानुभव प्राप्त होता है। इस उद्धरण से यह सिद्ध होता है कि गायत्री मंत्र तथा गायत्रीदेवी एक ही है। 'मंत्राः एव तु देवताः' यह सिद्धान्त ही इससे सिद्ध होता है।

आशंका– गायत्री यह एक छंद का नाम है और वही गायत्री मंत्र का छंद है, क्या उसी के कारण वह गायत्री कहलाती है?

समाधान– ऐसा नहीं है। गय = प्राण, जीव; उनका त्राण = संरक्षण, उद्धार करती है इसलिए वह गायत्री कहलाती है। (बृह. ५/१४/४) गायन्तं त्रायते यस्मात् गायत्रीति ततः स्मृता' (अग्नि. पु.) उपासना करनेवाले का संरक्षण जन्म-मरणादि से करती है इसलिए वह 'गायत्री' है। 'जगदादि प्रसूते' इसलिए सावित्री तथा 'वागरूपत्वात्सरस्वती' वह वाग्रूप या वाणीरूप शब्द स्वरूप है इसलिए वह सरस्वती है। इच्छा, ज्ञान, और क्रिया इन तीन शक्तियों से युक्त पूर्ण सम्पन्न होने से उसे 'त्रिशक्ति' कहा जाता है। वह गायत्री ब्रह्मविष्णूशिवात्मिका, भूमि-अन्तरिक्ष द्यौः स्वरूपा तथा प्राणापानव्यानस्वरूपा है। (बृह.) सबका सार यही है कि 'गायत्री वा इदं सर्व भूतं यत् इदं किञ्च' (छां, ३/१२/१) यह सम्पूर्ण दृश्य जगत तथा जो कुछ यत्किचित् अन्य होगा, वह सब गायत्री ही है। 'सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषःच।' (ऋग्वेद सं. तथा सूर्योप.) सूर्य संपूर्ण स्थावर-जंगम की आत्मा है।

'आदित्यान्तर्गतं यत् च ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्।
हृदये सर्वभूतानां जीवभूतं च तिष्ठति।। (याज्ञ)

आदित्यमंडल में जो सभी ज्योतियों से श्रेष्ठ ज्योति है (दीप्तिभर्ग) वही स्वतःसिद्ध स्वयंप्रकाश ज्योति सभी भूतों के हृदय में जीवरूप में विद्यमान् है। यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जीव तथा ब्रह्म का अभेद सिद्ध हुआ। गायत्री के आवाहन के मंत्र में भी 'गायन्तं त्रायसे यस्मात् गायत्री त्वं ततः स्मृता' ऐसा कहने पर भी सन्ध्या करनेवाले, संस्कृत विषय में बी.ए. उत्तीर्ण लोग भी यह आशंका पूछते हैं, इससे से यह तर्क किया जा सकता है कि सन्ध्या में उनका कितना ध्यान रहता है।

ध्यान कहाँ करना चाहिए– नाभिस्थान, हृदय, भ्रूमध्य और ब्रह्मरंध्र ये ध्यान के मुख्य स्थान होनेपर भी सब की सुलभ, सुखद तथा कुछ दुष्प्रभाव पड़ने का भय जहाँ न हो ऐसा स्थान है हृदय। यहाँ हृदय का मतलब रक्ताशय (हार्ट) नहीं है। सीने के मध्य में जहाँ अनाहतचक्र का स्थान बताया गया है, वह हृदय है। भ्रूमध्य में ध्यान करने से ज्ञान प्राप्ति शीघ्र होती है यही कहना सही है परन्तु ऊष्ण प्रकृति, पित्तप्रकृति अथवा ऊष्ण-पित्त प्रकृति के व्यक्तियों को अथवा रक्तदाबाधिक्य (हायब्लडप्रेशर) की प्रकृति रखनेवालों को इस प्रकार का ध्यान बहुत खतरनाक होता है। एक उदाहरण देखिए। बडोदा नगर में एक रेल विभाग में नोकरी करनेवाले जोगलेकर नामक ब्राह्मण बहुत दिनों तक प्रतिदिन बारह सौ गायत्री जप करते थे। उन्हें बार बार चक्कर आने लगे। गायत्री जप का यह परिणाम समझ कर उन्होंने सन्ध्या करना छोड़ दिया। उनका विश्वास नष्ट हो गया था, इतना ही नहीं बल्कि 'सन्ध्या' नाम सुनते ही वे चिढ़ उठते थे। १९३५ ईसवी में अजमेर नगर में यह घटना मालूम हुई थी। बडोदा जाने पर उनसे भेंट हुई, तब उनसे पूछा 'क्या सन्ध्या करते हो?' ऐसा पूछते ही वे तिलमिला गए। उन्होंने सारी घटना क्रोधभरे शब्दों में प्रकट की। तब उनसे पूछा कि 'भ्रूमध्य में ध्यान करते हुए क्या जप करते थे?' उन्होंने स्वीकार किया, तब उन्हें उपर्युक्त धोखे की सूचना दी तथा उन्हें हृदय में ध्यान करने की सलाह दी। और कहा कि पूर्व अनुभव के विरुद्ध अनुभूति प्राप्त होगी। उन्होंने वैसा ही किया। यदि पहले जैसा जप का क्रम चालू रखते तो सम्भवतः अर्धांगवायु के झटके आ जाते अथवा मस्तिष्क में रक्तस्राव (सेरिब्रल हेमरेज) होकर मर भी जाते! ब्रह्मरंध्र में ध्यान करने से इससे भी अधिक धोखा ऐसी प्रकृति रखनेवाले को हो सकता है। नाभिस्थान में ध्यान करने से अग्नि प्रदीप्त होता है। पचनशक्ति बढ़ती है, अपचन सें होनेवाले विकार सहजरूप से ठीक हो जाते हैं, आदि लाभ अवश्य होते हैं तथा वहाँ ध्यान करने से शरीर के सभी अवयवों का ज्ञान प्रत्यक्ष अन्तश्चक्षुओं को हो जाता है यह सही है, परन्तु वह अग्निचक्र होने से ऊष्णता बहुत बढ़ जाती है और उसे सहना सबके लिए संभव नहीं है।

इसका कारण यह है कि जहाँ ध्यान करते हैं वहाँ प्राण एवं रक्त का प्रवाह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जोर से चलने लगता है। मस्तिष्क में स्थित सूक्ष्म रक्तवाहिनियों को उसकी गति तथा दबाव सहा नहीं जाता है। उसके कारण सिरदर्द, चक्कर आना, बेहोश होना आदि विकार उत्पन्न होते हैं। तथा अन्त में रक्तवाहिनी फट जाती है. और मस्तिष्क में रक्तस्राव होता है। हृदयस्थान रक्ताशय के पास होने से प्रेम, भक्ति इनकी प्राप्ति होने में बहुत सहायता मिलती है। जहाँ प्रेम नहीं, दया नहीं, सद्भावना नहीं, उसी को हृदयशून्य (हार्टलेस) कहा जाता है। वह इसी कारण से है। मस्तक का संबंध ज्ञान से माना जाता है, इसीलिए उलटी खोपड़ी का, सिर घूमना, सिर उठाना, सिर खुजलाना आदि सैंकड़ों मुहावरे भाषा में प्रचलित हो गए हैं।

आशंका– सुबह तथा शाम को संधिकाल होता है, परन्तु मध्याह्न में, कहाँ संधिकाल होता है?

समाधान– 'मध्यान्हेऽपि च संधिः स्यात्। पूर्वास्याऽन्हः अपरस्य च।। ' (बृ.पारा. अ. २/११) मध्याह्न में भी पूर्वाह्न और अपराह्न का संधिकाल होता है। वह कौनसा है यह गायत्री जप अध्याय में सूचित किया गया है।

ध्यान में रखना चाहिए कि,

'स्वकाले सेविता नित्यं सन्ध्या कामदुधा भवेत्। अकाले सेविता सन्ध्या सा च वंध्या वधुः इव।। (स्मृति) जिस सन्ध्या का जो उत्तम काल बताया गया है, उस काल में नित्य नियमानुसार त्रिकाल सन्ध्या करने पर वह कामधेनु बन जाती है। अकाल में की गई सन्ध्या वंध्या-पत्नी की तरह बाँझ सिद्ध होती है।

गायत्री कितने अक्षरों की होती है?

'गायत्री चतुर्विंशत्यक्षरा त्रिपदा' (नारा. उ.)

८/८ अक्षरों के तीन पादों की त्रिपदा गायत्री, जिसमें २४ अक्षर होते हैं। गिनकर देखने से केवल २३ अक्षर ही होते हैं। केवल व्यंजन याने अक्षर नहीं यहाँ प्रथम पाद में सात ही अक्षर हैं। ऐसे समय क्या करना चाहिए यह एक छंद-सूत्र में बताया गया है। 'इयादि पूरणः पादः' ऋक् प्रातिशाख्य पटल १७/१४, उन चरणों में इ अथवा उ आदि स्वर व्यंजन में संख्या पूर्ण कर लेनी चाहिए। उदाहरण देखिए– (१) आपो ज्योती... स्वरोम्' इस शिरोमंत्र को षोडशाक्षरी कहा गया है। 'षोडशाक्षरकं ब्रह्म गायत्र्यास्तु शिरःस्मृतम्' (व्यास, आदि) गिनकर देखने से केवल १५ अक्षर ही होते हैं। उपर्युक्त सूत्र के आधार पर स्वरोम् का उच्चार सुवरोम् करना चाहिए। स्व में होनेवाले स् में उकार मिला दीजिए तब संख्या पूर्ण हो जाती है। तैत्तिरीय ऐसा ही उच्चार करते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(२) दूसरा उदाहरण– 'भूमिः अन्तरिक्षं द्यौः इत्यष्टाक्षरम्।' 'प्राणः अपानः व्यानः इत्यष्टाक्षरम्' इन में सात-सात अक्षर होने पर भी अष्टाक्षर (बृह. उप.) कहा गया है, इसलिए 'भूमिः अन्तरिक्षं दियौः' और 'प्राणः अपानः वियानः' यहाँ है, ऐसा समझना चाहिए।' विद्याविनोदभाष्य में ऐसा ही स्पष्ट किया गया है। यहाँ दोनों स्थानों में 'इ'कार से पूर्णता की गई है। इसी प्रकार गायत्री के प्रथम चरण में वरेणियम्' कहना चाहिए। 'इ'कार से पूर्ति की जाती है यह पद्मपुराण, अग्निपुराण, दे. भा, बृहत् पाराशर स्मृति, मंत्रमहार्णव, गायत्री पुरश्चरणपद्धति (दो) तथा गुरुचरित्र इन सभी में अक्षर न्यास में 'रे णि, यम्' ऐसे तीन अक्षर बताकर सिद्ध किया गया है। 'रेणियं' इस में 'रे' का दीर्घ उच्चार अधिक दीर्घ करते हुए णियं का तुरन्त संक्षिप्त उच्चार करने से सब ठीक हो जाता। 'रे' यह गायत्री का बीज, 'णि' शक्ति अ तथा 'य' कीलकम् ऐसा वर्णन अनेक स्थानों पर प्राप्त होता है। छोटेसे वटबीज में जिस प्रकार महान वटवृक्ष छिपा होता है, उस प्रकार देवता उसके बीजमंत्र में छिपे होते हैं। अन्य देवताओं के बीजमंत्र का उच्चार योग्य विधियुक्त किया जाए तो संबंधित देवता अन्तर्दृष्टि में प्रकट हो जाते हैं और कभी कभी अधिकारी व्यक्ति में प्रवेश भी करते हैं। उसी प्रकार 'रे' इस बीज का उच्चार दीर्घ-कांस्यघंटानिनादवत् करने से भी यह घटित होता है। सुभूमि और सुजल के संयोग से जिस प्रकार बीज में निहित छुपा वृक्ष प्रकट हो जाता है। उसी प्रकार बीजस्थ देवताएँ योग्य हृदयभूमि तथा योग्य उच्चारजल के संयोग से प्रकट हो जाते हैं। यह केवल शास्त्र के रूप में नहीं कहा जा रहा है बल्कि १९५२-५३ ईसवी से यह अनुभव अनेकों ने कई बार प्राप्त किया है।

प्रेरणा, अन्तःस्फूर्ति-सन्ध्योपासना से किस प्रकार प्रेरणा मिलती है इस संबंध में पश्चिमी विद्वानोंका किया हुआ 'गायत्री की महिमा' का बखान पूर्व अध्याय में किया जा चुका है। अनेकों के तथा स्वयं लेखक के अनुभव के आधार पर कहना चाहूँगा कि जो द्विज उत्तम समय में उत्तम पद्धति से प्रातःसन्ध्या में नित्य नियमपूर्वक बारह सौ जप तथा मध्याह्न सायं-सन्ध्या में हर समय केवल १०८ गायत्री जप करेंगे, सदाचारी और नीतिसंपन्न बने रहेंगे वे वैद्य, डॉक्टर, वकील, ज्योतिषी, व्यापारी आदि कोई भी हो, उन्हें उनके व्यवसाय में योग्य समय पर अचूक प्रेरणा प्राप्त होती। वैद्य-डॉक्टरों को रोगनिदान निश्चित तथा शीघ्र होगा, प्रतिपक्ष के साक्षीदार को निरुत्तर कैसे करना चाहिए यह बात वकील के तुरन्त ध्यान में आ जाएगी। ज्योतिषी स्वभाव आदि के साथ भूत-भविष्य-वर्तमान घटनाओं का वर्णन सही रूप में कर सकेंगे। व्यापारी को कब बड़े प्रमाण में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खरेदी-बिक्री, तथा संग्रह करना है आदि की प्रेरणा मिलेगी, ऐसा ही किसी व्यवसाय में घटित हुआ है अथवा होता है।

अशौच में सन्ध्या

'सूतके मृतके चैव सन्ध्याकर्म न तु त्यजेत्।
मनसोच्चयारयेत् मंत्रान् प्राणायामं ऋते द्विजः।। (गोभिल)

जनन-अशौच तथा मृत-अशौच में भी सन्ध्या करनी ही चाहिए। सन्ध्या का त्याग नहीं करना चाहिए। केवल मंत्रों का उच्चार मन में करना चाहिए। तथा प्राणायाम मंत्र के बिना करना चाहिए। अर्घ्य नित्य की तरह वैखरी से मंत्रोच्चार करते हुए देना चाहिए। मार्जन करें अथवा न करें। सूर्यबिम्ब का ध्यान करते हुए केवल नमस्कार कर उपस्थान करें। (आ. सू. पैठीनसि.) जननाशौच तथा मृताशौच के संदर्भ में साधारण जानकारी एवं नियम अधिकृत पंचांग में दिए जाते हैं, अतः उसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

आपत्काल में सन्ध्या

महासंकट, यात्रा, बीमारी आदि में पूरी सन्ध्या समय पर करना संभव न हो तो आचमन, प्राणायाम, अर्घ्य, दस गायत्री जप तथा उपस्थान इतना करना भी पर्याप्त है। इतना भी यदि संभव न हो तो भस्मस्नान करते हुए १० गायत्री जप समय पर करें, समय चूकने पर भी प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं।

राष्ट्र, प्रदेश, गाँव अथवा परिवार पर शत्रु, चोर-डाकुओं के आक्रमण का संकट हो, राज-भय से देव, अग्नि, विप्र तथा राजा का महत्कार्य करना हो अथवा अचानक महाभय निर्माण होने से सन्ध्या का समय चूक जाए अथवा सन्ध्या करना असंभव हो जाए तो भी प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं है। बीमारी की अवस्था में भस्म लगाकर लेटे हुए मन में १० गायत्री जप करने की भी शक्ति न हो, तथा प्रतिनिधि द्वारा करना भी संभव न हो तो भी सन्ध्या लोप, दोष ही नहीं। (जामदग्नि) प्रतिनिधि, पुत्र, बंधु आदि अथवा किसी ब्राह्मण से संध्या कराई जा सकती है।

सूचना– राजा का महत्कार्य का अर्थ यदि हम अपनी नौकरी लेते होंगे तो वह अपने आप को धोखा देना होगा। नौकरी के कारण सन्ध्या करते नहीं बनता ऐसा कोई भी नहीं कह सकता क्योंकि नौकरी के लिए १०/१२ घंटे ही खर्च करने पड़ते हैं। जिनको नौकरी के लिए सुबह ८ बजे घर से बाहर निकल जाना पड़ता है उन्हें प्रातः सन्ध्या तथा मध्यान्ह सन्ध्या समय पर करते नहीं बनेगा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परन्तु वे रात्रि में ८ बजे लौटते हैं ऐसा मान लेने पर भी वे सायंसन्ध्या कर सकते हैं। केवल काल-लोप के लिए एक अर्घ्य अधिक देना पड़ेगा। जिनको रातपाली में रात्रि बारह बजे से सुबह आठ बजे तक काम करना पड़ता है, उन्हें प्रातः सन्ध्या समय पर करना सम्भव नहीं है तथा अधिकाधिक तीन प्राणायाम करते हुए एक अर्घ्य देना इतना ही प्रायश्चित्त लेना पड़ेगा, पर उन्हें भी अन्य दो सन्ध्या मध्याह्न तथा सायंसन्ध्या करना सम्भव हो सकेगा। अर्थात् किसी भी प्रकार की नौकरी करनेवाले को हो सकता है कि कोई एक सन्ध्या समय पर न करते बने, इतना ही होगा, इसलिए नौकरी की अड़चन सन्ध्या के मार्ग में आड़े नहीं आती।

इसके पूर्व कथित बड़ी मुसीबतों की अपेक्षा छोटी कठिनाइयाँ आ जाने पर सन्ध्या में प्रमुख बात कौनसी है इसे ध्यान में रखते हुए अपने विवेक के सहारे हर किसी को निर्णय लेना चाहिए। सन्ध्या में अर्घ्यदान, जप तथा उपस्थान तीन प्रमुख हैं तथा उनमें भी जप सर्वाधिक प्रमुख है, परन्तु 'पूरी सन्ध्या करना मुझे आवश्यक प्रतीत नहीं होता' जैसे बहाने, जल्दी उठने का आलस. आदि कारण आपत्ति नहीं कहे जा सकते। 'आचमन' तथा 'प्राणायाम' नामक दो अध्यायों का पढ़ने पर किसी को भी ऐसा ही प्रतीत होगा कि इनका त्याग करना कभी भी अयोग्य ही है। समय का सचमुच ही अभाव होगा तो उस समय उन्हें पंचमुखी गायत्री का ध्यान तो कमसे कम कभी नहीं टालना चाहिए। इससे अधिक लिखना आवश्यक नहीं लगता।

सन्ध्या-देश (स्थान)

शास्त्रकारों ने सन्ध्या के लिए विविध स्थान निर्देशित किए हैं तथा उनकी विशेषताएँ भी सूचित की हैं। वे इस प्रकार हैं। घर में सामान्य फल, गो-शाला में दसगुना, नदी-किनारे पर लाखगुना, राम, विष्णु, शिव आदि देवता और विशेष रूप से गायत्री देवी के मंदिर में अनंतगुना फल। घर से बाहर तथा तालाब, झरने आदि के निकट दसगुना, भगवान निर्मित तालाब और तीर्थों के किनारे पर शतगुना, भागीरथी के किनारे पर अनंतगुना फल; पुण्यक्षेत्र, गुफाएँ, पर्वतशिखर, नदीसंगम, पवित्र जलाशय, एकान्त उद्यान (बाग), बेल तथा पीपल के पेड़ के नीचे, पर्वत के तल में और सागर किनारे पर सन्ध्या करना बहुत अच्छा है। तुलसी वन में, गुरुसान्निध्य में और चित्त की एकाग्रता होने के लिए अनुकूल ऐसे किसी भी स्थान में सन्ध्या करनी चाहिए। आहिताग्नि द्विजों को अग्निकार्य के अनुकूल घर में अथवा बाहर सन्ध्या करनी चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

खरेदी-बिक्री, तथा संग्रह करना है आदि की प्रेरणा मिलेगी, ऐसा ही किसी व्यवसाय में घटित हुआ है अथवा होता है।

अशौच में सन्ध्या

'सूतके मृतके चैव सन्ध्याकर्म न तु त्यजेत्।
मनसोच्चयारयेत् मंत्रान् प्राणायामं ऋते द्विजः।। (गोभिल)

जनन-अशौच तथा मृत-अशौच में भी सन्ध्या करनी ही चाहिए। सन्ध्या का त्याग नहीं करना चाहिए। केवल मंत्रों का उच्चार मन में करना चाहिए। तथा प्राणायाम मंत्र के बिना करना चाहिए। अर्घ्य नित्य की तरह वैखरी से मंत्रोच्चार करते हुए देना चाहिए। मार्जन करें अथवा न करें। सूर्यबिम्ब का ध्यान करते हुए केवल नमस्कार कर उपस्थान करें। (आ. सू. पैठीनसि.) जननाशौच तथा मृताशौच के संदर्भ में साधारण जानकारी एवं नियम अधिकृत पंचांग में दिए जाते हैं, अतः उसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

आपत्काल में सन्ध्या

महासंकट, यात्रा, बीमारी आदि में पूरी सन्ध्या समय पर करना संभव न हो तो आचमन, प्राणायाम, अर्घ्य, दस गायत्री जप तथा उपस्थान इतना करना भी पर्याप्त है। इतना भी यदि संभव न हो तो भस्मस्नान करते हुए १० गायत्री जप समय पर करें, समय चूकने पर भी प्रायश्चित की आवश्यकता नहीं।

राष्ट्र, प्रदेश, गाँव अथवा परिवार पर शत्रु, चोर-डाकुओं के आक्रमण का संकट हो, राज-भय से देव, अग्नि, विप्र तथा राजा का महत्कार्य करना हो अथवा अचानक महाभय निर्माण होने से सन्ध्या का समय चूक जाए अथवा सन्ध्या करना असंभव हो जाए तो भी प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं है। बीमारी की अवस्था में भस्म लगाकर लेटे हुए मन में १० गायत्री जप करने की भी शक्ति न हो, तथा प्रतिनिधि द्वारा करना भी संभव न हो तो भी सन्ध्या लोप, दोष ही नहीं। (जामदग्नि) प्रतिनिधि, पुत्र, बंधु आदि अथवा किसी ब्राह्मण से संध्या कराई जा सकती है।

सूचना– राजा का महत्कार्य का अर्थ यदि हम अपनी नौकरी लेते होंगे तो वह अपने आप को धोखा देना होगा। नौकरी के कारण सन्ध्या करते नहीं बनता ऐसा कोई भी नहीं कह सकता क्योंकि नौकरी के लिए १०/१२ घंटे ही खर्च करने पड़ते हैं। जिनको नौकरी के लिए सुबह ८ बजे घर से बाहर निकल जाना पड़ता है उन्हें प्रातः सन्ध्या तथा मध्यान्ह सन्ध्या समय पर करते नहीं बनेगा,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परन्तु वे रात्रि में ८ बजे लौटते हैं ऐसा मान लेने पर भी वे सायंसन्ध्या कर सकते हैं। केवल काल-लोप के लिए एक अर्घ्य अधिक देना पड़ेगा। जिनको रातपाली में रात्रि बारह बजे से सुबह आठ बजे तक काम करना पड़ता है, उन्हें प्रातः सन्ध्या समय पर करना सम्भव नहीं है तथा अधिकाधिक तीन प्राणायाम करते हुए एक अर्घ्य देना इतना ही प्रायश्चित्त लेना पड़ेगा, पर उन्हें भी अन्य दो सन्ध्या मध्याह्न तथा सायंसन्ध्या करना सम्भव हो सकेगा। अर्थात् किसी भी प्रकार की नौकरी करनेवाले को हो सकता है कि कोई एक सन्ध्या समय पर न करते बने, इतना ही होगा, इसलिए नौकरी की अड़चन सन्ध्या के मार्ग में आड़े नहीं आती।

इसके पूर्व कथित बड़ी मुसीबतों की अपेक्षा छोटी कठिनाइयाँ आ जाने पर सन्ध्या में प्रमुख बात कौनसी है इसे ध्यान में रखते हुए अपने विवेक के सहारे हर किसी को निर्णय लेना चाहिए। सन्ध्या में अर्घ्यदान, जप तथा उपस्थान तीन प्रमुख हैं तथा उनमें भी जप सर्वाधिक प्रमुख है, परन्तु 'पूरी सन्ध्या करना मुझे आवश्यक प्रतीत नहीं होता' जैसे बहाने, जल्दी उठने का आलस. आदि कारण आपत्ति नहीं कहे जा सकते। 'आचमन' तथा 'प्राणायाम' नामक दो अध्यायों का पढ़ने पर किसी को भी ऐसा ही प्रतीत होगा कि इनका त्याग करना कभी भी अयोग्य ही है। समय का सचमुच ही अभाव होगा तो उस समय उन्हें पंचमुखी गायत्री का ध्यान तो कमसे कम कभी नहीं टालना चाहिए। इससे अधिक लिखना आवश्यक नहीं लगता।

सन्ध्या-देश (स्थान)

शास्त्रकारों ने सन्ध्या के लिए विविध स्थान निर्देशित किए हैं तथा उनकी विशेषताएँ भी सूचित की हैं। वे इस प्रकार हैं। घर में सामान्य फल, गो-शाला में दसगुना, नदी-किनारे पर लाखगुना, राम, विष्णु, शिव आदि देवता और विशेष रूप से गायत्री देवी के मंदिर में अनंतगुना फल। घर से बाहर तथा तालाब, झरने आदि के निकट दसगुना, भगवान निर्मित तालाब और तीर्थों के किनारे पर शतगुना, भागीरथी के किनारे पर अनंतगुना फल; पुण्यक्षेत्र, गुफाएँ, पर्वतशिखर, नदीसंगम, पवित्र जलाशय, एकान्त उद्यान (बाग), बेल तथा पीपल के पेड़ के नीचे, पर्वत के तल में और सागर किनारे पर सन्ध्या करना बहुत अच्छा है। तुलसी वन में, गुरुसान्निध्य में और चित्त की एकाग्रता होने के लिए अनुकूल ऐसे किसी भी स्थान में सन्ध्या करनी चाहिए। आहिताग्नि द्विजों को अग्निकार्य के अनुकूल घर में अथवा बाहर सन्ध्या करनी चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(व्यास, शारदा ति; वसिष्ठ स; आ. सू. इत्यादि)

विशेष ध्यान में रखिए। घर के बाहर सन्ध्या करना अधिक श्रेयस्कर है और उसके लिए उपर्युक्त विविध स्थान बताए जाने पर भी जहाँ स्वच्छता, पावित्र्य, शान्ति तथा एकान्त होगा और हवा का झोंका शरीर पर न आता होगा एवं कुसंगति न होगी वहीं एकाग्रता साधना सम्भव है। जहाँ कोलाहल, गंदगी, अशांति आदि होगी, कुसंगति होगी वहाँ एकाग्रता प्राप्त न होकर व्यग्रता आ जाती है। बुरे विचारों की भरमार होने की संभावना रहती है। शान्त, एकान्त स्थान एकाग्रता को साधने में सहायक होता है। पवित्र स्थान तथा सत्संगति से पवित्रता निर्माण होती है। मंद, सुगंधित शीतल वायु तथा पवित्र सुगंधि से प्रसन्नता निर्माण होती है और इन सबके मिलन से सद्विचार ही मन में आने लगते हैं। शरीर पर हवा के तीव्र झोके से आरोग्यहानि होती है। उसी प्रकार तप्त भूमि पर बैठने से (भले ही आसन हो तो भी) बीमारी निर्माण होती है। इसी तरह मच्छर, खटमल, जूँ आदि वहाँ नहीं होने चाहिए।

सन्ध्या में दिशा– किस कर्म में कौनसी दिशा चाहिए यह 'दिशा' अध्याय में बताया गया है।

कालातिक्रमदोष– प्रायश्चित्त के विषय में 'गायत्री जप' अध्याय में बताया गया है।

सूचना– ध्यानयुक्त गायत्री का जप सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है, परन्तु उपनयन विधि हुए बिना सन्ध्या करने का अधिकार ही प्राप्त नहीं होता है। अतः अगले अध्याय में उपनयन तथा पुनरुपनयन के संबंध में बताया गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३

उपनयन तथा पुनरुपनयन

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भात् एकादशे राज्ञः गर्भात् तु द्वादशे विशः।। (मनु.)

ब्राह्मण कुमार का उपनयन (महाराष्ट्र में 'मुंज' कहा जाता है) संस्कार गर्भावस्था के नौ महीनों को मिलाकर आठवे वर्ष में, उसी प्रकार क्षत्रिय का ग्यारहवे वर्ष में तथा वैश्यकुमार का बारहवे वर्ष में करना चाहिए। यह प्रमुख काल है, इस काल में यद्यपि गुरु ४/८/१२ वां होगा तो भी बृहस्पति शान्ति करते हुए उपनयन विधि करना चाहिए। उपनयन विधि में भिक्षा लेना तथा जुलूस निकालने की पद्धति है जो अशास्त्रीय है, अयोग्य है, अतः हितेच्छुओं को उसे बंद कर देना चाहिए।

उपनेता– ब्राह्मण का उपनयन (गायत्री का उपदेश) प्रमुखरूप से पिता के द्वारा करना चाहिए। उपनयन करानेवाले का उपनयन अवश्य हुआ हो। अनुपनीत पिता के द्वारा भी पुत्र का उपनयन स्वयं करना निषिद्ध है क्योंकि उसे गायत्री मंत्र का उपदेश न होने से वेदाधिकार ही उसे नहीं है। उपनयन विधि प्राप्त बटु को अपने पिता को भी नमस्कार नहीं करना चाहिए। अन्य किसी को भी नमस्कार नहीं करना चाहिए यह इससे मालूम हो जाएगा।

क्षत्रिय तथा वैश्य को दूसरे को वेद सिखाने का अधिकार न होने से उनके पुत्रों का उपनयन उनके कुलगुरु या कुल उपाध्याय द्वारा करना चाहिए।

उपनयन विधि ब्राह्मण के लिए अधिक से अधिक १६ वर्ष की आयु, क्षत्रिय के लिए २२ तथा वैश्य के लिए (गर्भ से) २४ वर्ष की आयु में हो जाना चाहिए। उस काल में उपनयन न होने पर वे 'व्रात्य' माने जाते हैं। उन्हें सावित्री पतित भी कहा जाता है। व्रात्य बनने पर उपनयन करना हो तो व्रात्य-स्तोम नामक यज्ञ करने के बाद उपनयन किया जाता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पुनरुपनयन

एक बार उपनयन विधि होने पर भी किसी कारणवश दुबारा उपनयन करना पड़ता है। उन कारणों में से प्रायश्चित्त के कारण उपनयन करना पड़ता है, उन्हें नीचे बताया जा रहा है। अन्य कारण सं.र.माला ग्रंथ में देखिए।

लहसुन, प्याज, गृंजन (लहसुन जैसा एक कंद- विज्ञानेश्वर) यह गाजर नहीं है ऐसा किसीने सिद्ध किया है (स.र.मा.) और छत्राक (कुकुरमुत्ता), सफेद बैंगन, श्वेत वृंतांक इन में से कोई भी एक वस्तु खाने पर उसे दुबारा उपनयन करना चाहिए और उसके बाद तप्तकृच्छ्र प्रायश्चित्त करना चाहिए।

अपवाद– ये पदार्थ अपने अन्न में है यह मालूम न होने के कारण, गलती से पेट में चले गए हो तो उपनयन की जरुरत नहीं परंतु तप्तकृच्छ्र कर लेना चाहिए। वैद्य की आज्ञा से औषधि के रूप में इनमें से कोई पदार्थ खाना पड़े तो प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं। परंतु आपत्काल निकल जाने पर ये पदार्थ भक्षण करने पर दुबारा उपनयन विधि करना ही चाहिए। ऊँटनी का दूध, मनुष्यस्त्री का दूध, वीर्य (रेत), मूत्र (गोमूत्र नहीं), नरविष्ठा इनका प्राशन या भक्षण करने से फिर से उपनयन संस्कार करना चाहिए। मृत के निमित्त दिया गया शय्यादान लेने पर भी दुबारा उपनयन विधि करना चाहिए।

निषिद्ध नहीं है ऐसे पशुओं का मांस क्षत्रिय-वैश्यादि जनों को भक्षण करने में कोई आपत्ति नहीं है। ब्राह्मणों को पशुयाग के बाद यज्ञशिष्ट के अलावा अन्य किसी भी प्रकार का मांस नहीं खाना चाहिए।

गधा, ऊँट, बैल, बकरा आदि पशुओं की पीठ पर सवार होकर ८/१० मील यात्रा अथवा घूमना पड़े तो दुबारा उपनयन करना चाहिए। (अधिक विस्तृत वर्णन तथा मूल वचन के लिए सं.र.माला ग्रंथ देखिए।)

द्रव्य लेकर दूसरे के लिए गायत्री जप–

संहिता स्वाहाकार की अधिकार प्राप्ति के लिए दस हजार तथा गायत्री का उपदेश देने की अधिकार प्राप्ति के लिए बारह हजार गायत्री जप करना पड़ता है। इसी प्रकार के अन्य कारण के लिए जो गायत्री जप बताया गया है, वह जप उपाध्यायादि ब्राह्मणों के द्वारा करवाया जाता है, और उन्हें जानकारी न होने से उपाध्यायादि द्वारा वह किया जाता है। इस प्रकार द्रव्य (दक्षिणा, वस्त्र आदि पारिश्रमिक) लेकर गायत्री जप करना अधिकाधिक प्रायश्चित्तार्ह है।

'द्रव्य घेवोनि एकापाशीं। जप करिता अनंत दोषी,
चाण्डालयोनीं भरवसीं। जन्म पावे परियेसी।। (गु.च. ३६/४८३)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अर्थात् श्री गुरुचरित्र ग्रंथ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो धन लेकर जप करते हैं, वे अनंत दोष के भागीदार बनते हैं तथा निश्चित रूप से चाण्डाल योनी में जन्म लेते हैं।

'अन्य क्षेत्रे कृतं पापं पुण्यक्षेत्रे विनश्यति' परन्तु 'पुण्यक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति' इस न्याय से गायत्री के जप के साथ किया गया पाप वज्रलेप बन जाता है। गायत्री जप से अन्य पातकों का संहार हो जाता है, परन्तु पारिश्रमिक लेकर किए गए गायत्री जप के पाप को कैसे दूर किया जा सकता है? दूसरों के लिए मुफ्त में जप किया जा सकता है।

दूसरों के लिए १० जप करने पर एक कृच्छ्र, सौ करने पर पराक, हजार करने पर चांद्रायण, दस हजार से अधिक करने पर, उसका श्रेयदान यजमान को देने पर भी दुबारा उपनयन करना चाहिए। उसके बाद चार बार चांद्रायण व्रत करना चाहिए। बाद में औपासनाग्नी का संधान करते हुए, बालों का वपन कर, पंचगव्य प्राशन करना चाहिए और पहले अन्य के लिए जितना जप किया होगा उतना अपने लिए फिर से करना चाहिए। ऐसा सब न करने पर वह पतित बन जाता है।

प्याज-लहसुन आदि खाना नहीं चाहिए यह कई लोग जानते हैं, परन्तु वह इतना निषिद्ध है यह जाननेवाले बहुत थोड़े हैं, अन्य कारण तो बहुत ही थोड़े जानते हैं। उसी तरह परार्थ गायत्री जप निषिद्ध प्रतीत हुआ इसलिए उसे यहाँ दिया गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ४

यज्ञोपवीत– (जनेऊ)

'पवित्रं परमं शुद्धं आयुष्यं च धनावहम्।
औजस्यं ब्रह्मवर्चस्यं ब्रह्मसूत्रं तथोदितम्।।'

उपनयन विधि हो जाने पर जनेऊ पहनना अनिवार्य है, अतः उसके सम्बन्ध में लिखना जरूरी है।

यज्ञोपवीत (जनेऊ)– यज्ञ में होता है, अर्थात हवन करनेवाला जिस परमात्मा को यज्ञ कहा जाता है, उस परमात्मा का जो उपवीत (जनेऊ) इसलिए उसे यज्ञोपवीत कहते हैं। 'यज्ञःस्यात् आत्मनि मखे नारायण हुताशयोः (हैमः); आत्मा, मख (याग), नारायण तथा अग्नि ऐसे यज्ञ शब्द के अर्थ हैं। 'यज्ञो वै विष्णुः' जनेऊ को ही यज्ञोपवीत, यज्ञसूत्र, ब्रह्मसूत्र तथा सूत्र कहते हैं। उपवीत का अर्थ है धारण किया हुआ, पहना हुआ, लपेटा हुआ सूत या सूत्र।

जनेऊ तैयार करना– ब्राह्मण के द्वारा अथवा उसकी पत्नी या रजोदर्शन जिसका नहीं हुआ ऐसी कुमारी के द्वारा तैयार किया हुआ सूत या धागा जो अखंड, बीच में गाँठ न हो। हाथ की चार उँगलियों के मूल में ९६ फेरे सूत न तोड़ते हुए लपेटिए, फिर दूसरी बार ९६ फेरे सूत लपेटिए और फिर तीसरी बार ९६ फेरे सूत न तोड़ते हुए लपेटिए। जिसको जनेऊ पहनना है उसकी चार उँगलियों का नाप लेना चाहिए। चार उँगलियों के ९६ फेरे इतना सूत तीन बार लेकर उसे जोड़ने से तीन धागे बनेंगे, उन्हें एक दूसरे में गूँथकर उसे त्रिसूती एक धागा बनाइए। उसे फिर १/३ नापते हुए तिगुना कीजिए तथा यह भान रखे कि एक दूसरे में पक्का बटना चाहिए, तीन सुतों का धागा तैयार होगा। पालथी मारकर बैठिए तथा घुटने ऊपर उठाइए जिससे वह बनाया हुआ नौसुतों का धागा घुटने के चारों ओर तीन बार लपेटना सम्भव हो। उसके पश्चात ब्रह्मगाँठ लगानी चाहिए। धागे को किस तरह बटना या गूँथना चाहिए यह किसी जानकार से मालूम कर लेना चाहिए। धागे से जनेऊ बनाने काम ब्राह्मण के द्वारा भोजन से पहले,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनध्याय का दिन छोड़कर किसी अन्य दिन तैय्यार करना चाहिए। वह धागा किसी विधवा के द्वारा बनाया हुआ, गाँठ पड़ा हुआ अथवा टूटा हुआ नहीं होना चाहिए। इनमें से किसी एक दोष से भी युक्त हो तो वह जनेऊ त्याज्य होता है, उसे न पहने। यदि ऐसा पहना गया हो तो अन्य परम पवित्र को धारण कर उस अपवित्र का त्याग कीजिए। आपत्काल में विधवा के द्वारा तैय्यार किया सूत चल सकेगा।

सूत– शुद्ध कपास से बनायी उत्तम, परन्तु कपास न मिलने पर जूट (पटसन), आंबाडी आदि से बना धागा या कमलनाल के तंतुओं से बना धागा चलेगा।

जनेऊ की लंबाई तथा मुटाई

बाएँ कंधे पर डाल कर दाहिनी बगल से कमर तक पहुँचे इतनी अधिक से अधिक लंबाई होनी चाहिए, अधिक से अधिक छोटा जनेऊ याने नाभि तक पहुँचे इतना होना चाहिए। अधिक लंबा हो जाने पर तप का नाश तथा छोटा होने पर आयु-क्षय होता है। सरसों की सूखी सेम से अधिक मुटाई तथा उससे अधिक पतली न हो। अधिक मुटाई होने पर यश की हानि तथा अधिक पतला होने पर धन की हानि होती है।

कितने पहने– ब्रह्मचारी बटू को एक तथा गृहस्थ एवं वानप्रस्थ व्यक्ति को दो पहनना चाहिए। कुटीचकादि यतियों को एक ही धारण करना चाहिए। उपवस्त्र के अभाव में एक जनेऊ अधिक धारण करें। जिनके पिता जीवित होंगे उन्हें उपवस्त्र (दुपट्टा) अथवा उसके स्थान पर एक अधिक जनेऊ धारण नहीं करना चाहिए।

जनेऊ धारण करने की पद्धति– दाहिना हाथ ऊपर करने पर बाए कंधे पर जो रहता है उसे उपवीती (सव्य) कहते हैं। दोनों कंधों से छातीपर लटकनेवाले जनेऊ को निवीती (माला), तथा दाहिने कंधे पर रहकर बाईं ओर लटकनेवाले को प्राचीनवीती (अपसव्य) कहते हैं। जनेऊ अभिमंत्रित-कर धारण करना चाहिए।

यज्ञोपवीत नाश– प्रायश्चित्तः –कमर के नीचे खिसक जाए, या चला जाए, मलमूत्र के त्याग के समय निवीती करते हुए कान में न लपेटे, रक्त, थूँक, श्लेष्मा (नाक बहना), कफ, मांस, विष्ठा, मूत्र.आदि का स्पर्श जनेऊ को हो जाए तो अथवा पहना एक ही जनेऊ टूट जाए तो, उसका त्याग करते हुए प्रायश्चित्त होम कर, नए अभिमंत्रित जनेऊ को धारण करना चाहिए। प्रायश्चित होम की विधि धर्मसिंधु ग्रंथ में देखिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जनेऊ को गले में से बाहर निकालना– शास्त्र द्वारा निर्देशित अभ्यंगस्नान, समुद्रस्नान, माता-पिता का श्राद्धदिन – इन कारणों के अतिरिक्त जनेऊ धोने के लिए भी गले से बाहर निकलने से उपयुक्त कथनानुसार प्रायश्चित्त होम करना चाहिए। (तैत्तिरीय, कठ, काण्य, चरक तथा वाजसनेयी इन्हें यह नियम लागू नहीं है।) स्वच्छ रखने के लिए जनेऊ स्नान के समय मे घिसकर धोना आवश्यक है, परन्तु उसे साबुन लगाना उचित नहीं है। गले से न निकालते, केवल निवीती करते हुए हाथों से रोज घिसकर धोना चाहिए। कोई जनेऊ को गले से बाहर निकाल कर अंगूठे में पकड़ कर उसे साफ करते हैं, वह प्रायश्चित्तार्ह है। कोई उसे कमर के चारों ओर घुमाकर घिसते हैं, वह भी प्रायश्चित्तार्ह है।

प्रायश्चित्त– बाए कंधे से जनेऊ डंड तक नीचे खिसक जाए, या कुहनी तक चला जाए या उसके भी नीचे खिसक जाए तो क्रमशः तीन, छः, अथवा बारह बार प्राणायाम का प्रायश्चित्त करना चाहिए।

स्वयं तोड़ना– क्रोध से या अन्य किसी कारण से स्वयं ही जनेऊ तोड़ डाले, तो अभिमंत्रित न किया हुआ नया जनेऊ पहन कर ठण्डे पानी से स्नान करें तथा उसके बाद अभिमंत्रित जनेऊ (एक या अनेक) धारण करते हुए छेदन-पाप-क्षयार्थ १००८ गायत्री जप करना चाहिए।

शुद्ध जनेऊ वर्ज्य– महापातकियों को चाहिए कि वे अपने पातकों का शास्त्रोक्त प्रायश्चित लेने तक अभिमंत्रित अथवा ब्रह्मगाँठ युक्त नौसुती जनेऊ न पहने। सादा सूत सादी गाँठ लगाकर पहने। संध्यादि विप्रकर्म न करनेवाले जो पतित ब्राह्मण या केवल नाम धारण करनेवाले ब्राह्मण, अविवाहित स्त्री से उत्पन्न पुत्र (कानीन), कुण्डगोलक (मनुस्मृति देखिए), व्रात्य (सावित्री पतित) श्वेतकुष्ठी तथा महारोगी और अपकीर्तिमान लोग ब्रह्मगाँठ युक्त परन्तु अभिमंत्रणरहित जनेऊ धारण करें।

यज्ञोपवीत या जनेऊ त्याग– चिताकाष्ठ, चिताधूम, रजस्वला,. चाण्डाल, किसी भी मृतदेह (नर, पशु आदि) और सूतिका (बाळंतीण) का स्पर्श हो जानेपर सचैल स्नान ठण्डे पानी से करते हुए अभिमंत्रित जनेऊ पहन कर पुराने जनेऊ का त्याग कीजिए। इसी प्रकार जननाशौच तथा मृताशौच समाप्त होने पर वही करना चाहिए। कभी भी धारण किए हुए जनेऊ चार महीनों के पश्चात नए अभिमंत्रित धारण करते हुए, पुराने जनेऊ का त्याग करना चाहिए। द्विज को एक क्षण के लिए भी जनेऊरहित नहीं रहना चाहिए। एक क्षण भी वैसा चला जाए तो नया जनेऊ सविधि पहन कर १०० गायत्री जप करना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यज्ञोपवीत न रहते भोजन– खाना-पीना करने अथवा मलमूत्र त्याग करने पर प्रायश्चित्त के रूप में तथा जनेऊ पहन कर आठ हजार गायत्री जप करें। पुराना पहना हुआ जनेऊ निकाल देने पर उसे किसी जलाशय में 'ओं भूर्भुवः स्वः समुद्रं गच्छ स्वाहा' इस मंत्र के साथ विसर्जित करें।

दिन-प्रतिदिन जनेऊ अभिमंत्रित करनेवाले व्यक्ति मिलना कठिन हो रहा है। पोथी में दिया गया विधि काफी बड़ा तथा मंत्र अपरिचित-सा है, अतः बिलकुल सरल ऐसी 'देवलकथित' विधि नीचे दी जा रही है।

आचमन प्राणायाम करते हुए देशकाल का उच्चार कर 'नूतन यज्ञोपवीताभिमन्त्रणमहं करिष्ये'ऐसा संकल्प कीजिए। 'सिद्ध पदार्थों के लिए मंत्र की योजना कीजिए' इस न्याय के अनुसार तैय्यार जनेऊ पर ही संस्कार करना है इसलिए, ब्रह्मगाँठ से युक्त यज्ञोपवीत शुद्ध जल में धोकर बाएँ हाथपर रखें और 'आपोहिष्ठा॰' इत्यादि तीन मंत्रों से दर्भ के द्वारा पानी प्रोक्षण कीजिए। बाद में फिर से १० गायत्री जप करते हुए प्रोक्षण कीजिए। (यह नौ-सुती करने से गाँठ लगाने तक का विधि हुआ) फिर प्रत्येक जनेऊ के लिए प्रोक्षण कीजिए। 'ओं ब्रह्मणे नमः ओं विष्णवे नमः, ओं शिवाय नमः' कहते हुए तीन बार नमस्कार करें तथा बाद में आचमन प्राणायाम कर देश कालादि का उच्चार करते हुए 'एवं गुण विशेषण विशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ श्रौत-स्मार्त-कर्मानुष्ठान-सिध्द्यर्थं-नूतन यज्ञोपवीतधारणमहं करिष्ये' ऐसा संकल्प करें तथा 'यज्ञोपवीतमितिमंत्रस्य परमेष्ठी ऋषिः। यज्ञोपवीतं देवता। त्रिष्टुप छन्दः। यज्ञोपवीत धारणे विनियोगः।' ऐसा कह कर नीचे दिया हुआ मंत्र कहते हुए यज्ञोपवीत धारण कीजिए।

'ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः।।'

अर्थात् यज्ञोपवीत अत्यन्त पवित्र होकर वह (पुरस्तात्) बहुत प्राचीन काल में (प्रजापतेः सहजं) ब्रह्मदेव के साथ ही उत्पन्न हुआ है। वह यज्ञोपवीत (अग्रयं, शुभ्रं, आयुष्यं) उत्तम कीर्तियुक्त आयु, (बलं तेजः) बल तथा तेज मुझ में स्थापित करें। प्रति यज्ञोपवीत धारण करते समय उपर्युक्त मंत्र कहना चाहिए। परन्तु एक जनेऊ पहनने के बाद आचमन करते हुए दूसरा, इस प्रकार धारण करते जाना चाहिए। उसके बाद पुराने यज्ञोपवीत कमर के नीचे से, पैर का स्पर्श न करते हुए निकालना चाहिए, तथा पूर्व की सूचनानुसार मंत्रपूर्वक जल में विसर्जित करना चाहिए।

यज्ञोपवीत मंत्र में कहा है कि यज्ञोपवीत ब्रह्मदेव के साथ ही उत्पन्न हुआ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इसका कोई विचार नहीं करता है। इसीलिए (स्मृति प्रकाश) कहा है कि–

'यज्ञोपवीतस्योत्पत्तिं जानाति ब्राह्मणो न चेत्।
स वै वहति भाराय पुस्तकानि यथा वृषः।।'

ब्राह्मण को यदि यज्ञोपवीत की उत्पत्ति का ज्ञान न होगा तो उसके द्वारा अध्ययन किए ग्रंथ बैल की पीठपर रखे बोझ की तरह हैं।

यज्ञोपवीतोत्पत्ति–कथा

प्रारंभ में शिव केवल अकेले अद्वितीय थे। उन्हें लगा कि सृष्टि को उत्पन्न करना चाहिए। तभी उन्हें गुणमयी माया दीखी। तब उन्होंने उसे सूत्र जैसा रूप दिया। उसकी सहायता से शिव ने शिवात्मक (परब्रह्मस्वरूप) विष्णु को निर्माण किया। तथा उन्हें देवों के पालन का कार्य सौंपा। उसके बाद शिव ने सृष्टि की उत्पत्ति करने के लिए ब्रह्मदेव को निर्माण किया। तथा संहार करने के लिए अपना ही एक रूप रहनेवाला रुद्र निर्माण किया। ज्ञानात्मक विष्णु ने, ब्रह्मदेव के उत्पन्न होते ही, उसे मायारूप सूत्र पहनाया, इसलिए उसे ब्रह्मसूत्र कहते हैं। यज्ञने अर्थात् विष्णु ने पहनाया इसलिए उसे यज्ञोपवीत कहते हैं। गुण (सूत्र) मय माया का सूचक होने से वह सूत्र कहलाया। 'सूचनात् सूत्रम् इति आहुः' (श्रुति) वह माया ब्रह्म से भिन्न नहीं है, इसलिए भी उसे सूत्र कहते हैं (सूत्रं नाम परं पदम्); वह भी (परं पद) परम प्राप्तव्य सच्चिदानन्दरूपिणी-ब्रह्मस्वरूपिणी ही है।

कुछ आशंकाएँ– जनेऊ को नौ सूत ही क्यों तथा वह अखण्ड ऐसे एक ही सूत से क्यों बनता है?

समाधान– अखण्ड एकरस ब्रह्मरूप सूत्र (परं पद) सर्वत्र व्याप्त है। सब का एक अधिष्ठान है यह सूचित करने के लिए एक ही अखण्ड सूत्र-सूत। उस एक अखण्ड सूत्र से ही अकार, उकार, मकार ये मात्रात्रय, तथा देवत्रय और त्रिगुण इत्यादि सर्वत्र त्रैत उत्पन्न हुआ यह दर्शाने के लिए, प्रथम एक ही अखण्ड सूत्र से ही त्रिसुती बनी। 'शमो दमः तपः शौचं क्षांतिः आर्जवम् एव च। ज्ञानं विज्ञान आस्तिक्यं' इन नौ प्रमुख गुणों की प्राप्ति, उनकी सहायता से श्रौत-स्मार्त कर्म की सिद्धि करें, यह सुझाने के लिए नौ सूत अवश्य चाहिए। (गुण = सूत्र, सूत, धागा तथा सद्गुण), इसीलिए यज्ञोपवीत धारण करने के संकल्प में (श्रौत कर्म) श्रुतिकथित कर्म तथा स्मार्त कर्म (स्मृतिकथित कर्म) सिद्धि के लिए यज्ञोपवीत धारण करता हूँ, ऐसा कहना पड़ता है। जगत् की उत्पत्त्यादि करनेवाली प्रणवादि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नौ देवताएँ, सर्व श्रेष्ठत्त्व, निर्विकारत्व, इत्यादि अनेक बातें नौ सुतों से सूचित की जाती हैं और नौ सुतों के आश्रय से ही स्वर्गादि की प्राप्ति हो सकती है। मराठी में मुहावरा है, 'सुताने स्वर्गाला जाणे' अर्थात् साधारण साधन से सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करना, इस कहावत का मूल आधार नौ सुतों का यज्ञोपवीत ही है।

परम पवित्र जिसे कहा जाता है वह शास्त्रशुद्ध रीति से तैय्यार किया हुआ और श्रद्धा से यथाविधि व्यवहृत हुआ तो ही वह होगा तथा शुद्ध रहेगा। परन्तु संध्या करनेवाले ब्राह्मणों में भी अनेकों का यज्ञोपवीत मूल में ही अशुद्ध होता है, अशास्त्रीय होता है। उसे किस तरह पहना जाए यह बहुसंख्य ब्राह्मणों को ही नहीं बल्कि पुरोहितों को भी मालूम नहीं होता है तथा मालूम होने पर भी यथाविधि पहना नहीं जाता । चाबी सुरक्षित रखने की उसे एक खूँटी माना जाता है। उस से अधिक आदर जनेऊ को दिया जाता हुआ दिखाई नहीं देता । तब श्रौत-स्मार्त कर्म कैसे सुफल होंगे? और शमदमादि की प्राप्ति होकर मानवता की पूर्ति कैसे संभव होगी? अति अपवित्र धातु से बनी चाबी जिसे परम पवित्र कहते हैं उस में बाँधना ! कमर से भी नीचे छः ईंच लंबा (बित्ताभर) जनेऊ ! एक ही अखण्ड धागे का, तिसुती, नौसुती युक्त जनेऊ तो बहुत दुर्लभ ! तथा किसीने भी किसी भी समय में निकाला हुआ सूत! आदि सब कुछ अशास्त्रीय! अब तो भी जागृत होकर अपने नाप का, स्वयं बनाया हुआ शास्त्रोक्त यज्ञोपवीत हर ब्राह्मण को तो कम से कम पहनना चाहिए तथा व्यक्ति, परिवार, धर्म और देश का हित साधना चाहिए।

यज्ञोपवीत परम पवित्र, परम शुद्ध, आयुवृद्धि तथा धनवृद्धि करनेवाला, ओज बढ़ानेवाला, ब्रह्मतेज वृद्धिंगत करनेवाला ब्रह्मसूत्र (सूत्ररूप से ब्रह्म ही) ही है। अध्याय के प्रारंभ में इस अर्थ का श्लोक दिया गया है। ऐसा होने पर भी ब्राह्मण समाज की ऐसी सर्वांगीण अवनति किस कारण से हुई इसका विचार करना चाहिए।

सब से पहले ब्रह्मदेव के गले में यज्ञोपवीत डाला जाने पर उन्होंने कमलनाल में स्थित तंतुओं से यज्ञोपवीत तैय्यार किया। आगे चल कर कपास के सूत से वह तैय्यार होने लगा।

> ***'यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं विभूषणं ब्राह्मण लक्षणं च।***
> ***पद्मासनस्थेन पितामहेन उत्पादितं पंकजनाल सूत्रात्।।' (स्मृति प्रकाश)***

यज्ञोपवीत पर तीन वेद, तीन देव, तीन अग्नि, तीन लोक इत्यादि वास करते हैं। गाँठ पर तीन मात्राएँ तथा नाद के साथ ओंकार तथा गाँठ से बाहर आए छोर पर गायत्री देवी वास करती है। और इसीलिए सविधि तैय्यार करते हुए,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विधिपूर्वक उसे धारण करते हुए, यथाविधि यथाकाल संध्या करनेवाले व्यक्ति के गले में स्थित जनेऊ इतना प्रभावी होता है कि उसकी की गाँठ दिखाते ही भूत-पिशाच उलटे पाँव भाग जाते हैं।

जिन बालकों की प्रकृति ७/८ वर्ष की आयुतक निरंतर बिगड़ती है, उनका यज्ञोपवीत संस्कार करने से अपने आप स्वास्थ सुधर जाता है, यह अनेकों बार वर्षों तक देखा गया है। यह जो फर्क पड़ता है वह उपनयन संस्कार, गायत्री उपदेश, जिसका प्रभाव ऊपर दिखाया गया है उस यज्ञोपवीत के धारण करने तथा संध्या करने के कारण होता है।

ईसाई धर्म के बाप्तिस्मा संस्कार से उस व्यक्ति के खून में बहुत सुधार होता है, यह एक फ्रेंच वैज्ञानिक ने यंत्रों की सहायता से सिद्ध कर के दिखाया है। यह जानकारी 'सिद्धान्त' नामक हिन्दी साप्ताहिक में प्रकाशित हुई है। इसीप्रकार की खोज कम से कम उपनयन संस्कार के संदर्भ में हमारे भारतीय वैज्ञानिक प्रयोग के आधार पर क्यों नहीं करते ?

उपनयन संस्कार रहित बालकों को जिस प्रमाण में पिशाच बाधा तुरन्त हो जाती है वैसी संस्कारित बच्चों को नहीं होती । पूर्वजन्म के ऋण, हत्या, असूया, बैर के कारण बाधा हो सकती है।

यज्ञोपवीत प्रथम उपनयन विधि में धारण करते हैं और उसकी सहायता से गायत्री जप का अधिकार प्राप्त होता है, उस गायत्री की महिमा अगले अध्याय में वर्णित की है तथा उस में पश्चिमी विद्वानों के अनुभव भी सचित्र दिए गए हैं।

इस अध्याय में प्रमुख रूप से 'संस्कार रत्नमाला' ग्रंथ के अनेक स्मृत्यादि वचनों का आधार प्रस्तुत किया गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ५

गायत्री की महिमा

'गायत्र्या नास्ति चाऽप्राप्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।।' (स्मृति)
'गायत्र्या न परं जाप्यं गायत्र्या न परं तपः।
गायत्र्या न परं ध्यानं गायत्र्या न परं हुतम्।।' (यम स्मृति)

श्रुति-स्मृति-पुराणादि अनेक ग्रंथों में गायत्री की अपार महिमा का बखान किया है। ऐसी एक भी स्मृति अथवा पुराण नहीं मिलेगा जिस में गायत्री का बिलकुल वर्णन न हो। छांदोग्य, बृहदारण्य, नारायण, नृसिंहपूर्वतापिनी, सूर्य, सावित्री, त्रिपुरातापिनी इत्यादि अनेक उपनिषदों में गायत्री का वर्णन है। पद्म पुराण (सृ. खं; उ. खं); अग्नि पु; नारद पु; बृहद्-नारद पु; विष्णु पु; स्कंद. पु; कूर्म पु. इत्यादि सभी पुराणों में न्यूनाधिक प्रमाण में गायत्री का वर्णन है। देवी भागवत पुराण में तो स्कंध ११ के अनेक अध्याय तथा बारहवें स्कंध के सभी तथा अन्य कुछ स्कंधों के मिलाकर कम से कम २५ अध्याय गायत्री तथा संध्या वर्णन से भरे पड़े हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण का प्रारंभ तथा समाप्ति 'धीमहि' शब्द से करते हुए बीच-बीच में भी गायत्री मंत्र गूँथ दिया गया है, ऐसा भागवत के श्रीधर कृत टीका में बताया है।

वाल्मीकि रामायण २४ हजार श्लोकों का है, इसका कारण प्रति हजार के श्लोक के प्रारंभ में क्रमशः गायत्री मंत्र के २४ अक्षरों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण देखिए– प्रथम श्लोक 'तपस्वाध्याय निरतं' यह है। गायत्री का प्रथम अक्षर 'त' उसके प्रारंभ में है। दूसरा अक्षर 'स' दूसरे हजार के प्रारंभ में 'स हत्त्वा राक्षरान् सर्वान्' इस श्लोक के प्रारंभ में है। तीसरा अक्षर 'वि' तीसरे हजार के प्रथम 'विश्वामित्रः स धर्मात्मा' इस श्लोक के प्रारंभ में है। इस प्रकार से अन्य अक्षर क्रम से आए हैं। वाल्मीकि रामायण की अनेक प्रतियों में कई श्लोक प्रक्षिप्त होने के कारण सभी प्रतियों में यह बात यद्यपि सिद्ध न होती हो, फिर भी उस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकार की शुद्ध प्रति उपलब्ध है। अब कुछ महत्त्वपूर्ण वचन देखिए–

'सर्वेषां एव वेदानां गुह्योपनिषदां तथा।
सारभूता तु गायत्री निर्गता ब्रह्मणो मुखात्।।' (छां. परि.)

अर्थात् सभी वेद तथा गुह्य उपनिषदों का सार सर्वस्व ऐसा गायत्री मंत्र (गायत्री) ब्रह्मदेव के मुख से प्रकट हुआ।

'गायत्री चैव वेदाश्च तुलया समतोलयत्।
वेदा एकत्र सांगाः तु गायत्री चैकतः स्मृता।।' (कू. पु.)

एक बार ब्रह्मदेव ने चारों वेद तराजू के एक पलड़े में रखे तथा दूसरे पलड़े में गायत्री मंत्र रखा, तब दोनों का तौल समान हुआ। 'रुक्मिणी ने एका तुलसीदलाने गिरिधर प्रभु तुळिला' अर्थात् एक ही तुलसी-दल से रुक्मिणी ने प्रभु गिरिधर को तराजू में तौला, वैसा ही गायत्री ने चारों वेदों को तौला। स्वयं ब्रह्मदेव ने नारद से कहा कि

'चतुर्वेदाः च गायत्री पुरा वै तुलिता मया।
चतुर्वेदात् परा गुर्वी गायत्री मोक्षदा शुभा।।'

(पद्म पु. सृ. खं. ४३/११२/१३)

पहले एक बार चारों वेदों के साथ मैं, एक पलड़े में तथा दूसरे पलड़े में गायत्री को रखकर तौला गया, तब यह निश्चित हुआ कि गायत्री उन से अधिक (गुर्वी–वजनदार) श्रेष्ठ, शुभ तथा मोक्षदायक है। इसलिए हे नारद! तुम गायत्री का जप-ध्यान करो।

आगे कहा गया है कि–

'इमां यो वेत्ति गायत्रीं सर्व-बीजसमन्विताम्।
स वेत्ति चतुरो वेदान् योगं ज्ञानं जगत् त्रयम्।।'

प्रणवयुक्त तीन व्याहृतीरूप बीजों के साथ इस गायत्री को जो जानता है, उसने चारों वेद, योग, ज्ञान तथा त्रैलोक्य को जान लिया। इसीलिए ही यमस्मृति के प्रारंभिक वचनों में कहा है कि जप करने के लिए गायत्री जैसा श्रेष्ठ दूसरा मंत्र नहीं है। गायत्री की उपासना जैसा दूसरा तप नहीं, गायत्री के समान श्रेष्ठ दूसरा ध्यान नहीं और हवन में गायत्री मंत्र के हवन जैसा अन्य हवन नहीं, गायत्री के अनुष्ठान से प्राप्त न होगा ऐसा त्रैलोक्य में कुछ भी नहीं है। (श्लोक अध्याय के प्रारंभ में दिया है।)

ऐसा गायत्री का प्रभाव होने पर, ब्राह्मण को भी रोज १॥ घंटा उसकी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपासना में खर्च करने की इच्छा नहीं होती, यह उनका, समाज का तथा राष्ट्र का दुर्भाग्य है!

गायत्री जप से त्रैलोक्य में अप्राप्य कुछ भी नहीं है ऐसा जो एक स्मृति में कहा है, उसका विस्तार दे. भा. (स्कं. ११, अ. २४) में किया है। उस का सारांश देखिए– १. ऋषित्व; २. अमोघ वाणी, ३. त्रिकालदर्शित्त्व, ४. सूर्य का सगुण सावयव दर्शन, ५. अणिमादि अष्टमहासिद्धि, ६. इच्छित देहरूप धारण करना, ७. देवत्व, ८. मनुत्व, ९. इंद्रपद. १०. प्रजापतिपद, ११. ब्रह्मदेवपद– इनकी प्राप्ति भी गायत्री के जप, तप से होती है, तब फिर अन्य चाहे जो मिलेगा, इसमें क्या आश्चर्य?

कंदमूल फलाहार, हविष्याहार, दुग्धाहार करते हुए सूर्य के उदय से १४ घटिका तक एक पैर पर निराधार, खड़े रहकर तथा दोनों हाथ ऊपर सीधे तानकर गायत्री जप १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ वर्षों तक करने से ऊपर लिखी बातें क्रमशः मिलने लगती है।

गायत्री का जप, ध्यान, होम, इन से अन्य क्या क्या घटित हो सकता है तथा कैसे प्राप्त होता है इस संदर्भ में गायत्री के सकाम प्रयोग (अध्याय क्र. ३१) इस अध्याय में लिखा गया है।

'अष्टादशसु विद्यासु मीमांसाऽति गरीयसी।
ततोऽपि तर्कशास्त्राणि पुराणं तेभ्य एव च।।
ततोऽपि धर्मशास्त्राणि तेभ्यो गुर्वी श्रुतिर्द्विज।
ततोऽप्युपनिषत् श्रेष्ठा गायत्री च ततोऽधिका।।' (दे. भा.)

१८ विद्याओं में पूर्वमीमांसा श्रेष्ठ, उससे तर्कशास्त्र; उससे पुराण श्रेष्ठ। (अठारह पुराण तथा उपपुराण मिलकर एक पुराण ग्रंथ होता है। जिस प्रकार 'ज्ञानकोश' नामक एक ग्रंथ होता है परन्तु उसके अनेक विभाग-खंड होते हैं, उसी प्रकार यह है।) (इसी दृष्टि से छांदो.उप.में 'इतिहासपुराणं' 'इतिहास-पुराण' कहा है।) पुराणों से धर्मशास्त्र-स्मृति श्रेष्ठ, उस से श्रुति-वेद श्रेष्ठ और उससे भी उपनिषद श्रेष्ठ, उस से गायत्री (मंत्र) श्रेष्ठ है। और इसलिए ही 'ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायन्ति जयन्तिच' (दे. भा.) ब्रह्मदेवादि सभी देव भी संध्या में उसका ध्यान-जपादि करते हैं क्योंकि 'गायत्री तु परं तत्त्वं गायत्री परमा गतिः' इसीलिए ही,

'सर्वाऽमरैः इयं ध्याता सर्व व्याप्तं तथा जगत्।
उत्पद्यते त्रिपदायाः पुनस्तस्यां विशेत् इदम्।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया ओंकारः पुरुषः स्मृतः।
एतयोरेव संयोगात् जगत् सर्वं प्रवर्तते।

इत्यादि बहुत महिमा बृह. पारा. (अ. ३) में वर्णित है। वेद भी जिसकी उपासना करते हैं यह इसके पहले कहा जा चुका है। तीनों पादों की उपासना का यह अत्यल्प महत्त्व कहा गया है। गायत्री के एक-एक पाद की महिमा बृह. उप. में वर्णित है। (५।१४।१.३) भूमिः अन्तरिक्ष द्यौः (दियौ) ये आठ अक्षर हैं. उसी तरह ही गायत्री के प्रथम पाद में है (वरेण्यम् = वरेणियम् समझना चाहिए) इस प्रकार गायत्री प्रथम पाद त्रिलोकीस्वरूप है। जो इस प्रथम पाद की उपासना करता है वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष और स्वर्ग (भूः भुः स्वः) इन तीनों लोकों को जीत लेता है। 'ऋचः यजूंषि सामानि, ऐसे वेदत्रयी के आठ अक्षर हैं; तीनों वेद गायत्री का दूसरा पाद है। इस दूसरे पाद की जो उपासना करता है, उसे तीनों वेदों का संपूर्ण फल मिलता है। 'प्राणः अपानः व्यानः (वियानः) ये आठ अक्षर हैं। गायत्री के तीसरे पाद में भी आठ अक्षर हैं। गायत्री के तीसरे पाद की जो उपासना करता है, वह प्राणापानव्यानमय रहनेवाले अर्थात् संपूर्ण प्राणीमात्र को जीत लेता है। 'परो रजसे सावदोम्' इस गायत्री के चतुर्थ पाद की भी ऐसी ही महिमा वर्णित है। जो रजतमोऽतीत दर्शनीय पद ब्रहमरूप है, वही तुरीय स्वरूप परमात्मा सूर्यादिरूप होकर सबको प्रकाश, उष्णता, प्रेरणा आदि देता है। गायत्री के तुरीय पाद की जो उपासना करता है वह भी श्री, यश आदि से सब को प्रभावित करता है, उन में तेज, प्रकाश फैलाता है। (त्रिपद के जप के एक बटा आठ (१/८) जप इसका करना चाहिए। ऐसा अनुभव में आया है कि चतुर्थ पादका बिलकुल जप न करते हुए जो केवल त्रिपद का ही जप करते हैं, उन से अधिक त्रिपदा के साथ १/८ चतुर्थ पादका भी जप करते हैं, उनका प्रभाव अधिक होता है। तुरीय चैतन्यरूप गायत्री सभी प्राणियों के हृदय में स्वयं ज्योति (स्वयं प्रकाश) प्रत्यक् चैतन्य (प्रत्यगात्मा) रूप में विद्यमान् है। जो ब्राह्मण अर्थ भावपूर्ण हृदय से गायत्री की उपासना करते हैं, वे किसी भी प्रकारका प्रतिग्रह लेने पर भी उन्हें दोष नहीं लगता है। इत्यादि बहुत वर्णन आगे ५ तथा ६ इस मंत्र में है। अतः यहाँ उसके अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है। ध्यान में रखिए कि कोई भी प्रतिग्रह बाधक न होने के लिए उपनयन विधि से लेकर कभी भी संध्यालोप एक बार भी न हुआ हो, इतना ही नहीं तो मुख्य काल भी एकबार भी न चूका हो। इसी के साथ सदाचार तथा नीतिपालन अच्छा होना चाहिए। इस सन्दर्भ में बहुत उदाहरण हैं, परन्तु विस्तारभय से उन्हें देना उचित नहीं लगता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गायत्री की सर्वव्यापकता, ब्रह्मस्वरूपता, पापविनाशकप्रभाव, आधिव्याधिनिवारक सामर्थ्य, भोगमोक्षदायक शक्ति इत्यादि का अन्य अनेक उपनिषदों में, स्मृतियों में, पुराणों में तथा अन्य ग्रंथों में बहुत वर्णन है। अधिक कहाँ तक कहें, धनुर्वेद में वर्णित अस्त्रविद्या के मंत्र भी प्रमुख रूप से गायत्री मंत्र से ही बने हुए हैं।

अन्य किसी भी वेदमंत्र के अनुष्ठान के सिध्द होने की पात्रता आने के लिए गायत्री की नित्य उपासना करनेवाले व्यक्ति का भी प्रायश्चित्तादि विधिपूर्वक गायत्री का २४ लाख का एक तो भी पुरश्चरण सविधि किया होना चाहिए। उसके बाद ही वेद मंत्र के अथवा धनुर्वेदोक्त अस्त्रमंत्र के पुरश्चरण करने पर उनकी सिध्दि प्राप्त होने की सम्भावना होती है। तथापि इस कलिकाल में वह असम्भव हुआ है। जिस अस्त्रमंत्र का अनुष्ठान करना हो तो वह मंत्र जिसे सिद्ध हुआ है ऐसे उपदेश करनेवाले गुरु की आवश्यकता होती है। परंतु वह परम्परा लुप्त हो गई है। एक बिलकुल दस-बीस वर्ष पूर्व का उदाहरण देकर कुछ अस्त्रों के मंत्र नमूने के तौर पर ले रहे हैं।

उत्तर-भारत में 'सवाई सिद्धेश्वर ब्रह्मचारी' नामक एक ब्राह्मण थे। (सम्भव है आज भी वे जीवित होंगे।) उन्होंने मंत्रानुष्ठान से इतनी सिद्धि प्राप्त कर ली थी कि वे अकेले थे फिरभी २०-२५ मनुष्यों के पालन-पोषण के लिए लगनेवाला धन, कुछ उद्योग न करते, अनायास प्राप्त हो जाता था। वे किसी से भी कुछ नहीं लेते थे तथा परान्न भी नहीं लेते थे। सनातन वैदिक धर्म पर हो रहे परधर्मियों के आक्रमण तथा हिन्दुस्तान देश की गुलामी नष्ट करने हेतु पाशुपतास्त्र सिद्ध करना उनका हेतु था। परन्तु ३६ वर्षों के अनुष्ठान करने पर भी वह उन्हें प्राप्त नहीं हुआ। उनकी यह व्याकुलता मरते क्षण तक अक्षुण्ण रही तो किसी जन्म में उन्हें यह पाशुपतास्त्र अवश्य सिद्ध होगा इस में संदेह नहीं है। उनके अनुष्ठान की जानकारी १९३८ ईसवी में अजमेर जाते समय प्राप्त हुई थी।

ब्रह्मास्त्र मंत्र-गायत्री मंत्र उलटा कहने से वही ब्रह्मास्त्र मंत्र हो जाता है। परन्तु उस में कुछ बीज लगाने पड़ते हैं। उसका अनुष्ठान एक निखर्व करना पड़ता हैं। (निखर्व याने संख्या दस हजार करोड़) प्रयोग करते समय श्लीं पशु हुं फट् अमुकं शत्रुं (शत्रून्) हन हन हुं फट्' ऐसा कहना है।

ब्रह्मदण्ड- ऋषि वसिष्ठ के जिस ब्रह्मदण्ड ने विश्वामित्र जैसे को 'धिग् बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलम्। एकेन ब्रह्मदण्डेन हतं मे क्षत्रिय बलम्' ऐसा कहने के लिए बाध्य किया वही ब्रह्मदण्ड याने ब्रह्मदण्ड नामक अस्त्र है। उसका मंत्र है, 'ओं प्रचोदयान्नो यो धियो धीमहि देवस्य भर्गो वरेण्यं सवितुः तत्।'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अग्न्यस्त्र, नारायणास्त्र आदि अस्त्रों के मंत्र गायत्री मंत्र के शब्दों के विविध क्रम से तैयार हुए हैं। जो 'मृत संजीवनी मंत्र' केवल शुक्राचार्य को सिद्ध हुआ था, वह 'त्र्यंबक यजामहे'मंत्र के चार चरणों के बीच-बीच में गायत्री के तीन चरण रखने से बनता है।

बलातिबलाविद्या मंत्र- इसके द्वारा क्षुधादिका पूर्ण निरसन हो सकता है तथा अपार तेज, बल, ओज इत्यादि की प्राप्ति होती है। यह विद्या विश्वामित्र द्वारा श्रीरामलक्ष्मण को प्राप्त हुई थी। इस मंत्र में गायत्री मंत्र के सभी पद बीच-बीच में प्रयुक्त किए गए हैं। यह मंत्र सावित्री-उपनिषद में दिया है। कलिकाल में अस्त्रविद्या के मंत्र सिद्ध होना यद्यपि असम्भवसा प्रतीत होता है, फिर भी यह मंत्र सिद्ध हो सकता है ऐसा विश्वास है। परन्तु उसके पहले १० चांद्रायण तथा ४९ दिन 'पिण्याकव्रत' करते हुए एक गायत्री पुरश्चरण (२४ लाख) करना चाहिए। उस मंत्र का एक पुरश्चरण एक मंडल दिनों का (मंडल = ४९) रोज जप १०८; चार पुरश्चरण गुरु-मुख से मंत्र श्रवण करते हुए करें। गुरु उत्तम अधिकारी व्यक्ति चाहिए। धारेकृत पुरश्चरण पद्धति में ऊपर दिए हुए ब्रह्मास्त्र मंत्र के अन्त में और अधिक जानकारी दी गई है।

ऐसा अपार, कल्पनातीत सामर्थ्यसम्पन्न मंत्र गायत्री मंत्र के सिवा दूसरा एक भी नहीं है। परन्तु यह ध्यान में रखिए कि इस अस्त्र का उपयोग करनेवाले महा धनुर्धर क्षत्रिय महावीर, युद्ध स्थल में भी अत्यंत योग्य समय में, संक्षिप्त रूप से संध्या करते थे। दिनरात युद्ध चालू रहने पर भी संध्यालोप अथवा काल-लोप नहीं करते थे। अस्त्रप्रयोग करने से पहले रणस्थली में भी आचमन करते थे। आदि बातें महाभारत के अध्ययन कर्ताओं को मालूम है ही।

आशंका- गायत्री मंत्र का जप न करते हुए केवल मंत्रार्थ का अपनी मातृभाषा में चिन्तन करने में क्या आपत्ति है?

समाधान- इसके पूर्व दिए ब्रह्मदण्ड मंत्र में गायत्री मंत्र के सभी शब्द, पद हैं, एक भी अधिक नहीं है; अर्थ भी वही है, फिर भी परिणाम बिल्कुल भिन्न क्यों है? शब्द वे ही होने पर भी उन पदों का क्रम बदल दिया गया है; वे सभी पद ब्रह्मदेव के मुख से ही निकले हैं, फिर भी यदि विपरित परिणाम होता होगा, तो फिर हम साधारण मानवों के द्वारा प्रयुक्त मातृभाषा के शब्दों से वही फल कैसे मिल सकेगा?

त्रिविध प्रकार से मंत्र-परिणाम- कुछ मंत्रों का कार्य उन शब्दों की ध्वनि से, कुछ मंत्रों का अर्थ से तो कुछ मंत्रों का मंत्रदेवता के प्रसाद से होता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है, तो कुछ मंत्रों का इनमें से दो अथवा तीन के संयोग से होता है। कुछ मंत्र तो ऐसे हैं कि उनका कुछ अर्थ ही नहीं होता है। उनका कार्य केवल ध्वनि से होता है। शाबर मंत्र केवल ध्वनि से कार्य करनेवाले हैं, इसलिए ही तुलसी-रामायण में कहा है कि,

'अनमिल आखर अर्थ न जापू।
प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू।।'

शाबर मंत्र के अक्षरों में, शब्दों में कुछ तालमेल नहीं होता है, अर्थ नहीं है, केवल जप, उच्चार! परन्तु प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि उन मंत्रों की निर्मिति 'हर-गिरिजा' द्वारा की गई है।

'कलि बिलोकि जगहित हर-गिरिजा।
साबर मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा।।'

कलियुग के मानवों की दुर्दशा देखकर उनके हित के लिए हर-गिरीजा इने शाबर मंत्रों का समूह निर्माण किया। उसे शाबरी विद्या कहते हैं। उसी के लिए शंकर-पार्वती इन्होंने शबर (भिल), शबरी (भिलनी) का रूप लिया था। शबर से निर्मित हुए इसलिए शाबर कहलाए। ये मंत्र विशेष रूप से भिल, मछुआ, ठाकुर, वारली, कातकरी आदि वनों में रहनेवाले वनवासियों में आज भी प्रचलित हैं तथा प्रभावी है। परन्तु वे लोग उसके लिए कई कठिन नियमों का पालन करते हैं। महेश का, उन मंत्रों के ऋषियों का प्रताप तथा उन शब्दों के ध्वनि से उन्हें मंत्रों का फल मिल जाता है। भूतपिशाचबाधा, सर्पदंश, वृश्चिकदंश, बीमारियाँ आदि विविध पीड़ा निवारण करनेवाले विविध मंत्र उसमें हैं। मानसिक जप में ध्वनि भी कार्य करती है। मंत्र किसी भी प्रकार से कार्य करता हो फिर भी मंत्रनिर्माता ऋषि का प्रभाव उसके पीछे होता ही है। इसीलिए मंत्र का उपयोग करने से पहले उसके ऋषि का नामोच्चार करना चाहिए। राम, कृष्ण, दत्त, शिव इत्यादि के नाम मंत्र के भी ऋषि, छंद तथा देवता इनके उल्लेख, मंत्रवर्णन में तथा उपनिषदों में भी दिए हैं, न्यास भी हैं।

गायत्री मंत्र का प्रभाव ध्वनि, देवता तथा अर्थानुसंधान इन में से एक अथवा तीनों प्रकारों से पड़ता है। अस्त्रविद्या के अन्तर्गत गायत्री मंत्र में ध्वनि तथा देवता प्रसाद से कार्य होता है। इसलिए जिस देवता का अस्त्र होगा उस देवता की कृपा के बिना वह मंत्र फलदायी नहीं होता। ब्रह्मास्त्र, ब्रह्मदण्डास्त्र ब्रह्मदेव की कृपा से ही सिद्ध होते हैं। पाशुपतास्त्र पशुपति शंकर की कृपा से सिद्ध होता है। इसीलिए ही द्रोणाचार्य से मंत्र मिलने पर भी भीलरूप में आए पशुपति शंकर से अर्जुन को

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

युद्ध करना पड़ा। ऐसा ही अन्य अस्त्र-मंत्रों के संबंध में भी है।

पश्चिमी विद्वानों के अनुभव- कुछ ईसाई-पश्चिमी व्यक्तियों ने गायत्री मंत्र तथा अन्य वेदमंत्रों के अनुभव प्रयोग के बाद वर्णित किए हैं। ऐसे लोगों में थिऑसॉफिकल सोसायटी के डॉ. ॲनी बेझंट तथा बिशप लेडबिटर के नाम उल्लेखनीय हैं। उन में भी चार्ल्स् लेडबिटर इनका नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्हें कुछ मंत्रों के जो परिणाम अतींद्रिय ज्ञान से दिखाई दिए वे उन्होंने 'ए टेंपल थॉट फॉर्म' इस निबन्ध में सचित्र प्रकाशित किए हैं।

The Chakras (षट्चक्रदर्शन) यह भी उनका एक सुन्दर स्वानुभव पर आधारित ग्रंथ है तथा उसमें चक्रों की जानकारी और कुंडलिनी जागृति इस संबंध में अच्छी मार्गदर्शक जानकारी दी है। धोखे की सूचनाएँ अर्थात् निषेध भी सूचित किए हैं। सुशिक्षित कहलानेवाला अधिकांश ब्राह्मण समाज 'परप्रत्ययनेय बुद्धि' हो गया है अर्थात् दूसरों की बुद्धि से संचालित हो गया है। और वह मॅक्समूलर तथा उनके अनुयायी होनेवाले पश्चिमी विद्वानों द्वारा हेतुपूर्वक किए गए बुद्धिभेद का वह परिणाम है। श्रुति-स्मृति-पुराणों पर उनका विश्वास समाप्त हो गया है। जब हिंदू शास्त्र में कथित किसी सिद्धान्त पर पश्चिम विद्वानों की स्वीकृति की मुहर लग कर वह पार्सल यहाँ आता है, तब कम से कम वाणी से स्वीकार करने की प्रवृत्ति होती है। (पर) विदेशियों के (प्रत्यय) अनुभव से (नेय) खिंची जानेवाली जिनकी बुद्धि हो गई है, इसलिए वे 'पर-प्रत्यय नेय-बुद्धि' कहलाए जाते हैं। ऐसे लोगों के लिए तथा गायत्री मंत्र का प्रभाव श्रद्धालुओं को ज्ञात हो इसलिए यह प्रयास तथा विस्तार करते हुए गायत्री मंत्रोच्चार के संदर्भ में उनके अनुभव दिए जा रहे हैं या देने पड़ रहे हैं, परन्तु यह भी दिखाई दिया है कि संभवतः उन साहबों ने कुछ क्षेत्रों में प्रयोग नहीं किए होंगे।

एक व्यक्ति ने अथवा अनेक व्यक्तियों ने एक ही समय में गायत्री मंत्र कहा तथा अदृश्य सृष्टि में होनेवाले उसके परिणाम लेडबीटर ने देखे, ऐसे प्रयोग किए गए। अदृश्य सृष्टि में होनेवाले परिवर्तनों को देख सकने की अतींद्रिय शक्ति उनके पास थी। 'सनातनी' कहलानेवाले हमारे वाचकों को संदेह से कान खड़े करने की आवश्यकता नहीं है। अतींद्रिय दृष्टि से ज्योतिष शास्त्र का गहन तथा अपूर्व ज्ञान करनेवाले रॅफेल, चारुबेल, ॲलनलीओ आदि द्रष्टा उन में भी थे, और विचार प्रक्षेप (थॉट ट्रॅन्स्मिशन) सैंकडों मील दूरी से करनेवाले व्यक्ति पश्चिम में थे, आज भी होंगे!

लेडबीटर इन्हें प्रमुख रूप से ऐसा प्रतीत हुआ कि गायत्री मंत्र यह ध्वनि का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मंत्र न होकर अर्थ से प्रभावित करनेवाला मंत्र है। परन्तु यह कथन अर्धसत्य है यह कई प्रयोगों से कईं बार सिद्ध हुआ है। अर्थ न समझते, अर्थ की ओर ध्यान न देते, गायत्री मंत्र का उच्चार करने पर जो परिणाम होता है वह अलग प्रकार का है इतना ही कहा जा सकता है। प्रत्यक्ष प्राप्त होनेवाले अनुभवों में से एक ही छोटा उदाहरण आगे दिया जा रहा है।

सातारा जिले के एक एम्. बी. बी. एस्. डॉक्टर के बेटे का उपनयन संस्कार हो रहा था। तब इन पंक्तियों का लेखक वहाँ उपस्थित था। वे डॉक्टर, उनकी पत्नी, पुत्र तथा कन्या अच्छे संस्कारित व्यक्ति हैं। गायत्री मंत्र के उपदेशक को बारह हजार गायत्री जप पहले करना पड़ता है, वह उनके द्वारा किया गया था। संपूर्ण विधि यथाशास्त्र तथा यथाविधि कराए गए थे। मंत्रोपदेश कैसा करना चाहिए, मंत्र सुप्त होने पर उपदेश के समय में उसे कैसे जागृत करना चाहिए आदि संपूर्ण यथा मंत्रशास्त्र उन्हें बताया गया था। उपदेश करते समय वहाँ चारों ओर तीसरा कोई व्यक्ति नहीं होना चाहिए, जो वहाँ होंगे उन्हें युक्ति से कैसे दूर करना चाहिए आदि सब बताया गया था। उपनयन 'गर्भाष्टमे वर्षे' उत्तम मुहूर्त पर किया गया था, उपदेश काल भी ज्योतिष शास्त्र की दृष्टि से सुयोग्य निश्चित किया गया था। उन डॉक्टरों को गायत्री मंत्र का अर्थ मालूम नहीं था। वे दत्त के उपासक हैं। उनका बेटा उपनयन संस्कार के पहले कई महीनों तक घर में ही स्वतंत्र स्थान में हनुमान की मूर्ति की पूजा तथा हनुमान इस नाम का जप करता था। मंत्रोपदेश लेने से पहले वपन किए मस्तक पर दाहिना हाथ रखकर उस मंत्र का दस बार तो भी मन में जप करना चाहिए; परन्तु ये सारी बातें किसी को बहुधा मालूम नहीं रहती। डॉक्टर ने निश्चित मुहूर्त पर बेटे के मस्तक पर हाथ रखकर यथाविधि सब किया; उसी समय उस बटु को अन्तःचक्षु के सामने पंचमुखी देवी दिखाई दी। उसने कभी गायत्री का चित्र नहीं देखा था। संपूर्ण विधि समाप्त होने पर वह बटु तुरन्त माता के पास पहुँचा और उसने उससे पूछा कि 'माँ, हाथ में चाबुक रखनेवाली पाँच मुखों की देवी कौन है?'' उसने कहा, 'मुझे मालूम नहीं है, ऊपर मंजील में बैठे स्वामीजी से पूछ लेना।' वह तुरन्त स्वामीजी के पास पहुँचा। उन्हें प्रणाम करते हुए उसने उनसे पूछा। तब वह प्रश्न पूछते ही स्वामीजी अवाक् रह गए। मुंह से शब्द निकलना कठिन हो गया उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। (इन पंक्तियों को लिखते समय भी वही हो रहा है।) किसी प्रकार अपने को संयमित करते हुए उसे कहा गया, 'बेटा, वह तो गायत्री देवी है!' उसके बाद तुरन्त उसे 'मुक्ताविद्रुम०' यह गायत्री के ध्यान का श्लोक अर्थ के साथ समझाया। इस गायत्री

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ध्यान के श्लोक को संध्या के समय में कहते हुए किसी ब्राह्मण से पूछने पर, 'कशा' याने चाबुक यह उसे बहुधा मालूम नहीं रहता है। और सम्भवतः यह भी दिखाई देगा कि गायत्री के वैसे चित्र के रोज पूजन करनेवाले अथवा गायत्री मंदिर में देवी के दर्शन अनेक बार लेनेवाले को भी यह मालूम नहीं होगा कि गायत्री के एक हाथ में चाबुक है! इस घटना से जो निष्कर्ष निकालना हो वह पाठक निकालें। इस प्रकार के प्रयोग जरूर करने चाहिए। इस सात वर्ष के बटु को गायत्री देवी के जैसे दर्शन हुए, वह अर्थानुसंधान अथवा ध्वनि का परिणाम नहीं कहा जा सकता। वह तो केवल गायत्री देवी की कृपा का परिणाम है। लेडबीटर ने गायत्री देवी के प्रसाद से प्राप्त होनेवाले अनुभवों के लिए प्रयोग संभवतः नहीं किए होंगे अथवा जिन्होंने प्रयोग किए, वे गुरु-शिष्य व्यक्ति कृपापात्र नहीं थे ऐसा कहना पड़ता है। इतना अवश्य सही है कि कुमार अवस्था में जैसे सहज अनुभव आते हैं वैसे तरुण अवस्था अथवा वृद्धावस्था में बहुत थोड़े आते हैं। इसीलिए 'कौमारे आचरेत् प्राज्ञः धर्मान् भागवतान् इह' (भाग.) ऐसा कहा गया है।

ओंकार ध्वनि के संबंध में उनका अनुभव

लेडबीटर कहते हैं, ॐ यह ध्वनि है। उसका कार्य ध्वनि से होता है। उसके उच्चार की कई पध्दतियाँ हैं। (कौनसी पद्धतियाँ है उन्होंने नहीं बताया है, परंतु यहा आगे बताया गया है) जिस पद्धति से उसका उच्चार करेंगे, उस ध्वनि के अनुसार कार्य संपन्न होता है। मनुष्य के सूक्ष्म देह में स्थित अणु अनुशासन में आ जाते हैं। वे अणु अनिर्बंधता छोड़ देते हैं। तथा मंत्रशक्ति को उन आदमियों को देह में प्रवेश करने के लिए अनुकूलता उत्पन्न होती है। यह उनके कथन का सार है। उनके ये अनुभव अर्धसत्य प्रकट करते हैं। केवल सूक्ष्म देह में स्थित सूक्ष्म द्रव्य ही नहीं तो स्थूल देह के रोम, त्वचा, रक्तवाहिनियाँ, स्नायु तथा शिराओं में अत्यंत महत्त्वपूर्ण विविध ग्रंथी, इत्यादि पर भी प्रणव के उच्चार का अनुकूल परिणाम होता है।

ध्वनि से ही स्थूल देह पर घटित होनेवाले प्रभाव का अनुभव आने के लिए, जिस तरह से प्रणव का उच्चार करना चाहिए, वैसा उच्चार करनेवाले संभवतः उन्हें कोई मिले नहीं होंगे तथा स्वयं भी वैसा उच्चार करना उन्हें मालूम नहीं था,यही इससे सिद्ध होता है। इसका कारण यह है कि ऐसे उच्चार का परिणाम स्वयं उच्चार करनेवाले व्यक्ति को भी सहज समझ में आ जाता है। स्वामी रामतीर्थ जब प्रदीर्घ प्रणव का उच्चार करते थे, तब श्रोता के शरीर पुलकित हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाते थे। रोमांचित हो जाते थे। वैसा घंटानिनादवत दीर्घकाल तक उच्चार करनेवाले कुछ लोग आज भी महाराष्ट्र में हैं। प्रणव के अनेक अर्थ आगे एक अध्याय में दिए गए हैं। उनमें से 'उच्चारमाणः एव प्राणान् उर्ध्वं उत्क्रामयति' यह एक है। केवल उच्चार करते ही प्राणा-पानादि सभी प्राणों को ऊपर(हृदय की ओर, मस्तिष्क की ओर) जाने के लिए उर्ध्वगति देता है' इसीलिए उसे प्रणव कहते हैं। ऐसे प्रणव के उच्चारण से इन्द्रियों की बहिर्मुखी दौड़ बंद हो जाती है। तथा वे शान्त होने लगती हैं। अर्थात अपनेआप प्रत्याहार होने लगता है। दशप्राणों की गणना लिंगदेह में-सूक्ष्म देह में की गई होगी, फिर भी उनका कार्य स्थूल देह पर घटित होता है। हिलना-डोलना, प्रसरण, आकुंचन, जम्हाई, हिचकी, छींक, डकार आदि बातें प्राणों के ही कार्य हैं। प्रणवोच्चार से प्रत्याहार सधता है, इसीलिए भगवत् गीता में 'सर्वेन्द्रियाणि संयम्य मनो हृदि निरुध्यच' आदि कैसे तथा किसके द्वारा साधना चाहिए यह अगले ही श्लोक के प्रारंभ में 'ओम् इति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्' (ओम् इस एकाक्षर ब्रह्म का उच्चार करते हुए) इन शब्दों से स्पष्ट कहा है। उसके आगे 'माम् अनुस्मरन्' मेरा स्मरण करते हुए ऐसा जो कहा है वह स्मरण, चिंतन उस प्रणव के अर्थ का अनुसंधान के द्वारा ही करना चाहिए।

प्रणव के अर्थ-विवेचन से अनेक उपनिषद् भरे पड़े हैं। प्रणव मंत्र के ज्ञान से भी क्रमशः क्या फल मिलता है, इसका प्रथम मांडुक्योपनिषद् में और आगे कई उपनिषदों में वर्णन है। केवल प्रणवार्थ का चिंतन करने से भी आत्मज्ञान तथा मोक्ष प्राप्त होता है, ऐसा अनेक उपनिषदादि ग्रंथों में कहा है। तथा वह केवल उसके ध्वनि का और वह भी अधूरा अनुभव आया, परन्तु जो उन्हें अनुभव आया वह असत्य नहीं है। प्रणव के परिणाम के संबंध में और बहुत कुछ कहा जा सकता है, परंतु उसकी आवश्यकता नहीं है। प्रणव के बाद तीन अथवा सात व्याहृति (कभी कभी) गायत्री के पहले उनका उच्चार करना पड़ता है। उसके संबंध में तथा गायत्री के संबंध में उनके कुछ अनुभव देते हुए, प्रणव के उच्चारण के प्रकार बतलाना उचित होगा।

`At each repetition of गायत्री a great shaft of light which immediately pours down upon and into the reciter, comes as though from the physical sun, in what direction that sun may happen to be, even below horizon, for then the shaft comes up at one through the Earth! (See Fig 1)

The shaft is white, just slightly tinged with gold, but when it has filled the soul of the reciter, he promtly shoots it from him again in seven

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

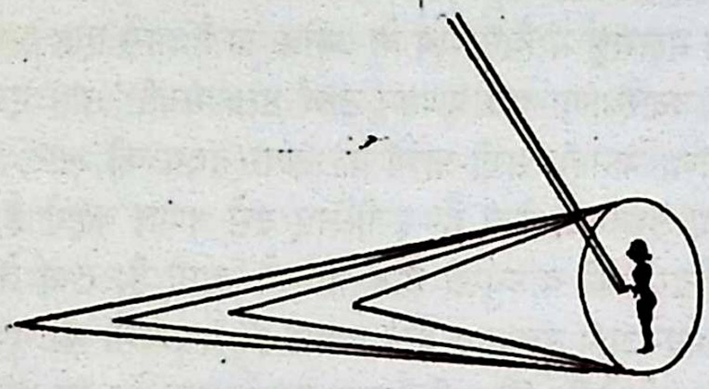

Fig. 1

great rays, cones of light, having the colours of spectrum. It is as through the singer acts as a prism.

All these rays, cones of light, which radiate from the reciter have the diameter of his aura as their base.

They do not radiate in a circle in all directions but in a semicircle in the direction which the reciter is facing.

Furthermore, these rays have a curious appearance of solidifying as they grow narrower, until they end in a point of blinding light.

And a still more curious phenomenon is that, these points act as though they were living; if a man happens to come in the way of one of them, that point curves with rapidity and touches his heart and his brain, causing them to glow momentarily in response. Each ray appears to be able to produce this result on an indefinite number of people in succession (see Fig. 2)

तीन व्याहृती– वे कहते हैं, प्रणव के बाद तीन लोकों के नाम का उच्चार करना चाहिए। भूर्लोक यह पृथ्वी है, भुवर्लोक याने इस पृथ्वी के चारों ओर वायु के आवरण जैसा परन्तु उससे बहुत विरल-पतला द्रव्य का आवरण है। स्वर्लोक याने स्वर्गलोक। यह भुवर्लोक से भी अधिक विरल ऐसे द्रव्य का आवरण है। तीनों लोकों पर गायत्री का परिणाम घटित होनेवाला होता है इसलिए प्रणव के बाद तीन लोकों के नाम का निर्देश करना चाहिए।

उनके कथन पर ऐसी आशंका निर्माण होती है कि उनका नामनिर्देश न किया

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

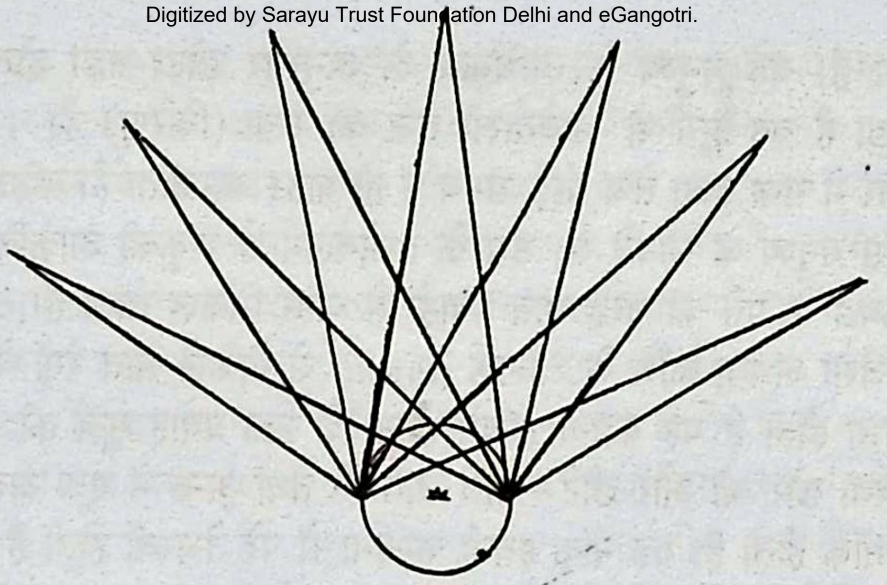

Fig. 2

गया तो क्या उनपर गायत्री का परिणाम होगा या नहीं? यदि न होगा तो क्यों? सार इतना ही कि इन तीन व्याहृतियों का परिणाम उन्हें दिखाई नहीं दिया। परन्तु कुछ कहना अनिवार्य था इसलिए केवल तर्क से बता दिया। सातवीं व्याहृति के उच्चार का जो परिणाम दिखाई दिया उसे उन्होंने पहले ही चित्र के साथ प्रस्तुत कर दिया है। उन्होंने उसके आध्यात्मिक अर्थ का भी उल्लेख नहीं किया है। भूः = सत्, भुवः = चित्, तथा स्वः = आनंद; ये अर्थ श्रीमत् आचार्य तथा अन्य भाष्यकारों ने स्पष्ट किए हैं। और भी जो अर्थ हैं उन्हें प्रणवार्थ के बाद इसी अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

गायत्री का कार्य– कौनसा और कैसे घटित होता है इस संबंध में वे कहते हैं कि 'जिसे अच्छा संस्कृत का ज्ञान नहीं होगा उसे अर्थ की ओर ध्यान रख कर निष्ठा से उन शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। उस प्रकार शब्दों का उच्चारण होने पर सूर्य से एक तेज की प्रवाहधारा उच्चारकर्ता की ओर प्रत्येक मंत्रोच्चार के साथ आती है तथा उसके अन्तर में प्रवेश करते हुए, हृदय तथा (दिमाग) मस्तिष्क में भर जाती है जिस प्रकार छत या दीवार के किसी छेद या छिद्र से सूरज की किरण सीधी घर में प्रवेश करती है। वह शुभ्र-सफेद, उज्ज्वल तथा सुनहली होती है। मंत्र कहते समय सूर्य क्षितिज के नीचे अथवा कहीं भी गया हो फिर भी वह तेज की रेखा, किरण सूर्य जहाँ भी होगा वहाँ से सूर्य से निकलकर पृथ्वी के पेट से ऊपर निकल कर उच्चार करनेवाले के तेजोवलय तक सीधी रेखा की तरह आ जाती है। (चित्र क्र. १ देखिए) चित्र में मनुष्य के चारों ओर जो मंडल दिखाई दे रहा है वह चारों ओर रहनेवाला

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तेजोवलय है। यह मनुष्य के अधिकार के अनुसार छोटा-बड़ा होता है। जो दोहरी रेखा है वह सूर्य से आनेवाली तेज की रेखा (किरण) है।

अन्तर में गया हुआ तेज थोड़े समय में ही बाहर आ जाता है। बाहर निकलते समय, उस मनुष्य के सामने से, उस के तेजोवलय से शंकूकी आकृति की तरह अथवा केवड़े के पत्ते की तरह सात प्रवाहों से बाहर निकल जाता है। उनका वर्ण इंद्रधनुष जैसा अथवा काँच के लोलक (Prism) से निकले सात रंगों के प्रकाश-किरण जैसा होता है यह कहना उचित होगा। वे सात प्रवाह मूल की ओर चौड़े रहते हैं तथा छोर की ओर छोटे– होते जाते हैं। तथा अन्त में एक अत्यंत सूक्ष्म सिरा या नोंक होती है। वह नोंक इतनी कल्पना से परे तेजस्वी होती है कि आँखें चकाचौंध हो जाती है।

उन प्रवाहों का विशेष आश्चर्य यह है कि वे सजीव ज्वालाओं की तरह होते हैं तथा उस नोक के निकट आगे पीछे कोई मनुष्य जाए अथवा रहे तो उसकी ओर वह नोक झुक जाती है अथवा आगे पीछे चली जाती है। तथा उसके हृदय-मस्तिष्क में प्रवेश कर उसे प्रभावित करती है।

अनेक व्यक्ति उन सात किरण-प्रवाह की कक्षा में होंगे तो उन सभीपर उनका परिणाम होता है। परन्तु सभी प्रवाह सभी व्यक्तियों पर समान रूप से परिणाम नहीं करते। जो जिस प्रवाह की कक्षा में होगा उसीपर उनका प्रभाव होता है।

अनेक व्यक्ति एक ही समय में गायत्री का उच्चारण करें तो प्रत्येक के पास अलग रूप में किरण-प्रवाह नहीं आता है, परंतु अधिक विशाल प्रवाह उनकी ओर आता है। तथा उन सभीपर पहले की तरह परिणाम होता है। वह प्रवाह बाहर निकलते समय प्रत्येक व्यक्ति में से सात प्रवाह न निकलते हुए उन सभी व्यक्तियों में से सात ही (सप्त रंग के) प्रवाह पहले की तरह किन्तु बड़े आकार के बाहर निकलते हैं तथा उनकी कक्षा में आनेवालों को पहले की तरह प्रभावित करते हैं। (चित्र क्र. २ देखिए)

इस प्रकार गायत्री मंत्र मनुष्यों की (मानवता की) उन्नति के लिए सहायक होता है। जप करनेवाले की बुद्धि में प्रेरणा, स्फूर्ति, भावना आदि को उत्तेजन मिलता है। और उनके संपर्क में रहनेवालों को भी प्रोत्साह मिलता है। इन मंत्रों से मनुष्यों के चारों ओर का वातावरण भी प्रभावित होता है। तथा वह श्रेष्ठ प्रकार का बनता है यही उनके (लेडबीटर के) अनुभव का सार है।

सूर्यबिम्ब ही सविता– सवितृ देव नहीं है। सूर्यबिम्ब के अन्तर्गत ब्रह्म याने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सविता। यह जिस प्रकार श्रुति-स्मृति-पुराणों तथा भाष्यों आदि में कहा गया है, उसी प्रकार परन्तु थोड़े अलग ढंग से लेडबीटर ने कहा है।

लेडबीटर के उपकार– यह थोड़ासा महत्कार्य करते हुए उन्होंने वैदिक सनातन धर्म पर तथा उन धर्मियों पर बहुत उपकार ही किए हैं। उनके खोज-कार्य में कुछ न्यूनता होनेपर भी वह विचारशील तथा स्वहिताकांक्षी लोगों को कार्यप्रवण करने में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा, इस में सन्देह नहीं है। माया की सहायता से जीव के द्वारा किया गया कार्य कभी भी परिपूर्ण अथवा निर्दोष होना सम्भव ही नहीं है। स्वयं परिपूर्ण तथा पूर्ण निर्दोष ऐसा केवल 'ब्रह्म' परमात्मा, परमेश्वर ही है। अन्य सभी गुणदोषमय हैं, 'गुणदोषमयं जगत्'। भारतीय ब्राह्मणों में कोई भी अतीन्द्रिय दृष्टिसम्पन्न नहीं होगा ऐसा नहीं लगता। तब फिर वे ऐसा प्रयोग क्यों नहीं करते? लेडबीटर जैसे विदेशी, परधर्मी व्यक्तियों के कथन पर इस संदर्भ में लोग जितना विश्वास रखेंगे उतना स्वदेशी, स्वधर्मियों पर नहीं रखेंगे, यह सही होनेपर भी कुछ थोडे लोग तो भी अवश्य विश्वास रखेंगे।

लेडबीटर ने अतींद्रिय शक्ति से कुछ अंशों में ऋषि जैसा ही कार्य किया है। इन साहबों ने जो कहा वही ऋषियों ने, स्मृतिकारों ने कहा होता तो उनके कथन पर किसी ने विश्वास न रखा होता।

'अग्नौ प्रास्ताऽऽ हुतिः सम्यक् आदित्यम् उपतिष्ठते।' अग्नि में यथाविधि दी गई आहुति आदित्य मण्डल में पहुँच जाती है। यह तथा इस प्रकार का बहुत कथन ऋषियों ने किया है, पर इन पर कौन सच्चा विश्वास रखेगा।

अनुभव–आचार संपन्न तथा नीतिसंपन्न रहकर श्रद्धा से जो गायत्री की उपासना अपने घर में करते हैं अथवा करना प्रारंभ करते हैं, उनके सम्पर्क में आनेवालों तथा उनके घर में कुछ दिन रहनेवालों पर बहुत अच्छा परिणाम होता है, तथा वे भी आगे धीरे धीरे गायत्री जप, संध्या आदि करने लगते हैं, इसके कई अनुभव अनेक वर्षों से, अनेक स्थानों पर लिए हैं। इससे यह निश्चित होता है कि लेडबीटर ने जो लिखा है वह कल्पित उपन्यास नहीं है बल्कि वह अनुभूत सत्य है।

'नः धियः प्रचोदयात्' (प्रचोदयति) यह कैसे घटित होता है यह अब अलग रूप से कहने की आवश्यकता नहीं है।

प्रणव का उच्चार करने की कई पद्धतियाँ है, यह उन्होंने कहा, परन्तु वे कौनसी पद्धतियाँ हैं यह नहीं बताया। उनके नाम तथा उनकी विशेषताएँ बृ. पाराशर स्मृति में बताई हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'कर्मारंभेषु सर्वेषु त्रिमात्रः संप्रकीर्तितः।
स्थितो यत्र यथोक्तश्च स्मर्तव्यः स तथैव च।। १९।।
ऋग्वेदे स्वरितोदात्त उदात्तश्च यजुः श्रुतौ।
सामवेदे च विज्ञेयो दीर्घः स प्लुत एव च।। २०।।
प्लुतः त्रिमात्रके (हैमः)

तीन मात्राओं के उच्चार को प्लुत कहते हैं। किसी भी कर्म के आरंभ में प्रणव का त्रिमात्रात्मक = प्लुत उच्चार करना चाहिए। ऋग्वेद में स्वरितोदात्त कीजिए, यजुर्वेद में उदात्त करें तथा सामवेद में प्लुत दीर्घ उच्चार कीजिए। जहाँ जैसा उच्चार बताया गया है वहाँ वैसा कीजिए। इस प्रकार उदात्त, स्वरितोदात्त, प्लुत तथा दीर्घ ऐसे चार प्रकार कर्मारंभ तथा वेदत्रय के कारण हुए। इसके अलावा दीर्घघंटा निनादवत् (कांस्यधातु से बने घंटे के दीर्घ निनादित ध्वनि की तरह) यह पाँचवा प्रकार लययोग के अभ्यास में कहा गया है। बृहत्पाराशर स्मृति में यही कहा है।

गायत्री जपध्यान यही संध्या का सबसे प्रमुख कर्म होने के कारण उसकी महिमा तथा मंत्र का कार्य कैसे घटित होता है यह कथन करते समय संध्या से कौन से लाभ-फायदे होते हैं इसका थोड़ासा ही दिग्दर्शन हुआ है। इसलिए संध्या से मिलनेवाले लाभों का विस्तृत विवरण आगे के अध्याय में किया गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ६

संध्या करने से क्या लाभ?

यस्तु संध्यां उपासीत श्रद्धया विधिवत् द्विजः।
न तस्य किंचित् अप्राप्यं त्रिषु लोकेषु विद्यते।। (स्मृतिः)
संध्यां उपासते ये तु नियतं संशितव्रताः।
विधूत पापाः ते यान्ति ब्रह्मलोकं अनामयम्।। (यम.)
ब्रह्मलोकं सनातनं (पा. भे.) अत्रिस्मृति–

जो द्विज यथाविधि तथा श्रद्धा से नित्य संध्या करेंगे उन्हें अप्राप्य ऐसा त्रिलोक में कुछ भी नहीं है।। १।।

जो व्रतस्थ सदाचारसंपन्न रहकर नित्य नियम से (त्रिकाल में) संध्योपासना करते हैं वे सभी पापों से मुक्त होकर, क्लेश दुःखरहित, सनातन ब्रह्मलोक में जाते हैं।। २।।

दिन में तथा रात्रि में अज्ञान से जो पाप हो जाते हैं वे त्रिकाल संध्या से नष्ट होते हैं। (याज्ञ. मनु.)

'त्रिकाल संध्याकरणात् तत् सर्वं च प्रणश्यति।

इसी तरह यह कथन देखिए–

ऋषयः दीर्घसंध्यत्वात् दीर्घं आयुः अवाप्नुयुः।
प्रज्ञा यशश्च कीर्तिं च ब्रह्मवर्चसम् एव च।। (मनु)

दीर्घ काल तक संध्या करने पर ऋषियों को दीर्घ आयु, प्रज्ञा, यश, कीर्ति तथा ब्रह्मतेज की प्राप्ति हुई। (अन्य लोगों को भी होगी।)

यस्तु तां केवलां संध्यां उपासीत स पुण्यभाक्।
तां परित्यज्य कर्माणि कुर्वन आप्नोति किल्बिषम्।। (याज्ञ.)
'संध्यालोपस्य चाऽकर्ता स्नानशीलश्च यः सदा।
तं दोषा न उपसर्पंति गरुत्यन्तम् इवोरगाः।।' (कात्यायन)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जो केवल त्रिकाल संध्या ही उत्तम काल में, यथाविधि श्रद्धा से करेगा वह पुण्यवान होगा। (पुण्य का फल सुख तथा पाप का फल दुःख); परंतु संध्या न करते हुए अन्य जप पूजादि कर्म बहुत करता है तो भी वह पापी होगा।। १।। जो कभी त्रिकाल संध्या नही चूकता और संध्या का लोप (तथा काललोप) नहीं करता, उसे दोष, पाप स्पर्श भी नहीं करतें। जैसे भुजंग गरुड़ के पास कभी नहीं आते।

शास्त्राचार के विरुद्ध व्यवहार करनेवाले जो द्विज होते है, उन्हें पावन करने के लिए ब्रह्मदेव ने (स्वयंभू ने) संध्या निर्माण की। (याज्ञ.) इसके पूर्व दिया हुआ वचन 'ब्रह्मादयोऽपि संध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च' यह वचन ध्यान में होगा ही।

काले तु वंदिता संध्या स्वर्ग-मोक्ष-प्रदायिनी। (गा. पु. प.) उत्तम काल में की गई संध्या स्वर्ग तथा मोक्ष भी देती है।

गायत्री जपकृत भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते।
सर्व पापानि नश्यंति गायत्रीजपतो नृप।।
ब्रह्महत्यादि पापानि गुरूणि च लघूनि च।
नाशयत्यचिरेणैव गायत्रीजापको द्विजः।।

ब्रह्महत्यादि महापातक, उपपातक आदि सभी पाप भक्ति से गायत्री का जप करने पर तत्काल नष्ट होते हैं। ऐसे सभी पापों का संहार करते हुए उद्धार करती है इसीलिए उसे गायत्री कहते हैं। (बृ. पा. भविष्य पु., अग्नि, पद्म; तथा व्यासस्मृति) किस पाप के नाश के लिए कितना जप करना चाहिए वह 'गायत्री के सकाम प्रयोग'नामक अध्याय में देखिए।

'ऐहिकाऽमुष्मिकं सर्वं गायत्री जपतो भवेत्' (अग्नि पु.)

गायत्री के जप से सब प्रकार के ऐहिक तथा पारलौकिक सुख मिलते हैं। 'सदा प्रसन्न रहकर, विपुल सुखोपभोग भोगकर मोक्ष प्राप्त होगा। (गौतम स्मृति) जो तीन वर्षों तक केवल गायत्रीजप परायण रहेगा, अर्थात् गायत्री की उपासना के बिना अन्य कुछ भी उद्योग न करते हुए सर्वकाल गायत्री की उपासना में ही व्यतीत करेगा उसे परब्रह्म प्राप्ति होगी, वह परब्रह्म स्वरूप होगा। (मनु.)

याज्ञवल्क्य– उपनयन विधि होने से मृत्युतक जो त्रिकाल केवल सात जप करेगा उसकी देह पवित्र होगी। दस करने से स्वर्गप्राप्ति, बीस करने से शिवलोक प्राप्ति होगी तथा १०८ करने से भवसागर से वह तर जाएगा। जन्म मृत्यु का मुँह उसे देखना नहीं पड़ेगा।

यह कैसे सम्भव होगा? इस प्रकार की आशंका अर्थात् कुतर्क ही है। इस

CC0. In Public Domain. Kurukshetra Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आशंका का समाधान संध्या के संकल्प में ही है। 'मम उपात्त दुरित-क्षय' द्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं।' संध्या के अन्तर्गत सभी अन्य कर्म तथा गायत्री जप से पापों का क्षय होता है। पापनाश का फल स्वयं भगवान् ने ही कहा है–

'येषां तु अंतगतं पापं जनाना पुण्यकर्मणाम्।
ये द्वंद्व-मोह-निर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः।। (भ. गी.)

पुण्यकर्मों से जिनके पापों का नाश होता है वे सुखदुःखादि सभी द्वंद्वों से तथा मोह से मुक्त हो जाते हैं। तथा दृढ व्रत से मुझे भजते हैं, वे मेरे स्वरूप में ब्रह्म में– एकरूप हो जाते हैं।

'न गायत्र्या समं किंचित् दिवि च इह च पावनम्'

गायत्री के समान पवित्र करनेवाला स्वर्ग में तथा इस लोक में दूसरा कुछभी नहीं है। इसीलिए ही कहा है–

न यथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः।
सावित्रीजपतः पापं यथा निर्दहति द्विजः।। (बृहद्यम)
वेदाः सांगास्तु चत्वारोऽधीताः; सर्वेऽथ वाङ्मयाः।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः।। (यो. याज्ञ.)
गायत्रीमात्र संतुष्टः श्रेयान् विप्रः सुयंत्रितः।
नाऽयंत्रितः त्रिवेदी च सर्वाशी सर्वविक्रयी।। (यो. याज्ञ.)

सवितृशक्ति– सावित्री-गायत्री के जप से जैसा सभी पापों का नाश होता है, वैसा सभी वेदों के पठण से भी नहीं होता। चारों वेद उनके अंगों के साथ सार्थ कण्ठस्थ किए और संपूर्ण वाङ्मय का अध्ययन किया, परन्तु गायत्री का अर्थ समझकर अनुष्ठान नहीं किया तो वेदादिकों का अध्ययन याने व्यर्थ परिश्रम! इसके विपरीत जो विप्र केवल गायत्री के ही अनुष्ठान से संतुष्ट रहकर यमनियमों का पालन करते हुए, शास्त्रशुद्ध आचार-आहारादि से मन, इन्द्रियों, प्राणों तथा देह को अच्छी प्रकार से नियंत्रण में रखता है वह, भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय आदि का विचार भी न करते हुए जीविका चलानेवाले तथा चाहे जिस पदार्थ– निषिद्ध भी– बिक्री करनेवाले तीन वेदों को कण्ठस्थ करनेवालों से बहुत श्रेष्ठ है।

आशंका तथा समाधान– कुछ लोग कहते हैं कि जो लोग समय पर संध्या करते हैं उनमें संध्या का– गायत्री का प्रभाव क्यों दिखाई नहीं देता? इसका अंशतः उत्तर 'सर्वाशी सर्व विक्रयी' इस में है। फिर भी थोड़ा विस्तार करना आवश्यक है। प्रभाव दिखाई न देने के अनेक कारणों में से कुछ देखिए–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१. संध्या तीनों काल में नहीं होती। २. यथाविधि नहीं होती। ३. गायत्री का तथा संध्या के अन्तर्गत अन्य मंत्रों का अर्थ नहीं मालूम रहता। ४. गायत्री का अथवा सूर्यबिम्ब का ध्यान करते हुए जप नहीं किया जाता। ५. आचमन के लिए जैसा चाहिए वैसा जल नहीं मिलता। ६. प्राणायाम का तो केवल नाटक ही किया जाता है। ७. अर्घ्यादि अन्य कर्म भी यथाविधि नहीं होते। ८. पवित्रक बहुधा उपयोग में नहीं लाया जाता। ९. जनेऊ कैसे होते हैं तथा उसके संबंध में कितना आदर होता है आदि पहले ही बताया जा चुका है। १०. न्याय से, सत्य से, नीति से धन संपादित नहीं किया जाता। ११. सत्यभाषण तथा वचन पालन से तो नाता तोड़ दिया गया है। किसी से भी बातचीत करते समय, व्यवहार करते समय, आते-जाते, खुली हथेली में तुलसी माला के मणि फेरे जाते हैं, तब पूछने पर एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण ने जवाब दिया कि, 'स्वामीजी, क्या करें? इस युग में झूठ बोले बिना जीवित रहना भी संभव नहीं है।' तब कवि राम जोशी की पंक्तियाँ याद आने लगीं;

'ती जाळ करामधिं माळ कशाला तुळशीची लांकडें।
आंतुनि बाहेर हरिशिं वाकडे;'

मूल पंक्ति में 'गळ्यामधिं' शब्द है। (अर्थात् कवि राम जोशी कहते हैं कि क्यों हाथ में माला धारण की है, जो केवल सूखी तुलसी की लकड़ियाँ हैं, अन्तर-बाहर में तो हरि के साथ दुष्मनी धारण की है। मूल शब्द 'गळ्यामधिं' है अर्थात् माला हाथ में नहीं गले में धारण की है, यहाँ संप्रदाय की ओर संकेत है।

१२. परनिन्दा तथा परदोष कथन करते हुए अपनी होशियारी तथा बड़प्पन की डींग हाँकने में गौरव अनुभव करते हैं। १३. शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्यपालन नहीं करतें। १४. चाय, कॉफी, बीड़ी-तमाखू आदि अनावश्यक तथा स्वास्थ-संहारक व्यसनों को अपनाया जाता है। इतना ही नहीं बल्कि कुछ बहाने बनाकर उन व्यसनों की आवश्यकता तर्क करते हुए वादविवाद से सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं। १५. अस्तेय (चोरी का अभाव) यह तो अनेक व्यक्तियों से बहुत दूर रह जाता है। खुशी से दी गई रिश्वत भी चोरी ही है। दूसरे की वस्तु (तुलसीपत्र या मुट्ठीभर मिट्टी भी) स्वामी की खुशी से दी गई अनुमति के बिना लेना भी चोरी ही है, ऐसा बिलकुल न करना ही अस्तेय है।

१६. चित्त की एकाग्रता तो क्षण के लिए भी नहीं होती। १७. हिंसा करने में जरा भी नहीं हिचकिचाते हैं। १८. श्रद्धा, भक्ति का अभाव। १९. सुसंगति का अभाव तथा कुसंगति की चाह। २०. असद्ग्रंथों का पठण; २१. कठोर भाषण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदि अनेकों कारण हैं। जो सभी सन्ध्या न करनेवालों में होते हैं ऐसा इसका अर्थ नहीं है। परन्तु इन में से अधिकांश कारण अनेक व्यक्तियों में होतें हैं यह बात सही है। असत्य भाषण, वचनभंग, परनिंदा, परदोषचर्चा (इन में प्रत्येक दोष,) शराब पीना, मांस खाना, आदि से भी अधिक घोर पातक है, यह अनेकों बार सोदाहरण सिद्ध हुआ है। किसी भी सत्कर्म के लिए सत्य, अहिंसादि यम-नियमों का आधार न होगा तो वह सत्कर्म करने पर भी न करने जैसा ही है। कुछ अच्छा फल, मानवता की वृद्धि, चित्तशुद्धि तो प्राप्त होती ही नहीं है, परन्तु 'मैं संध्या करता हूँ' ऐसा अहंकाररूप 'कैंसर' अवश्य बढ़ते जाता है।

इसके विपरीत ऐसा भी देखा गया है कि असत्य, परनिंदा, परदोषचर्चा, आत्मप्रशंसा और अन्याय-अनीति से धनार्जन आदिका समूल त्याग करते हुए, (इन्सानियत) मानवता का व्यवहार करते हुए जो नियम से कम से कम प्रातः सायं-संध्या सविधि, प्रेम से, निष्ठा से करते हैं, उनको गायत्री मंत्र का अर्थ साधारण रूप से मालूम होने पर भी उन्हें संध्या के प्रभाव के अनुभव प्राप्त होते हैं। उनके तेज, आरोग्य, सन्तोष में वृद्धि होती है। 'देहे दुःख ते सौख्य मानीत जावे' समर्थ रामदास कहतें हैं देह दुःख को सुख मानना चाहिए, ऐसी वृत्ति बनने लगती है। मानवता में वृद्धि होती है। वे धीरे धीरे दैवी संपत्ति के अधिकारी बनते हैं।

कुछ अनुभव– इस कलियुग में उपर्युक्त थोड़े से नियमों का पालन करते हुए गायत्री जप करनेवाले बहुत थोड़े हैं। पुणे नगर के एक सज्जन की रक्तचाप की बीमारी (हाय ब्लडप्रेशर) तथा एक का दुःखद ज्वर दूर हुआ। तथा कुछ समय पहले एक व्यक्ति को बुढ़ापा न आने पर भी अचानक दो मिनट में साफ दिखाई देना बन्द हुआ। उन्होंने गायत्री का दस हजार जप किया तथा एक हजार का हवन किया, तब उन्हें बहुत कुछ दीखने लगा था। उनका नाम था अभ्यंकर, वे पहले रेल विभाग में बहुत बड़े अफसर थे। अब वे जीवित नहीं हैं।

भूत-प्रेत-पिशाच तो केवल जनेऊ की ब्रह्मगाँठ दिखाते ही भाग जाते हैं। यह बात सुहृदों से मालूम हो गई थी इसलिए १०/१२ वर्ष की आयु में भी रात्रि में अकेले, अँधेरे में जाने के लिए डर नहीं लगता था। निवास स्थान के निकट ही होनेवाले तालाब में अमावस्या के दिन सैंकड़ों भूत मशाल लेकर नाच रहे घर से दीख रहे थे, वहाँ वे गर्मी में रात को दो बजे, उस तालाब में खुदे हुए झरने का पानी लाने के लिए जाते थे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जिस वर्ष में अकोला नगर में पंचांग-एकता-परिषद आयोजित की गई थी, उसी वर्ष में परिषद समाप्त होने पर मंत्र-परिषद का आयोजन किया गया था। वहाँ देऊळगांवराजा ग्राम के श्रीमान् ग. ना. कुळकर्णी, मंत्र विशारद उपस्थित थे। उन्होंने (ब्रह्मराक्षस) ब्रह्मपिशाच से पीड़ित एक दाढ़ी-जटाधारी विशाल देह के पुरुष पर अपने मंत्र का प्रयोग किया। उस (भूत का) पिशाच का संचार उस पुरुष में हो जाने पर उन्होंने कुछ प्रश्न उससे पूछे, तब वह पिशाच क्रोधित हुआ तथा जटाएँ फैलाकर उन्मत्त होकर डण्ड फटकारते हुए उस मांत्रिक की ओर दौड़ पड़ा। उनके अन्य सभी मंत्र निष्क्रिय सिद्ध हुए, तब मांत्रिक भी थोड़े घबराए परन्तु धीरज रखकर हाथ में पानी लेकर गायत्री मंत्र का उपयोग करने के लिए संकल्प करने लगे, तभी वह पिशाच हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा कि 'कृपया मुझे मत जलाइए। मैं अब इस पुरुष को कभी तकलीफ नहीं दूँगा।' वे मांत्रिक अभी दो वर्ष पहले स्वर्गवासी हुए। वे उत्तम ज्योतिषी भी थे। विद्यमान व्यक्तियों का नामनिर्देश उनकी सम्मति के बिना करना उचित नहीं।

संध्या तथा कर्णपिशाच

कर्णपिशाचविद्या सिद्ध करते हुए, ज्योतिष बताकर धन लूटनेवाले अनेक ज्योतिषी महाराष्ट्र में दिखाई देते हैं। वे वर्तमानक्षण तक सब कुछ बिना गलती के बता सकतें हैं, क्यों कि वह वशीकृत पिशाच उनके कान में आकर धीरे से सबकुछ बता देता है। तथा आगे का भविष्य वे तर्क के आधार पर 'देखना है, कहा जा सकता है' जैसे शब्दों में बताते थे। यदि कोई उस ज्योतिषी को गायत्री-पुरश्चरण करनेवाले व्यक्ति के पास ले जाने लगे तो कोई कारण बताकर जाना टाल देते थे। ये अनुभव तो पुराने हैं, परन्तु अभी पुरश्चरण करनेवाले व्यक्ति से पूछने पर यही अनुभव सुना। सदाचारसम्पन्न संध्यानिष्ठ ब्राह्मण व्यक्तियों को दूर न बैठाते हुए अपने पास १/१॥ हाथ दूरी पर बिठाइए और फिर मजा लूटिए। अधिकांश प्रश्नों के उत्तर गलत दिए जातें हैं, क्योंकि संध्यानिष्ठ आदमी के पास वह पिशाच आ ही नहीं सकता हैं, जलने के भय से दूर ही रहता है। उस समय एक ज्योतिषी कहने लगे, 'अरे भाई, आज क्यों गलत हो रहा है? शायद आज मंगलवार होकर भी कुत्ते को भजिए खिलाना भूल गया!' मंगलवार के दिन कुत्ते को भजिए खिलाना तथा ज्योतिष कहने का क्या संबंध है? परन्तु ऐसा बहाना किए बिना इज्जत बचाना कैसे सम्भव है? तथा ज्योतिष के नाम पर लोगों को लूटना सम्भव नहीं है! यह बात १९३५ ईसवी के पहले की है। कर्णपिशाच मंत्र का और मंगल ग्रह तथा मंगलवार का कुछ संबंध नहीं हैं। इसका अनुष्ठान ९१

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिनों का होता है। चार अनुष्ठान करने पर जिस ब्राह्मण की कुंडली में विशिष्ट ग्रहयोग होगा उसी के वश में वह कर्णपिशाच हो जाता है। अधिक विस्तार करना उचित नहीं है। कुछ लोग पूछेंगे कि द्विजेतरों को गायत्री के अलावा क्या करना चाहिए? इसलिए उस संबंध में अब थोड़ासा मार्गदर्शन करना चाहिए।

द्विजेतरों को क्या करना चाहिए?

द्विजेतरों को मनुष्यता की पूर्णता करनी चाहिए, उन्हें भी जन्म-मरण के चक्र से मुक्त करने के लिए शास्त्र तथा संतों ने अनेक साधन बता रखें हैं। आगे अनेक अध्यायों में उन्हें सूचित किया गया है। सन्ध्या का जो उचित समय कहा गया है, अर्थात् सूर्योदय के पूर्व तीन-चार घटिकाओं में उन्हें नित्य-नियम से नाम-मंत्र का अनुष्ठान, उनके पूर्वांग कर्मों को करते हुए करना चाहिए।

मंत्र– पूर्वसंस्कारों के अनुसार तथा प्रकृतिनुसार पूर्ण अनुकूल अर्थात् ऋषि-तुल्य देवता का तथा वह मंत्र भी यथासम्भव 'सुप्रसिद्ध' जाति का होना चाहिए, तथा वह मंत्र सुयोग्य गुरु के द्वारा मंत्रशास्त्र विधि के अनुसार अनुकूल मुहूर्त पर मिलना चाहिए। परन्तु उन विषयों का मंत्रशास्त्रज्ञान लुप्तप्राय हो गया है। इसलिए गुरु करने में जल्दी नहीं करनी चाहिए। अपनी पात्रता बढ्ढानी चाहिए, उसके बढ़ाने के साधन भी शास्त्र में बताए गए हैं।

पहले तथा बाद में बताए गए नियमों का पालन करते हुए 'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे' इस मंत्र का जप करना चाहिए। इस एक ही मेंत्र को गुरु की अथवा न्यासादि की आवश्यकता नहीं है। तथा जोर से उच्चार करने में कोई आपत्ति नहीं है। कैसे, कहाँ खड़े रहना चाहिए अथवा बैठना चाहिए इस संबंध में गायत्री जप अध्याय में देखिए। जप के समय पालन करने के नियम तथा जपमाला के संबंध में नियम सब के लिए समान ही हैं। जहाँ अपवाद हैं वहाँ वे संबंधित अध्याय में बताए गए हैं। इस मंत्र में १६ शब्द हैं, वे संबोधन हैं। उन में ८ बार हरि को, चार बार श्रीराम प्रभु को तथा चार बार श्रीकृष्ण प्रभु को पुकारा गया है। घर में रहते आग लगने पर अथवा चोर दीवार तोड रहे हैं ऐसा मालूम होने पर मालिक तथा मालकिन जितनी आर्त, तिलमिला कर, जिस भाव से अपने घर के व्यक्तियों को तथा पड़ोसियों को जिस स्वर में पुकारेंगे, उसी भाव से तथा स्वर से इन शब्दों का उच्चार करना चाहिए। इतने हजार जप मुझे करना है ऐसा तय नहीं करना चाहिए, थोड़ा कम हुआ तो भी चलेगा। परन्तु ऊपर बताए अनुसार १० जप से भी जो कार्य होगा, वह जल्दी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जल्दी, भावरहित, अशुद्ध उच्चार करते हुए किए गए हजार-दो हजार जप से भी नहीं होगा।

जप करते समय ध्यान- सूर्यबिम्ब का करना चाहिए। हरिसूर्य = सविता यह अर्थ है ही, तथा सूर्य ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मक है। यह पहले बताया जा चुका है। कामधाम करते समय मधुर स्वर में यह मंत्र मुख से गुनगुनाना चाहिए।

एक नियम ऐसा कीजिए कि स्नान करने के बाद शंकर-शिवलिंग पर पानी डाल कर कम से कम एक बेल का त्रिदल चढ़ाए बिना भोजन नहीं करेंगे। ताजा बिल्वपत्र मिलना कठिन हो तो ढक्कन युक्त नई साफसुथरी डिबिया में न दबाते रखिए जो ८/१० दिन रहते हैं। सूखने पर भी पत्ते झरते नहीं हैं, परन्तु उन्हें धीरे से, झटका न देते डंठल पकड़ कर निकालना चाहिए।

इसका फल— जपध्यान तथा यह पूजा इसका १०/१२ महिनों में यह फल मिलेगा कि तुम्हारे इष्ट देवता ध्यान में अथवा स्वप्न में दिखाई देने लगेंगे, सूर्यबिम्ब न दिखाई देते हुए इष्ट देवता ही दिखाई देंगे। ऐसा बार बार एक ही देवता के दर्शन होने पर यह निश्चय समझिए कि वे ही तुम्हारे इष्ट देवता हैं। उसके बाद यह भी सहजरूप से समझ में आ जाएगा कि मंत्र किस गुरु से लेना चाहिए। वह ध्यान में आने के कई मार्ग हैं, अतः कहाँ तक उनका वर्णन करें? वह उस भोलानाथ की कृपा से मालूम हो जाएगा। वैसी कृपा होने के लिए पूजा भावमय हृदय से होनी चाहिए। भाव कैसे हों यह पूजा का रहस्य इस अध्याय में बताया गया है।

अर्घ्य— जप से पूर्व सम्भव हो तो एक ही अर्घ्य 'श्री सूर्यनारायणाय नमः। इदं अर्घ्य दत्तं न मम।' ऐसा कहते हुए प्रातः संध्या की तरह अर्घ्य प्रदान करें। परन्तु उनमें लाल फूल, तुलसीपत्र अथवा बिल्वपत्र डालकर देना चाहिए। यह सूर्यपूजा के अन्तर्गत अर्घ्य है। इसलिए एक ही पत्र तथा फूल आदि चाहिए।

उपस्थान— सूर्योदय के समय में तथा अस्त के समय में लाल बिम्ब की ओर एकाग्र होकर थोड़ी देर देख कर किसी सूर्यस्तोत्र से स्तुति करनी चाहिए तथा प्रणाम कीजिए।

सामने रास्ता रोक कर खड़े ३/४ पुरुष ऊँचे-पूरे विशाल पिशाच अथवा पिशाचों के समुदाय राम, शिव, दत्त, महावीर (हनुमान) आदि नामों के दीर्घ उच्चार से ही उलटे पाँव भाग खड़े होते हैं।

विवाहित स्त्री तथा कन्या— स्त्रियों को पति की तथा कन्याओं को पिता की खुशी की अनुमति के बिना गुरु नहीं करना चाहिए। स्त्रियों को पति को तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कन्याओं को माता-पिता को भगवान् मानकर उनकी सेवा, अपने सुख की इच्छा दूर रखकर करनी चाहिए। पति की अथवा माता-पिता की रुचि-अरुचि, वही उनकी भी होनी चाहिए। ऊपर दिए गए ३२ अक्षरों के मंत्र का उच्चार, काम-काज करते समय करते रहना चाहिए। रामायणादि भक्तिमार्ग के ग्रंथ तथा भक्त-स्त्रियों की जीवनियों को पढ़कर चिन्तन-मनन करना चाहिए। छोटे बालकों पर प्रेम करते हुए उन्हें प्रेम से तथा दृष्टि के अनुशासन से उन्हें नीतिमान, सदाचारी, सुशील, निरोगी बनाने का कठोर प्रयास करना चाहिए। उन्हें सहज रूप से भक्तिमार्ग की ओर आकर्षित करना चाहिए।

सुशिक्षित स्त्रियों को बाल-संगोपन, छोटे बच्चों की बीमारियाँ तथा उनके लक्षण, महिलाओं की बीमारियाँ तथा उनके लक्षण, गर्भिणी-धर्म, गर्भिणीपति-धर्म आदिका शास्त्रशुद्ध ज्ञान संपादित करना चाहिए। महाविद्यालय तथा अन्य परीक्षाएँ देने की अपेक्षा यह अधिक आवश्यक है। स्त्रियों के तथा बालकों के रोग-प्रतिबंधात्मक तथा रोगनिवारक (डॉक्टर की ओर न जाते हुए घर में ही) उपायों का ज्ञान प्राप्त करना बहुत आवश्यक है। इस संबंध में 'संजीवनी चिकित्सा पद्धति' नामक बड़े ग्रंथ में जो जानकारी दी गई, वह पर्याप्त है।

सदाचारपालन के संबंध में पूर्व अध्याय में तथा यहाँ भी कई बार कहा जा चुका है, अतः अब अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बातों का उल्लेख करना अनिवार्य हो गया है।

सदाचार के कुछ प्रमुख नियम–

सत्य भाषण, वचन पालन–

'प्रेतवत् वर्जनीयो हि नरः सत्य बहिष्कृतः।
नाऽतः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य हि।
यादृशं पुरुषव्याघ्र स्वसत्यस्याऽनुपालनम्।।
अग्निहोत्रं अधीतं च दानाद्याः सकलाः क्रियाः।
भवन्ति तस्य विफलाः वाक्यं यस्याऽनृतं भवेत्।।
सत्यं अत्यन्तं उदितम् धर्मशास्त्रेषु धीमताम्।
तारणाय अनृतं तद्वत् पातनायाऽकृतात्मनाम्।।'

राजा हरिश्चन्द्र की रानी उस कठिन प्रसंग में 'कार्येषु मंत्री' की तरह उन्हें कहती है, 'हे पुरुष श्रेष्ठ! जिसने सत्य का त्याग किया वह पुरुष मृतदेह की तरह (प्रेत की तरह) त्याज्य हो जाता है। तथा सत्यपालन से अधिक श्रेष्ठ ऐसा दूसरा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धर्म नहीं है। जिस पुरुष का वचन असत्य हो जाता है, जो अपने वचन का पालन नहीं करता, उस पुरुष की सभी क्रियाएँ-अग्निहोत्र, वेदादि सभी शास्त्रों तथा विद्याओं का अध्ययन और दान, धर्म-कर्म आदि सभी निष्फल हो जाते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य के तरने के लिए (भवसागर से तरने के लिए) शास्त्रों ने सब से श्रेष्ठ साधन सत्यपालन ही बताया है। उसी प्रकार अनृत (असत्य) यह मूढ़ों के पतन के लिए होता है।

धन द्रव्य-संपादन–

अन्यायोपार्जितेनेह द्रव्येण सुकृतं कृतम्।
न कीर्तिरिहलोके च परलोके न तत्फलम्।।
अद्रोहेणाऽर्जितं द्रव्यं प्रशस्तं धर्मकर्मणि।
द्रोहार्जितेन द्रव्येण यत्करोति शुभं नरः।।
विपरीतं भवेत्तत्तु फलकाले नृपोत्तम।।

अन्याय से धन, वस्त्र, भूमि आदि संपत्ति मिलाकर, उस द्रव्य से यहाँ बहुत सत्कर्म किया तो भी उस पुण्यकर्म से इस लोक में कीर्ति नही मिलती और परलोक में उस पुण्यकर्म से कुछ भी फल नही मिलता । प्राणियों का, जीवों का द्रोह, हिंसादि करते हुए पाया हुआ धन धर्म-कर्म के लिए अत्यंत अयोग्य है! बिलकुल अनुपयुक्त है क्योंकि द्रोह से पाया द्रव्य से किया गया शुभ-पुण्य कर्म, हे नृपोत्तम! बिलकुल विपरीत उलटा ही फल देता है।

सदाचार का फल– सदाचार को ही आचार कहा जाता है। अनाचार याने सदाचार का, शास्त्राचार का अभाव। आचार से, सदाचार से आयु, पुत्र, पर्याप्त अन्न मिल जाता है। तथा आचार से पातकों का नाश होता है। मनुष्यों का कल्याण करनेवाला श्रेष्ठ धर्म याने आचार-पालन। आचार-पालन से इहलोक तथा परलोक में सुख मिलता है। आचारसम्पन्न मनुष्य सदा पवित्र तथा सुखी रहता है। हे नारद! आचारपालन करनेवाला मनुष्य सदा धन्य है, यह सत्य कहता हूँ। आचारहीन मनुष्य का यहाँ अथवा परलोक में भी कल्याण, शुभ नहीं होता। सदाचार का उल्लंघन करते हुए व्यवहार करनेवाले मनुष्य का किया हुआ यज्ञ, दान, तप इत्यादि कर्म उसका सच्चा कल्याण नहीं कर सकते। दैवीसम्पत्ति नहीं प्राप्त करा सकते, आदि वर्णन अनेक स्मृति-पुराणों में मिलता है।

यहाँ आचार = सदाचार : हर किसी के मन में आए अथवा किसी राजनीतिक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संघटना या पार्टी के नेताओं के द्वारा सुनिश्चित किए आचार के नियम याने सदाचार नहीं। (जिसे वर्तमान समय में प्रचलित नाम 'आचार-संहिता' है।)ज्ञानेश्वरादि-तुलसीदासादि पूर्वकाल के सुप्रसिद्ध संतोंके बताए तथा श्रुति-स्मृति-पुराणों में बताए हुए आचरण के नियम याने आचार के नियम।

बृहन्नारदीय पुराण में दिए निम्नलिखित वचन विशेष रूपसे ध्यान में रखिए। अर्थात् 'रामायण, दासबोध, ज्ञानेश्वरी हम पढ़ते हैं, उसी से हमारी सन्ध्या हो जाती है, नामस्मरण करने से हो जाती है सन्ध्या, इतना वैराग्य तथा ज्ञान होने पर भी क्यों संध्या करने बैठते हो!, स्वामीजी! लोक सेवा, देशभक्ति करना याने सन्ध्या ही है! फिर संध्या, देवपूजा, वह वैश्वदेव या फैश्वदेव, जो कुछ कहते हो वह करने में क्या विशेष है', आदि प्रकार के प्रलाप प्रकट करने की इच्छा नहीं होगी!

यः स्वाऽऽचार परिभ्रष्टः सांगवेदान्तगोऽपि वा।
स एव पतितो ज्ञेयः यतः कर्मबहिष्कृतः।। १।।
हरिभक्तिपरो वाऽपि हरिध्यानपरोऽपि वा।
भ्रष्टो यः स्वाऽऽश्रमाचारात् पतितः सोऽभिधीयते।। २।।
वेदो वा हरिभक्तिर्वा भक्तिर्वाऽपि महेश्वरे।
आचारात्पतितं मूढं न पुनाति द्विजोत्तमम्।। ३।।
स्वाऽऽश्रमाचारयुक्तस्य हरिभक्तिर्यदा भवेत्।
न तस्य त्रिषु लोकेषु सदृशोऽस्ति अजनंदन।। ४।।
यः स्वधर्मं परित्यज्य भक्तिमात्रेण तुष्यति।
न तस्य तुष्यते विष्णुः आचारेणैव तुष्यति।। ५।।
तस्मात् कार्या हरेः भक्तिः स्वधर्मस्याऽविरोधिनी।
स्वधर्महीना भक्तिश्चाऽप्यकृतैव प्रकीर्तिता।। ६।।
स्वाऽऽश्रमाचारशून्यश्च पतितः प्रोच्यते बुधैः।
सदाचारपरः विप्रः वर्धते ब्रह्मतेजसा।। ७।

अपने वर्णाश्रमधर्म के आचरण से जो भ्रष्ट हुआ, वह यद्यपि (अर्थ के साथ) साङ्गवेदाध्ययन किया हुआ हो फिर भी पतित (एव च) ही कहलाएगा।। १।। कोई हरिभक्तिपरायण या हरिध्यानपरायण हो और यदि वह अपने वर्णाश्रमाचारों का पालन न करता हो तो वह भी पतित कहलाएगा।। २।। वेद, हरिभक्ति अथवा महेश्वर शिव की (गणेश आदि किसी की) भक्ति आचारहीन आदमी को पावन नहीं कर सकती।। ३।। (परन्तु) जो वर्णधर्म तथा आश्रमधर्म के आचारों का पालन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कर हरि (हरादि) की भक्ति करता हो, उसके समान हे अजनंदन! ब्रह्मदेवपुत्र नारद! त्रिलोक में श्रेष्ठ कोई नहीं है।। ४।। जो स्वधर्मपालन न करते हुए भक्ति करने में ही संतोष मानता है उसपर विष्णु (शंकर आदि कोई भी) प्रसन्न नहीं होते। आचार से ही प्रसन्न होते हैं।। ५।। इसलिए अपने वर्णाश्रमधर्म का लोप न करते हुए हरिभक्ति करनी चाहिए। जो अपने वर्णाश्रमधर्म का पालन नहीं करता, वर्णाश्रमधर्माचारहीन हो गया, उसे ज्ञानी संत, पतित कहते हैं, समझते हैं, गणना करते हैं। जो ब्राह्मण सदा आचारसम्पन्न रहेगा उसका ब्रह्मतेज बढ़ेगा।। ६।।

उपर्युक्त वचनों का पालन महाराष्ट्र के सभी जाति के संतों ने किया। उन में से कुछ उदाहरण देखिए। संत एकनाथमहाराज ब्राह्मणों के छः कर्म (संध्या, पूजा आदि) करते थे। ज्ञानेश्वरजी को उपनयन विधि की अनुमति मिलने पर उन्होंने विवाह के लिए हठ नहीं किया। संतश्रेष्ठ तुकाराममहाराज वैश्य थे, इसलिए उन्होंने वैश्य देह से निलोबामहाराज को मंत्रोपदेश नहीं दिया, क्योंकि निलोबा ब्राह्मण थे! सावता माली ने अपना माली का-खेती का व्यवसाय नहीं छोड़ा। संत सेना नाई ने नाई का धंदा नहीं छोड़ा। इतना ही नहीं तो अपना परम्पराप्राप्त धंदा छोड़कर भक्ति करनेवालों को कड़े शब्दों में फटकारा है। 'भिक्षा पात्र अवलंबणे, जळो जिणे लाजिरवाणे' (तुकाराममहाराज) अर्थात् तुकाराम महाराज कहते हैं कि धिक्कार है ऐसे लज्जास्पद जीवन का, जिसमें भीख माँगनी पड़ती हो।' यह शास्त्रवचनों का सार ही है। गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण को पेट के लिए भीख माँगने का अधिकार नहीं है। उसे तपश्चर्या के लिए सूखी भीख (कच्चे अन्न की) या मधुकरी (पके अन्न की भीख) (कुछ काल के लिए) माँगने में आपत्ति नहीं है। ब्रह्मचारी ब्राह्मणों को कच्चे या पके अन्न की भीख (मधुकरी) लेनी चाहिए तथा परमहंस (एकदण्डी) संन्यासियों को मधुकरी आदि पाँच प्रकारों से पकाए अन्न का सेवन करते जीवनयापन करना चाहिए, अन्य व्यक्तियों को भीख माँगने का अधिकार नहीं है। इसलिए प्रसिद्ध ब्राह्मणेतर संतों ने कभी भीख या मधुकरी नहीं माँगी।

अपने वर्ण के तथा आश्रम के आचारों का पालन करना ही चाहिए। यह ज्ञानेश्वरादि से पूर्व हुए सब संतों ने अपने काव्य में सूचित किया है। 'स्वे स्वे कर्मणि' 'स्वधर्मे निधनं श्रेयः' इन गीता के सूत्रों पर किया गया ज्ञानेश्वरजी का विवेचन ज्ञानेश्वरी में देखिए। ग्रामाचार, कुलाचार, देशाचार आदि जिस प्रकार परम्परा से चलते आ रहे हैं, उनका भी पालन होना चाहिए। कुलधर्म, कुलाचार छोड़ देने से देवता तथा पितरों का क्षोभ होता है। ग्रामाचार छोड़ने से ग्रामदेवता का क्षोभ होता है। तथा देशाचार के विरुद्ध व्यवहार करने से लोकनिंदा को पात्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होता है। लोग उसकी निन्दा करने लगते हैं। और उस निंदा के लिए वह व्यक्ति स्वयं जिम्मेदार होने से वह दोषी बनता है।

एक ही उदाहरण देखिए - दण्डी संन्यासी को भी चमड़े के जूते पहन कर भिक्षा लेने जाना चाहिए आदि तथा काष्ठ पादुका (खड़ाऊ) पहन कर भीख लेने नहीं जाना चाहिए, यदि कोई जाता है तो उसके पैर तोड़ने चाहिए, ऐसा वर्णन यति धर्मनिर्णय नामक हजार पृष्ठ के संस्कृत ग्रंथ के भिक्षा अध्याय में किया गया है। 'कुंडिकोपनिषद में कहा गया है कि संन्यासी को जूतों आदि पादत्राणों का त्याग नहीं करना चाहिए। उत्तर भारत में अनेक संन्यासी बूट आदि चमड़े के पादत्राण पहनते हैं। परन्तु महाराष्ट्र प्रदेश में वैसी परंपरा नहीं है। वैसा आचार नहीं है। इसलिए महाराष्ट्र के संन्यासियों द्वारा चमड़े के जूतों को पहनना देशाचार के विरुद्ध हो जाता है तथा वैसा करना अधर्म, अनाचार माना जाता है। 'यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नो करणीयं नाऽऽचरणीयम्' यह वचन इसी को सूचित करता है कि शास्त्रशुद्ध होने पर, शास्त्राधार होने पर भी लोकविरुद्ध आचरण या लोकविरुद्ध कर्म नहीं करना चाहिए। 'शास्त्रात् रूढिर्बलीयसी' कहा जाता है वह ऐसे ही प्रसंगों के लिए है। और जहाँ शास्त्रवचन में विरोध, मतभिन्नता होगी वहाँ उनमें से जिस मत के प्रति रूढ़ी अनुकूल होगी वही मत स्वीकार करना चाहिए।

इस प्रकार सर्वसाधारण सदाचार का थोड़ा-सा वर्णन किया। आगे शौच, स्नान आदि अनेक कर्मों के आचारों का अर्थात् विधिनिषेधों का वर्णन संबंधित विविध अध्यायों में किया है।

संध्या करने से लाभ-फायदा क्या है यह बताने के बाद संध्या न करने से नुकसान-हानि क्या है यह बताना भी आवश्यक है। अन्वय तथा व्यतिरेक दोनों पद्धतियों से सिद्ध करना अनिवार्य है। इसलिए अगले अध्याय में उस संबंध में थोड़ा वर्णन किया है। 'यथेच्छसि तथा कुरु' ऐसा यद्यपि अर्जुन से कहा गया था फिर भी अन्त में 'न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि' जैसा कहा है, वैसा न किया तो तेरा विनाश होगा' यह बताना ही पड़ा।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ७

त्रिकाल संध्या न करने का फल

'संध्या येन न विज्ञाता संध्या येनाऽनुपासिता।
जीवमानो भवेत् शूद्रो मृतः श्वा चाऽभिजायते।।
(गोभिल, मरीचि, याज्ञ तथा शाकल स्मृति)
मौंजीबंधनं आरभ्य सायं प्रातश्च कालयोः।
मध्याह्नेऽपि च कर्तव्यं यावत्प्राणविमोचनम्।। (व्यासः)
एतत् संध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम्।
यस्य नास्त्याऽऽदरः तत्र न स ब्राह्मण उच्यते।। (छां.परि.)

बृहत्पाराशर स्मृति में तो कहा है कि माध्याह्न सन्ध्या न करनेवाला अंधतामिस्त्र नरक में जाता है। (अ.२।२४।२७) अत्रि, दक्ष, गोभिल, शौनक आदि स्मृति तथा विष्णु, पद्म, अग्नि, तथा दे. भागवत आदि में यही वर्णन किया है।

'आत्मवेत्ता– आत्मज्ञानी होने पर भी द्विज को हर समय संध्या तीन कालों में करनी चाहिए। मरते दम तक हररोज करनी चाहिए। त्रिकाल संध्या करने पर ही ब्राह्मण्य अवलंबित है, रहता है। जिसे त्रिकाल संध्या के संबंध में आदरभाव नहीं है, वह ब्राह्मण नहीं है। (केवल नाममात्र ब्राह्मण!) माध्याह्न काल में भी संधिकाल रहता है यह पहले साधार दिखाया जा चुका है।

और थोड़ा देखिए– आपत्तिकाल न रहते जो धूर्तबुद्धि द्विज संध्या नहीं करता, उसे महापातकियों का राजा गिनना चाहिए। (नारद पु.) जो द्विज सन्ध्योपासना न करते हुए अन्य मंत्रों का जप आदि करते हैं, वह दुर्बुद्धि पंचपक्वानों का भोजन (सामने रखी थाली) लात से ठुकराकर भीख माँगने के लिए भटकने जैसा है। जो संध्या नहीं करते हैं वे तामिस्त्र नरक में जाते हैं। (वसिष्ठ सं.) तीन दिनों तक संध्या न करने पर द्विज पतित हो जाता है।

संध्या-काल प्राप्त होने पर जो ब्राह्मण-द्विज संध्या नहीं करते तथा जिन्हें संध्या का सार्थ ज्ञान नहीं है, वे जीवित रहते हुए भी शूद्र पिशाच के समान तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मरने पर कुत्ते हो जाते हैं। इसीलिए ऐसा दिखाई देता है कि कुछ कुत्तों के गले में सोने का पट्टा, चांदी की माला, बैठने सोने के लिए गद्दी होती है। वे मोटर में घूमते हैं। तो कुछ कुत्तों की पीठपर जलते डण्डे, पत्थर, बरसते हैं। सुना है किसी एक कुत्ते-कुतिया के विवाह में एक रियासत के महाराजा ने लाखों रुपये खर्च किए थे। जिन ब्राह्मणादि द्विजों ने अन्य विविध दानधर्मादि कार्यों में समय दिया परन्तु सन्ध्या नहीं की होगी, इसीलिए उन्हें कुत्ते का जन्म मिलने पर भी ऐश-आराम में रहने के लिए मिल रहा है, आदि बातें कर्मविपाक सिद्धान्त के अनुसार सिद्ध होती हैं।

सन्ध्याहीन विप्र सदा अशुचि (सुतक रखनेवाले से भी अधिक अपवित्र) रहता है। उसे अन्य कोई भी श्रौत-स्मार्त कर्म करने का अधिकार नहीं रहता हैं। जो अन्य कर्म वह करेगा, उसका फल उसे नहीं मिलता हैं। (सुतक काल या अशौचकाल में भी संध्या करनी चाहिए। (गोभिल, दक्ष) जो ब्राह्मण संध्या नहीं करते होंगे उन्हें धार्मिक राजा भले ही शूद्रकर्म करने के लिए विवश करें। (शाकल.इ.) शूद्रकर्म याने नौकरी, सेवक कार्य। आजकल निधर्मी राजसत्ता होने से धर्मशास्त्र भंग करने पर किसी को सजा नहीं दी जाती है, फिर भी कलिकासत्ता ब्राह्मणों को अपने आप उन क़र्मों के लिए (नौकरी के लिए) अधिकारियों के पास बार बार अर्जीरूप प्रार्थनापत्र, रिश्वत, भाईभतीजावाद आदि करने के लिए विवश होना पड़ रहा है।

सार यह है कि आज भी ब्राह्मणों को स्वधर्मतत्पर होना चाहिए। तथा नौकरी के लिए अथवा परीक्षा पास होने के लिए जितने कठोर अथक परिश्रम करते हैं उतने कठोर अथक परिश्रम यदि वे गायत्री के सकाम अनुष्ठान में करेंगे तो जीवन में उन्हें अधिक सुख-सन्तोष प्राप्त होगा।

सन्ध्या न करनेवाले द्विजों को सभी द्विजकर्मों से बहिष्कृत करना चाहिए, परन्तु वर्तमान कानून में सामाजिक बहिष्कार पर रोक है ऐसा कहा जाता है।

संध्या न करनेवालों को सूर्य-हत्या का, गोहत्या का पातक लगता है। हजारों नरकों से बाहर निकलने पर उल्लू का जन्म मिलता है, ऐसा अनेक स्मृतियों में कहा गया है।

गतकाल में संध्या न करने से ब्राह्मण कितना भी पातकी क्यों न हुआ हो तो भी यदि वह पश्चात्तापपूर्वक फिर से सन्ध्योपासना व्यवस्थित करने लग जाएगा तो उसे सभी पापों से मुक्त करने की सामर्थ्य गायत्री में है। (पद्म.पु.)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'अपि चेत् सुदुराचारो भजते मां अनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः।। (भ. गी.)

ऐसा भगवान्ने आश्वासन दिया है।

ब्रह्महत्या, गोहत्या आदि महापातक किए हुए द्विजों को अन्य कर्म करने का अधिकार न हो फिर भी उन्हें सन्ध्या करनी ही चाहिए। सन्ध्यात्याग याने गायत्री का त्याग। जिस गायत्री की उपासना से सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं, उसी का त्याग करने से पाप-नाश का कुछ भी साधन शेष नहीं रहता। इसलिए धर्मशास्त्र ने महापातकियों को भी संध्या का अधिकार दे रखा है।

गायत्री के सकाम प्रयोग नामक अध्याय आगे है।

संध्या करते समय गिलास, लोटा आदि बर्तन लगते हैं, इसलिए उसके संबंध में अगले अध्याय में बताया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain. Muthulakshmi Sharma Nagar, Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ८

संध्या में लगनेवाले पात्र (बर्तन)

आचमनी, पंचपात्र, झारी (लोटा) तथा तामड़ी (छोटी थाली)ये चार ही पात्र लगते हैं। वे सुवर्ण, चाँदी, तांबा इन्ही धातुओं के अथवा मिट्टी के अथवा पीपल, औदुम्बर आदि की लकड़ी के होने चाहिए। पीतल, लोहा, स्टील, जस्त, ॲल्युमिनियम आदि अन्य किसी भी धातु के न हों, उनका व्यवहार नहीं होना चाहिए।

ये चारों पात्र अन्दर-बाहर से एकदम निर्मल साफ होने चाहिए। टूटे-फूटे या फटे न हो। चारों पात्र एक ही धातु के होने चाहिए। एक तांबे का, एक चाँदी का ऐसा न हो।

मिट्टी से बने पात्र पानी पीने अथवा व्यवहार में लाने पर त्याग देने पड़ते हैं।

संध्या से पहले शौच, आचमन-स्नानादि कर्म करने पड़ते हैं, इसलिए इन उपांग अथवा अन्य अंगभूत कर्मों से क्या फायदे होते हैं, वे संबंधित अध्यायों में दिखाकर आवश्यक क्रमानुसार अध्याय प्रस्तुत किए गए हैं।

द्विजेतरों को भी उन में से कई कर्म आवश्यक हैं, अतः उस संबंध में भी कहा है। 'शौच' यह अगला अध्याय है।

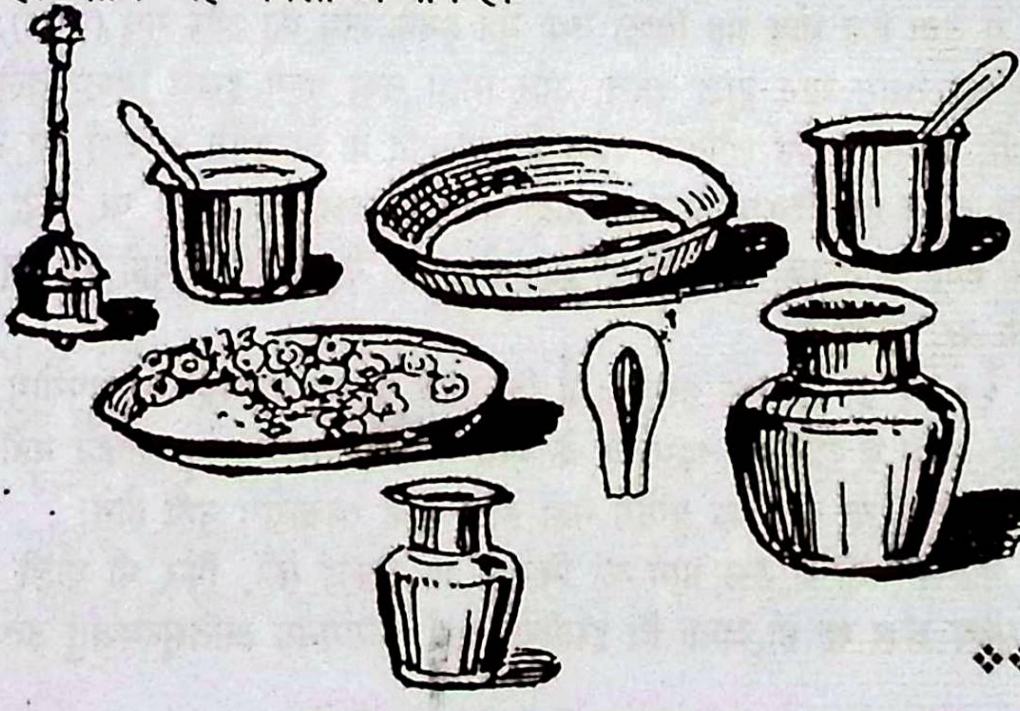

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ९

✤

शौचविधि

शौचे यत्नः सदा कार्यः शौच मूलो द्विजः स्मृतः।
शौचाचारविहीनस्य समस्तं कर्म निष्फलम्।। (ना. पु.)
शौचात् स्वांग-जुगुप्सा परैः असंसर्गश्च। (पा. यो. सू.)

शौच याने शुद्धि, पवित्रता; परन्तु यहाँ मुख्यरूप से मल-मूत्र विसर्जन से प्राप्त होनेवाली शुद्धि ऐसा अर्थ लिया गया है। बद्धकोष्ठ याने शौच साफ न होना, पाखाना न जाना, पेट साफ न होना, अनेक रोगों का मूल कारण है। उससे उत्साह, प्रसन्नता, शक्ति इत्यादि की कमी हो जाती है। शौच के समय मिट्टी तथा पानी का पर्याप्त उपयोग करना चाहिए। यह स्वास्थ्य के लिए बहुत हितकारक है। फोड़े, फुन्सी, खुजली आदि रोग इससे नहीं होते।

शौच के दो प्रकार– शुद्ध शौच तथा लौकिक शौच।

अहं ममेति विण्मूत्रलेप-गन्धादि-मोचनं।
शुद्धशौचं इति ज्ञेयं मृज्जलाभ्यां तु लौकिकम्।। (मैत्रेयि उ. २।८)

मैं तथा मेरा भाव यह विष्ठा तथा मूत्र इनके लेप का और गंध (बास), गैस आदि का त्याग याने शुद्ध शौच; और मिट्टी तथा पानी इससे विष्ठामूत्रलेपगंध इत्यादि का त्याग यह लौकिक शौच है। शौचादि के अन्तर्गत आचारों का अच्छा पालन करते हुए त्रिकाल सन्ध्या श्रद्धा के साथ यथाविधि करने पर शुद्ध शौच साध्य होता है। उसकी प्राप्ति से ही ज्ञान होता है। 'मैं और मेरा' यही बंध, वस्तुतः दुःखों का कारण है।

१९३१ ई. से ऐसा अनुभव है कि शौच के समय मिट्टी का उपयोग करने से पेट-नाभि से लेकर मलद्वारतक के भाग में कभी जरा भी खुजलाहट नहीं होती है, खुजलाने या कंडू का प्रयोग नहीं होता तथा त्वचारोग नहीं होते।

केवल पानी से उस भाग की कितनी भी सफाई करें, फिर भी थोड़ी दुर्गंधि या सूक्ष्म अंश रह ही जाता है। इसलिए वहाँ अनगिनत अतिसूक्ष्मजंतु उत्पन्न हो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जाते हैं। मिट्टी का उपयोग करने से जरा भी लेप या दुर्गंधि नहीं रहती। साबुन का प्रयोग करनेवाले भी पाजामें (पँट) के ऊपर से कई बार खुजलाते दिखलाई दिए हैं।

श्रीगुरुचरित्र ग्रंथ में कहा है कि बहुत अधिक मिट्टी नहीं लगती है, सुपारी इतनी गीली मिट्टी भी काफी होती है। मात्र मिट्टी बिलकुल माखन की तरह मृदु चिकनी तथा शुद्ध, पवित्र होनी चाहिए। काली अथवा सफेद चिकनी मिट्टी, पानी में घोलकर मोटे कपडे से उस मिट्टी का पानी बडे बरतन में छान लेना चाहिए और तब मिट्टी नीचे बैठ जाए तब ऊपर बचा हुआ पानी फेंक देना चाहिए तथा नीचे बची हुई मिट्टी धूप में सुखाइए, तब जैसी चाहिए वैसी मिट्टी तैयार हो जाती है। वह किसी ढक्कनयुक्त डिब्बे में भरकर रखिए तथा शौच को जाते समय थोड़ी मिट्टी हाथ में ले जाइए और वहाँ भिगो कर दो-तीन टिकियां बनाइए तथा उनका उपयोग कीजिए। शौच के समय लोटे में पानी ले जाइए तथा वह लोटा मिट्टी से घिसकर रखें क्योंकि शुद्धता के लिए वह आवश्यक है। खास डिब्बे (टमरेल) का उपयोग उतना लाभदायक नहीं होगा।

मृत्तिकाशौच करने से ब्रह्मचर्य रक्षण में भी सहायता मिलती है। सन्ध्या, ध्यान, जप, पूजा आदि कर्म करते समय उस भाग में खुजलाना नहीं पड़ता है, अपवित्र भाग में हाथ नहीं लगाना पड़ता है, खुजलाहट (कंडू) से उस समय चालू रहनेवाले कार्य में एकाग्रता नहीं आती। मिट्टी का उपयोग करने से खुजलाने की प्रवृत्ति ही कम हो जाती है। तथा एकाग्रता में बाधा नहीं आती ऐसा तीस वर्षों का अनुभव है। जो कोई मिट्टी का उपयोग करेगा उन्हें भी ऐसा ही अनुभव कुछ काल के पश्चात् आएगा, ऐसा विश्वास है। मिट्टी का उपयोग करने से हाथ को गंदगी का स्पर्श भी यथा सम्भव नहीं होता है। अन्य समय में लघुशंका (पेशाब) करने पर एक लोटा केवल पानी का उपयोग शौच के लिए पर्याप्त है, उससे भी ब्रह्मचर्यरक्षण में सहायता मिलती है।

दोनों प्रकार का शौच करते समय, मुँह खुला रखने से, बोलने से, उस गंदगी में रहनेवाले आरोग्यविघातक अदृश्य जंतु आदि मुख में प्रवेश करते हैं। शौच के समय बोलना, थूँकना, जोर से श्वास लेना आदि बातें शास्त्र ने निषिद्ध निश्चित की हैं, उसका हेतु आरोग्य रक्षण ही है।

इसके सिवा वस्त्रशुचित्व, पात्रशुचिता, अन्न-आहार-शुचिता आदि सब प्रकार का शुचित्व पवित्रता-निर्मलता होनी चाहिए। इसीलिए नारदपुराण में कहा है कि शौच पालन का प्रयत्न मनुष्यों को उत्तम प्रकार से करना चाहिए। शौच-शुचिता तो

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

द्विजत्व का मूल आधार है। शौचादि आचार का जो पालन नहीं करते, उनके सभी कार्य निष्फल होते हैं। (बहुत ही अल्प फल दिलाते हैं।)

शौच का पालन पूर्ण रूप से हो रहा है उसका लक्षण यह है कि अपने अंग का-देह का तिरस्कार-घृणाभाव जाग जाता है तथा अन्य किसी को भी स्पर्श न करने की सहज वृत्ति निर्माण होने लगती है। (इस संबंध में वचन अध्याय के प्रारंभ में है।)

उपनयन विधि के बाद सम्भवतः २९ वर्षों तक लघुशंका के समय पानी तथा शौच के समय मिट्टी का उपयोग न करने के अनुभव इसी मन-बुद्धि-धारी ने लेने के कारण उन दो अवस्थाओं के महदंतर पर पूर्ण विश्वास हो गया। यदि वह स्वयं उपर्युक्त कथन के अनुसार व्यवहार करें। उस प्रकार का विश्वास किसी को भी आ सकता है 'केल्याने होत आहे रे' – दासबोध ग्रंथ में रामदासजी कहते हैं, 'करने से सब कुछ होता है।'

शौच साफ न होने से उत्साह, प्रसन्नता नष्ट हो जाती है तथा ध्यान-जपादि कर्मों में सहजता नहीं रहती है, एकाग्रता साध्य करना कठिन हो जाता है। कई आध्यात्मिक ताप विघ्न बन जाते हैं, इसलिए उन अडचनों को कैसे दूर किया जाए यह कहना उपयुक्त होगा।

शौच साफ न होने के कई कारण होने पर भी विरुद्धधर्मी पदार्थ एक ही भोजन में-फलाहार में ग्रहण करना, अच्छा चबाकर न खाना, भोजन करते समय बहुत पानी पीना, पानी कम पीना, व्यायाम का अभाव और भोजन करते समय, खाते समय किताब, समाचारपत्र आदि पढ़ना, आदि प्रमुख कारण हैं। दो समय भोजन करनेवाले मनुष्य को ठण्ड के दिनों में २॥/३ लिटर तथा गर्मी के दिनों में ३॥-५ लिटर पानी पूरे दिन में पीना आवश्यक है। शरीर से बाहर निकाल देने योग्य अनिष्ट पदार्थ, गंदगी (टॉक्झिन्स) आदि बहाकर शरीर के अन्दर की नालियाँ साफ करने के लिए पर्याप्त पानी पेट में न जाने से अन्दर ही अन्दर गंदगी इकट्ठा हो जाती है। यकृत आदि के कार्य में बाधा आती है। अपानवायु कार्यक्षम नहीं रहती तथा उससे बद्धकोष्ठ, दमा, खाँसी, खुजली, फोड़ा, कॅन्सर आदि कई रोग निर्माण हो जाते हैं। केवल काफी पानी दिन में समय-समय पर पीने से अनेक आबालवृद्धों की दमा, खाँसी, बद्धकोष्ठ की बीमारियाँ दूर हो गई हैं।

प्रातःकाल में उषःपान करना चाहिए। भोजन के पूर्व १ घंटा आधा सेर पानी पीना चाहिए। भोजन करते समय या भोजन करने के बाद तुरन्त पानी नहीं पीना

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

चाहिए। बाद में १।-१।। घंटा बीत जाने पर जितनी प्यास लगे उतना थोड़ा थोड़ा पानी पीना चाहिए। इसकी शास्त्रीय उपपत्ति बताने से काफी विस्तार होगा, इसलिए कलम को रोकना पड़ रहा है। ऊपर बताया पथ्यपालन करने पर भी शौच की शिकायत दूर न हुई तो ही नीचे दिया हुआ उपाय करना चाहिए।

पाव तोला त्रिफला चूर्ण एक टिकिया हो सके इतनी घी में घोल कर, तथा घी इतनी ही शक्कर डालकर टिकिया बनाइए। तथा सोने से पहले उसे चबाकर खाइए और बाद में १।। पाव सेर अच्छा गरम पानी पीजिए, उस से कुछ ही (कम या अधिक) दिनों में शौच से संबंधित सभी शिकायतें दूर हो जाएँगी।

ऊपर लिखे अनुसार शौच केवल द्विजों को ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य को प्राप्त करना आवश्यक है। शौच से निवृत्त होने पर हाथ-पैर धोकर तथा कुल्ली करने तक किसी से भाषण करना, बोलना हितकारक नहीं है। शौच के बाद आचमन करना चाहिए। इसलिए आगे के अध्याय में आचमन के संबंध में सोदाहरण विवेचन विस्तार के साथ किया गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १०

आचमन

'अन्तरं स्विद्यते यस्मात् तस्मात् आचमनं स्मृतम्' (मनु.)

आचमन- समुचित प्रमाण में, समुचित पद्धति से, तीन बार थोड़ा थोड़ा जल पीना तथा विशेष अवयवों को जल से स्पर्श करना आदि।

आचमन कब करना चाहिए? नींद से जागने पर, शौच के बाद हाथ-पैर धोकर, कुल्ली करने के बाद, छींक, जम्हाई या डकार देने पर, ठसका, उचकी, थूँकने पर, नाक साफ करने पर, स्नान से पहले या बाद में, भोजन के पहले तथा बाद में, पादने पर, दाँत में अटका उच्छिष्ट मुँह में आने पर, कोई भी धार्मिक कार्य करने से पहले तथा बाद में, (संध्या में अनेक प्रसंग में आचमन है) स्नान के बाद वस्त्र पहनने पर, पतितादिकों के साथ भाषण करने पर, रास्ते से घूम आने पर, दान देते या लेते समय, अश्रुपात, असत्य भाषण, क्रोध, बिल्ली से स्पर्श आदि बातों के घटित होने पर आचमन करना चाहिए।

आचमन से फायदा– उपर्युक्त आचमन के निमित्तों की ओर ध्यान देने से सहज मालूम होगा कि जब जब दशविध प्राणों में से एक या अधिक प्राणों की शक्ति का व्यय होता है, तब तब उस खर्च हुए प्राणशक्ति की पूर्ति के लिए और उन क्रियाओं से इन्द्रियों को तथा इन्द्रियद्वारों को शुष्कता आ जाती है, ऊष्णता बढ़ जाती है, मलिनता आती है, आदि दुष्परिणामों को दूर करते हुए स्वास्थ्य की रक्षा में सहायक होने के लिए शास्त्र द्वारा आचमन करने के लिए कहा गया है।

उदाहरण - (१) चार-पाँच वर्षों के बालक को हिचकी या ठसका लगने से अचानक दम घुटने लगता है तब उसे पानी पीने के लिए कहा जाता है। एक घूँट पानी पीने से यह विकार समाप्त होता है, यह उन्हें परम्परा से मालूम हो गया है। (२) अचानक छींक आते आते रुक जाती है, तब आँख-नाक में पानी आ जाता है तथा पेट में नाभी के पास धक्का लग जाता है, आदि दुष्परिणाम होते हैं यह समझ में आता है। (३) डकार आते समय मुँह आन्तरिक भाग में दुष्परिणाम होता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है, जो समझ में आ जाता है। कई बार अन्ननलिका प्रभावित हुई है यह बात ध्यान में आती है। खाए हुए पदार्थों की दुर्गंधि मुख में फैल जाती है। इस प्रकार कुछ न कुछ बुरा परिणाम अन्य प्राणों का व्यय होते समय कम-अधिक प्रमाण में होते दिखाई देता है।

प्राण-अपान आदि पाँच तथा नाग-कूर्म आदि पाँच प्राण हैं, जो वायुतत्त्व के ही प्रकार हैं। वायु के द्वारा जलतत्त्व का शोषण होता है। वह शुष्कता दूर करते हुए अवयवों तथा इन्द्रियों में आर्द्रता, गीलापन उत्पन्न करना तथा उस क्रिया के कारण संबंधित भाग में उत्पन्न गंदगी, मलिनता, सूक्ष्म जंतु आदि के विसर्जन की गति बढ़ाना तथा इन्द्रियों में उत्साह, ताज़गी लाना–यह आचमन का हेतु है। 'अन्तरं स्विद्यते' इस श्लोक में यही कहा है कि अन्तर याने अन्तर्गत इन्द्रिय आदि और मनबुद्धि आदि, में आर्द्रता आती है इसलिए इसे आचमन कहते हैं। (मनुस्मृति.) दूसरी एक स्मृति में 'स्विद्यते' के स्थान पर 'शुध्यते' ऐसा पाठ है, शुद्धि करना, ऐसा उसका अर्थ है।

पतितों से संभाषण करते समय उनकी साँस से तथा मुख से फैले वायु का परिणाम सामनेवाले मनुष्य पर होता है। बिल्ली पशुओं में सब से अधिक दुष्ट, कृतघ्न, हिंसक, मांसभक्षक प्राणी है। उसकी साँस तथा स्पर्श दोषोत्पादकही होगा!

इन्द्रियदेवता आचमन से प्रसन्न हो जाते हैं। छींक, जम्हाई से मलिनता आदि इन्द्रियों में उत्पन्न हो जाती है, तथा उसके कारण इन्द्रिय देवताओं को भी तकलीफ होती है। आचमन तथा जलस्पर्श से वे दोष दूर हो जाने पर वे प्रसन्न हो जाते हैं। इसीलिए शंखस्मृति आदि ग्रंथों में कहा है कि–

त्रिः प्राश्नीयात् यदम्भः तु प्रीताः तेन अस्य देवताः।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च भवन्तीत्यनुशुश्रुम।।१।।
गंगा च यमुना चैव प्रीयते परिमार्जनात्।
नासत्यदस्रौ (अश्विनीकुमार) प्रीयेते स्पृष्टे नासपुटद्वये।।२।.
स्पृष्टे लोचनयुग्मे तु प्रीयते शशिभास्करौ।
कर्णयुग्मे तथा स्पृष्टे प्रीयेते अनिलाऽनलौ।।३।।
स्कंधयोः स्पर्शनादस्य प्रीयन्ते सर्वदेवताः।
मूर्ध्नस्तु स्पर्शनादस्य प्रीतस्तु पुरुषो (परमात्मा) भवेत्।।४।।

आचमन के लिए उदक- शुद्ध, स्वच्छ, अग्नि से न तपाया हुआ, गरम नहीं है ऐसा, झाग या बुलबुले जिस में नहीं, दृष्टि को भी स्वच्छ दीखनेवाला जल

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होना चाहिए। उस में क्षार, मटमैलापन न हो। (मटमैले पानी से कृत्रिम बर्फ भी अच्छा नही होतौ। तथा उस पानी से किया गया साबुन तो बहुत बिगड़ जाता है। तब फिर उससे शुद्धि कैसे होगी?) जिस जलाशय में दिन में पर्याप्त सूर्यकिरण तथा रात्रि में काफी चन्द्रकिरणें पड़ती हैं ऐसे पानी को सूर्योदय से पहले प्राप्त करना चाहिए तथा उसे मोटे स्वच्छ कपड़े से छान कर लेना चाहिए। ऐसा जल सब को मिलना कठिन है।

निसर्गोपचार पद्धति में केवल आचमन से कुछ असाध्य रोग भी ठीक किए जाते हैं। विश्वास प्राप्ति के लिए डॉ. कुन्हे कृत 'जलचिकित्सा' नामक ग्रंथ देखिए। वह जल उपर्युक्त कथनानुसार ही होना चाहिए।

पश्चिमी व्यक्तियों का मत- १८७० ईसवी के लगभग निरोगी रहने का सब से अधिक सुलभ तथा सरल उपाय खोजने के लिए युरोप के प्रमुख राष्ट्रों ने एक कमिशन नियुक्त किया। वह कमिशन भारत में भी आया था और उस कमिशन ने 'Sipping water and deep breathing' अर्थात् आचमन और दीर्घश्वसन (प्राणायाम का ही सरल प्रकार है।) यह उपाय निश्चित किया। इससे भी आचमन तथा प्राणायाम का महत्त्व समझ में आएगा। ये दोनों क्रियाएँ उस समय केवल हिन्दू धर्म में ही प्रचलित थीं। सन्ध्या में पाँच-छः प्रसंगों में आचमन तथा प्राणायाम करना पड़ता है।

प्राण जलमय है- 'आपोमयाः प्राणाः' (श्रुति) ऊपर बताया जा चुका है कि प्राणशक्ति में हुआ व्यय पूरा करना तथा आरोग्यवृद्धि करना आचमन का हेतु है। प्राणों का अस्तित्व, पोषण आदि आप से याने जल से होता है। यह श्रुतिने ही कहा है। सूर्य ही सभी प्राणियों के प्राण, जीवन है।

'प्राणः प्रजानां उदयति एष सूर्यः' (प्रश्न उप.) जिस जल में सूर्योदय से लेकर काफी किरणें पड़ती हैं, वह सूर्य की प्राणशक्ति से युक्त बन जाता है। चंद्र को सुधाकर, अमृतांशु, सुधांशु कहते हैं, क्योंकि उसकी किरणें अमृतमय होती हैं। (अंशु याने किरण) जिस जल में वे खूब पड़ती हैं, वह जल उस अमृत से परिपूर्ण हो जाता है। परन्तु सूर्य की प्राणशक्ति तथा चंद्र की अमृतशक्ति सूक्ष्मरूप में होती है। गट-गट पानी पीने से वह रस जीभ को तथा मुखान्तर्गत त्वचा को ग्रहण करना सम्भव नहीं होता है। रस ग्रहण करनेवाली तथा जाननेवाली होने से ही जीभ को रसना कहा गया है। उस पर से जल धीरे धीरे रेंगते आगे बढ़ता है तभी उसे उस जल के सूक्ष्म रस ग्रहण करना सम्भव होता है। (हेमगर्भ दवा की मात्रा चटाई जाती है, पिलाई नहीं जाती इसका यही

CC0. In Public Domain. Kulbhushan Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कारण है।) इसी लिए प्रत्येक आचमन के समय कितना पानी लेना है तथा कैसे लेना है इस संबंध में शास्त्र ने नियम बताए है।

आचमन मुद्रा- दाहिने हाथ में अधिक से अधिक पानी अथवा अनाज लेने के लिए हाथ की जैसी आकृति-मुद्रा करते हैं, उसे गोकर्ण मुद्रा कहते हैं। गाय के कान की तरह दाहिनी हथेली बनाकर उस में पानी लेना चाहिए। (प्रवाह में से या आचमनी से पानी लेकर) और करांगुली (सबसे छोटी उंगली) सामने सीधी फैलाकर तथा अंगूठा तर्जनी से जितना दूर करते बने उतना फैलाकर जो आकृति होगी, उसे ही आचमनमुद्रा यह नाम दिया गया है।

जल का प्रमाण- 'माषमज्जनमात्रास्तु संगृहा त्रिः पिबेत् अपः' (भरद्वाज) माश या उरद का दाना डूब सके इतना पानी हाथ पर लीजिए तथा पीजिए, ऐसा तीन बार कीजिए। माश या उरद की दाल का दाना ऐसा कोई अर्थ ले सकता है, इसलिए 'नागदेव' कहते हैं।

'माषमात्रसुवर्णस्य यत्र मज्जति वै मणिः।
एतदाचमनं प्रोक्तं पवित्रं कायशोधनम्।।'

एक (माष) तौल का माशा या मणि अच्छा डूब सके इतना पानी पीना याने आचमन, वह शरीरशुद्धिकारक तथा पवित्र है।

ब्रह्मतीर्थ से आचमन– कलाई के ऊपर तथा हथेली के मूल में दोनों ओर दो उपर उठे हुए भाग है, उनके बीचमें से एक स्पष्ट हस्तरेखा निकल कर उपर की ओर जाती है, वह गड्ढेनुमा भाग ही ब्रह्मतीर्थ कहलाता है। गर्दन सीधी रखकर, आचमनमुद्रा का हाथ मुँह के पास लेते हुए ब्रह्मतीर्थ निचले होंठ को टिकाकर हाथ का पानी धीरे से मुँह में छोड़ना चाहिए। तभी बिलकुल शास्त्रोक्त आचमन होगा। तथा शास्त्रोक्त लाभ बहुत मिलेगा।

गरम पानी से आचमन्- जो सदा गरम पानी ही पीते होंगे अथवा बीमारी के कारण वैद्यों ने ठण्डे पानी से आचमन को भी मना किया होगा तो उन्हें गरम, गुनगुने पानी से आचमन करना चाहिए। परन्तु आचमन अवश्य करें।

आचमन जल के और प्रमाण–

हृद्गाभिः पूयते विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः।
वैश्योऽद्भिः तालुगाभिश्च शूद्रः स्पृष्टाभिः अन्ततः।। (मनु.)

हृदय तक पहुँचे इतने जल से ब्राह्मण पवित्र होता है। कण्ठ तक पहुँचने से क्षत्रिय, तालु तक जाने से वैश्य और स्त्री-शूद्रादि के मुख के अन्तर्गत भाग को

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

स्पर्श हो इतने जल के आचमन से शुद्ध होते हैं।

सिद्धान्त- इससे यह निश्चित होता है कि इसके पूर्व उल्लिखित निमित्त घटित होने पर तथा यथाधिकार धर्मकृत्य करते समय मनुष्यमात्र को आचमन करना चाहिए। पूर्व बताया गया जल का प्रमाण ब्राह्मणों के लिए है। अन्य यथाधिकार ऊपर बताए प्रमाण में जल का उपयोग करें। किसी को इस में संदेह होगा तो उन्हें पहले यह सोचना चाहिए कि उत्तम सन्ध्या का काल ब्राह्मणों के लिए चार घटिका का आवश्यक तथा क्षत्रियों वैश्यों के लिए दो तथा एक घटिका ऐच्छिक क्यों है? अधिक जप से, तप से शरीर में अधिक उष्णता बढती है इसलिए उस पूर्व कथन को ध्यान में रखकर यह अन्तर किया गया है। योगादि तप से जिनका शरीर अत्यन्त शुद्ध हो गया है उन्हें दवाईयाँ तथा इंजेक्शन आदि अन्य लोगों की अपेक्षा १/४ प्रमाण में दी तो भी भयावह दुष्परिणाम होते हैं, इसलिए सर्वज्ञ ऋषियों के वचन के संबंध में सन्देह नहीं रखना चाहिए।

अधिक नियम- हाथ में पवित्रक होना चाहिए। पूर्व अथवा ईशान्य दिशा की ओर मुँह होना चाहिए। पैर आसन पर नहीं, आसन के बाहर भूमि पर रखने चाहिए। दोनों हाथ घुटनों के अन्दर होने चाहिए। पैर लम्बे फैलाने नहीं चाहिए। चोटी की गाँठ लगानी चाहिए। सिर पर वस्त्र नहीं हो। धोती बिन काछे की, दोहरी नहीं हो, गेरू से रँगा वस्त्र बिलकुल न हो। पैर धोकर उन्हें न पोछते हुए आचमन करना चाहिए। वह यदि सम्भव न होगा तो पहले दोनों चरणों पर दर्भ से पानी छिडक कर फिर आचमन करना चाहिए।

वाम तर्जनी का स्पर्श- हाथ पर लिए हुए जल को बाएँ हाथ की तर्जनी से स्पर्श कर, रखकर जल पीना चाहिए। ऐसा बृहत्पाराशर स्मृति का वचन है। अन्य स्मृतिकारों ने यद्यपि केवल वाम हस्त का दाहिने को स्पर्श बताया है फिर भी कलियुग में पाराशर स्मृति ही प्रमुख होने से उसी का वचन मानना चाहिए।

नखों का या नख का स्पर्श- आचमन के जल को नहीं होना चाहिए। नखस्पर्श हुआ जल मदिरा के समान है! यह नियम सभी धर्मकार्यों में व्यवहार में आना चाहिए। पानी, गंध आदि को भी नखस्पर्श न हो। शास्त्र ने यह नियम हेतुपूर्वक ही बताया है, क्योंकि नाखुन कितने भी साफ़ क्यों न हो, उन में थोड़ासा मल रहता ही है और जहाँ मल होगा वहाँ विविध अतिसूक्ष्म जंतु रहेंगे ही। पीने के पानी को अथवा किसी भी पेय पदार्थ को नख-स्पर्श निषिद्ध है वह इसी हेतु से है।

आसन पर बैठकर आचमन करें, जमीनपर नहीं। सूखा वस्त्र पहने। गीला वस्त्र

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पहनकर कोई भी धर्मकर्म भूमि पर नहीं करना चाहिए यह सर्वसाधारण नियम है। जहाँ गीला वस्त्र आवश्यक बताया होगा उसी कर्म में गीला वस्त्र पहनिए। गीले वस्त्र से कर्म करना सामान्यतः आरोग्यविघातक है।

पानी में रहकर आचमनादि कर्म गीले वस्त्र से कीजिए, सूखे वस्त्र से नहीं। पानी घुटनों से कम होने पर आचमनादि पानी में बैठकर करें। घुटनों से ऊपर पानी होने पर आचमनादि खड़े रहकर ही करना चाहिए। 'पादादि जानुपर्यन्तं पृथ्वीमंडलं' (श्रुति)

द्विराचमन- ऊपर बताए अनुसार तीन बार पानी पीना याने आचमन; वैसा दो बार करना याने द्विराचमन। (द्वि = दो बार) प्रथम आचमन के बाद दो बार जल से मुँह साफ करें तथा हाथ धोए, याने हो गया। अन्य जगह जल से स्पर्श करना आदि दूसरे आचमन के बाद करें। सन्ध्या, भोजन, जप, होम, दान देना, दान लेना तथा बलि देना इन कर्मों के आरंभ में द्विराचमन कीजिए। (देवी, नन्दी पुराण तथा अन्य।)

शुद्धाचमन- केशवादि नाममंत्र अथवा कोई भी मंत्र मन में भी न लाते हुए आचमन करना शुद्धाचमन है। मलमूत्र विसर्जन के बाद शुद्धाचमन करना चाहिए।

पानी के अभाव में– ब्राह्मणों को चाहिए कि वे दाहिने कान को दाहिने हाथ की उंगलियों से केवल स्पर्श करें। अन्य लोग विष्णु (उपास्य देवता) का स्मरण, ध्यान करें। अग्नि, आप, सब वेद, चंद्र, सूर्य, वायु तथा अन्य सभी देव, ब्राह्मणों के दाहिने कान में वास करते हैं, इसलिए आपत्काल में दाहिने कान को स्पर्श करने से आचमन करने का श्रेय मिलता है। कोई दाहिने कान, नाक तथा बाये कान को स्पर्श करते हैं, परन्तु वह उचित नहीं है।

सूचना– अन्य स्मृतियों में दिए हुए नामों में 'आप' के स्थान पर 'वरुण' दिया है। कहीं कुछ और अन्तर है, परन्तु उपर्युक्त वचन में सभी देवता होने से उन्हें ही आधार माना है। उससे सभी मतों का संग्रह सहज रूप से हो गया।

जप से पहले आचमन– जिस मंत्र का जप करना हो उस से कोई आचमन करते हैं इसलिए उसे मंत्राचमन कहते हैं। उसी प्रकार गायत्री जप से पहले गायत्री मंत्र से तथा शिरोमंत्र से आदि आचमन कुछ स्मृतियों में बताया है। परन्तु किसी भी पोथी में वैसा नही दिखाई दिया तथा पुस्तकों में भी वैसा उल्लेख नहीं है। इसलिए वह यहाँ विस्तार के साथ न देते हुए केवल निर्देश करना ही ठीक है।

प्रणवपूर्वक गायत्री के तीन पादों से जल पीना, 'आपोहिष्ठा' अथवा तीन मंत्रों के नौ चरण तथा शिरोमंत्र के पद इनसे जलस्पर्श करना, ऐसा एक प्रकार है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूचना– प्रणवपूर्वक केशवादि नामों से आचमन की विधि उत्तरार्ध में दी गई है। द्विजेतरों को चाहिए कि वे प्रणव न करते वैसे ही करें। केशवादि चौबीस नामों का अर्थ तथा उनका क्रम वैसा ही क्यों होता है इसे एक स्वतंत्र अध्याय में स्पष्ट किया गया है।

(इस अध्याय में मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, प्रचेता, बृहत्, पाराशर, भरद्वाज, शंख, व्यास, नागदेव आदि स्मृतियों, षट्त्रिंशन्यत, आन्हिककारिका, विश्वामित्र कल्प, आदि का आधार लिया है। कुछ ग्रंथों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।)

इस अध्याय में शिखा बन्धन का (चोटी में गाँठ मारने का) उल्लेख आया है। इसलिए अब अगले अध्याय में 'शिखाबन्धन तथा मोचन' इस संबंध में लिखना स्वाभाविक ही है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ११

शिखाबन्धन तथा मोचन

स्नाने दाने जपे होमे संध्यायां देवतार्चने।
शिखा ग्रंथिं विना कर्म न कुर्यात् वै कदाचन।।
सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च।
विशिखः व्युपवीतिश्च यत् करोति न तत् कृतम्।। (कात्यायन)

स्नान, दान, जप, होम, संध्या, देवपूजा आदि धर्मकर्म चोटी में गाँठ लगाए बिना नहीं करना चाहिए। जटा होने पर भी चोटी में गाँठ मारनी चाहिए। चोटी में गाँठ लगाए बिना अथवा चोटी के बिना किया गया कर्म न करने जैसा ही है। इसलिए सदा चोटी बँधी होनी चाहिए।

अपवाद

शौचेऽथ शयने संगे भोजने दंतधावने।
शिखामुक्तिं सदा कुर्यात इत्येतत् मनुः अब्रवीत्।।

मलमूत्रत्याग के समय, निद्रा लेते समय, स्त्री-संग करते समय, भोजन तथा दाँत साफ करते समय चोटी खोल देनी चाहिए, ऐसा मनुवचन है। (अन्य सभी कालों में चोटी बंधी होनी चाहिए।) यही सार है।

संन्यासी के अलावा अन्य सभी को चोटी होनी ही चाहिए। कुटीचक, बहूदक तथा हंस इन तीन प्रकार के संन्यासियों को भी शिखा-त्याग नहीं करना चाहिए। जनेऊ भी अवश्य चाहिए। (नारद परिव्राजक उप. ५।१) एकदण्डी परमहंस संन्यासी को छोड़कर सभी को चोटी अवश्य होनी ही चाहिए। अन्य कोई क्रोध से, वैराग्य से अथवा अन्य कारणों से चोटी निकाल दे, बाहर खींचे, तो उसे प्राजापत्य नामक प्रायश्चित्त करना चाहिए तथा चोटी रखनी चाहिए, उसके बिना चारा नहीं है। (हारीत)

आपद्धर्म– बीमारी या अन्य कारणों से चोटी के स्थान पर होनेवाले बाल गिर जाए अथवा गंजापन आ जाए तो चोटी बाँधने के कर्म के समय सात दर्भों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को गाँठ मार कर उन्हें कान पर रखना चाहिए।

समंत्रक चोटी बांधिए– द्विज प्रणवयुक्त गायत्री मंत्र से, 'मा नस्तोके' मंत्र से, अथवा 'ऊर्ध्वकेशि' मंत्र से (पूर्वपरम्परानुसार) चोटी बांधे। द्विजेतर उपास्यदेवता या देवता के नाम के मंत्र से चोटी बाँधे। मंत्र के विना शिखा को बाँध कर धर्मकर्म करने से वह निष्फल हो जाता है। शिखा बाँधने के बाद आचमन करते हुए हृदय, बाहू तथा कंधे बाहुओं तथा कंधों को जल से स्पर्श करना चाहिए।

शिखाग्रंथी के प्रकार– ब्रह्मग्रंथी, शिवग्रंथी तथा विष्णुग्रंथी ये तीन प्रकार हैं। संध्यादि कर्म में ब्रह्मग्रंथी, शैव कर्म में शिवग्रंथी तथा वैष्णव कर्म में विष्णुग्रंथी होनी चाहिए। संध्या, ब्रह्मयज्ञ, वैश्वदेव आदि ब्रह्मकर्म हैं। शिवपूजाभिषेकादि शैव कर्म तथा विष्णु-रामादि पूजा आदि वैष्णव कर्म हैं।

ध्यान में रखिए कि सन्ध्यादि कर्म में शैव-वैष्णवादि वाद को तथा अभिमान को धर्मशास्त्र में कोई स्थान नहीं है। आगे अनेक स्थानों में यही दिखाई देगा। उससे साम्प्रदायिक दुराभिमान, द्वेष आदि उत्पन्न नहीं होते।

विविध ग्रंथी लक्षण– बाई ओर से दाहिनी तरफ मोड कर चोटी का अग्रभाग ऊपर रहे ऐसी जो गाँठ उसे ब्रह्मग्रंथी कहते हैं, यह सुरगाँठ जैसी होती है, जिसे खुली करना सरल होता है। केवल एक गाँठ लगाना शिवग्रंथी या रुद्रग्रंथी होती है तथा दो बार मोडकर लगाई गाँठ विष्णुग्रंथी होती है। मंत्र सन्ध्याप्रयोग में है। दर्भशिखा बाँधते समय उनका ही उच्चारण करे।

शोचनीय सद्यःस्थिती- जहाँ चोटी तथा जनेऊ की रक्षा के लिए लाखों वीर पुरुषों ने बलिदान दिया उस महाराष्ट्र के लोगों को चोटी से अरुचि उत्पन्न हो गई है। ब्राह्मण भी शिखानष्ट हो गए हैं। यह देखकर शिवाजी, तानाजी, बाजी आदि हजारों महाराष्ट्र वीरों को कैसा लग रहा होगा? चोटी कुछ बाधा उत्पन्न करती है ऐसा भी नहीं है। और यदि किसी को अड़चन सी लग रही हो फिर भी शास्त्राज्ञा समझ कर उसे रखना ही चाहिए। क्यों और किसलिए ऐसा पूछना ही अधर्म है। 'शास्त्रं प्रमाणं ते' (भ.गी. १६।२४) शास्त्र समझ कर उसका पालन होना ही चाहिए। श्री ज्ञानेश्वरमहाराज इस श्लोक की आलोचना करते समय ज्ञानेश्वरी में कहते हैं, 'जो जगी समान सकृपु। हिताहितु दाविता दीपु। तो अमान्य केला बापु। वेद जेणे।। एवं परत्र ना स्वर्गु। इहिक ना विषयभोगु। तेथ केउता प्रसंगु। मोक्षाचा तो।। तैसा अशेष पुरुषार्थां। जो गोसावी हो म्हणे पार्था। तेणे श्रुतीस्मृती माथां। बैसो घापे।। शास्त्र म्हणेल सांडावे। ते राज्यही तृण मानावे। जे घेववी ते न मानावे। विषही विरूं।। ऐसी वैदिक निष्ठा। जालेया सुभटा। तरी के आहे अनिष्टा। भेटवि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गा।।' ज्ञानेश्वरमहाराज कहते हैं कि श्रुति-स्मृतिरूप शास्त्र यदि कहते हों कि विष प्राशन करो, तो ऐसा क्यों, यह न पूछते हुए उसे पीना चाहिए। यदि वैसी शास्त्राज्ञा हो तो राज्य का भी त्याग करना चाहिए। ऐसी शास्त्रनिष्ठा होगी तो अनिष्ट कर सके ऐसा क्या है?

ऐसा होते हुए रुचि से ज्ञानेश्वरी पढ़नेवाले ब्राह्मणों में भी सन्ध्या न करनेवाले तथा शिखानष्ट किए बहुत होंगे! ऐसा व्यवहार करना याने उस ज्ञानदेवी का तथा श्रीज्ञानेश्वरजी का क्या स्पष्ट अपमान नहीं है? तुकाराममहाराज, समर्थ रामदास आदि संतों के अनुयायी कहलानेवालों में भी ऐसा अंधेर नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। चूड़ाकरण (चौल) यह एक महत्त्व का संस्कार योग्य समय पर न हुआ तो उपनयन के पहले उसे करना पड़ता है। तभी चूड़ा-शिखा, चोटी रखी जाती है।

पहले कैदी को कैदखाने में रखने के पूर्व उसकी लंबी चोटी काटकर छोटी कर दी जाती थी। पूरी चोटी नहीं काटते थे। हेतु यह कि वह गले में लपेटकर फाँसी न लगा सके। अब सरकार की यह चिन्ता दूर हो गई है, इतना फायदा जरूर हुआ है। चोटी काटने के कारण कैदी कैद से छूटने पर प्रायश्चित्त कर लेते थे।

प्राचीन काल में यवनों, मुसलमानों को 'शिखानष्ट' कहते थे, यह इन कानों से सुना हुआ है। अर्थात् आज बहुत ब्राह्मण भी यवनों की तरह बन गए है। कुछ ब्राह्मणों ने तो जनेऊ का भी बहिष्कार कर दिया है। सुभद्राहरण प्रसंग के समय अर्जुन (त्रिदंडी) हंस संन्यासी बन गया था। सीताहरण के समय रावण त्रिदंडी संन्यासी ही बन गया था। त्रिदंडी संन्यासी के चोटी तथा जनेऊ होता है। इसलिए अभिनय करते समय चोटी तथा जनेऊ का त्याग नहीं करना पडता। एक दंडी संन्यासी बनने पर चोटी-जनेऊ का त्याग करना पडता है तथा बाद में दोनों के त्याग के कारण प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसलिए हरिभक्त अर्जुन तथा हरिद्वेष्टा रावण ने चोटी का त्याग नही किया था। 'संन्यासी के विवाह में चोटी रखने से तैय्यारी'' का प्रारंभ करना पड़ता है, यह लोकोक्ति यही सूचित करती है कि चोटी नहीं होगी तो विवाह नहीं हो सकता। यह लोकोक्ति आज निरर्थक बन गई है। कलियुग में त्रिदण्डी संन्यास वर्ज्य है।

शास्त्राज्ञा भंग करने की आदत एक बार लग जाए तो दण्ड अभी या मृत्यु के पश्चात् भोगना ही पड़ेगा, फिर भी आदत हो जाने से कानून तोड़ना, अनुशासन भंग आदि की बीमारी फैलने लगती है। और राष्ट्र में, समाज में किसी को भी स्वास्थ्य या संतोष नही मिलता। पिता तथा बड़ों की आज्ञा तोड़ने तथा अपमान करने की, जिनको 'गुरूजी' कहा जाता है, उन पाठशाला के शिक्षकों की निंदा या उपहास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करने आदि की कई मानवत्वविघातक आदतें निर्माण होने लगती है।

चोटी रखना तथा गाँठ बाँधना इनसे भी कौनसे फायदे होते हैं उन्हें बताया जा सकता है। और ग्रंथविस्तार का भय रहने पर भी थोड़ा विवरण करना जरूरी है। मनुष्य के मस्तिष्क में स्थित खोपड़ी तीन हड्डियों से बनती है। इन तीन हड्डियों के अगले छोर का जोड़ मध्य मगज, मध्य भाग के बिलकुल ऊपर होता है। परन्तु नवजात बालक के उस स्थानपर सीप इतना गड्ढा होता है; (जिसे तालू कहते हैं) क्योंकि उन हड्डियों के सिरों का जोड़ अभी जुड़ा नहीं होता है; वह आगे २।३ वर्षों में पूरा जुड़ जाता है। मगज का पूरा विकास, उस गड्ढे का भरना तथा बालक का अच्छी तरह से चलने लगना, ये दोनो बातें बहुधा समकाल में ही होती है। प्रथम बार बाल निकालने / मुंडन के समय (पहले वर्ष में ही) उस गड्ढे पर तथा उसके आसपास चोटी रखते हैं। तालू अच्छी भर जाने पर चोटी पीछे ढकेलने की विधि को चूडाकर्म (चौल) कहते हैं, वही धार्मिक विधि तीसरे वर्ष में करनी चाहिए।

चोटी जहाँ रखी जाती है वह जगह गाय के खुर जितना थोड़ा भाग गड्ढेनुमा होता है। उसके बीच में दवाकर देखे तो पता चलता है कि वह भाग सिर के अन्य भाग से काफी मृदु होता है, होना चाहिए। यह स्थिति आयु के साथ नहीं बदलती। उस मृदु भाग के संरक्षण के लिए, उस गड्ढे पर छा जाए इतनी चोटी रखना, मन के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। उस चोटी के नीचे ही मन का संचालन करनेवाला भेजे (मगज) का भाग होता है। चोटी के चारों ओर बालों का घेरा इसीलिए रखा जाता है बाल निकालते समय चोटी के बाल काटे न जाए जिससे वह चोटी पतली न हो।

आशंका- आजकल चोटी के स्थान पर बाल रखने की पद्धति अपने आप शुरू हो गई है, तब फिर चोटी की क्या आवश्यकता है? उन बालों को गाँठ लगाना सम्भव नहीं है इसलिए चोटी आवश्यक है। सिर पर सभी बाल गाँठ बाँधने योग्य लम्बे हो तो अलग चोटी की जरुरत नहीं है। फिर भी उस स्थान के बालों को गाँठ लगाना तथा कभी उन्हें खुला रखना जरूरी है। केवल चोटी रखने से मन का संरक्षण नहीं होता बल्कि गाँठ लगाना तथा खुली रखना, इन क्रियाओं से लाभ होता है।

गाँठ लगाना तथा छोड़ने का क्या हेतु है? गाँठ लगाने तथा छोड़ने के संबंध में विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि–

'आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषां अधिको विशेषः धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस सुभाषित में कहे के अनुसार पशुस्वभाव के कर्म करते समय (आहार, निद्रा, मलमूत्रविसर्जन आदि) चोटी खुली होनी चाहिए तथा धर्मकर्म करते समय उसे गाँठ लगानी चाहिए।

इसका कारण इतना ही है कि पशुस्वभाव सुलभ कर्म रजोगुण एवं तमोगुणयुक्त होते हैं। मन तथा मस्तिष्क पर होनेवाले उन कर्मों के अतिसूक्ष्म अदृश्य कुसंस्कार, दुष्परिणाम चोटी खुली रहने से उन बालों में से बाहर निकल सकते हैं। मनुष्यत्व की पूर्णता करने में सहायक धर्मकर्म के संस्कार मन तथा मस्तिष्क पर सुपरिणाम करें, बाहर न निकल जाए, कम से कम जाए, इसलिए बालों में गाँठ लगानी चाहिए। जटा रहने पर भी चोटी के बालों में गाँठ लगाना तथा छोड़ना समय-समय पर आवश्यक है। यह पहले ही कहा जा चुका है। चोटी पेन्सिल इतनी बारीक होने पर भी इष्ट हेतु सिद्ध नहीं होगा, क्योंकि संपूर्ण भाग पर वह फैली नहीं होती है। छोटा बालक प्रति घंटे में कितना ऊँचा या मोटा हुआ है यह आँखों को या अन्य इन्द्रियों को मालूम नहीं होता। परन्तु ४।६ महिनों के बाद परिणाम दिखाई देता है। मन पर होनेवाले परिणाम तो अधिक सूक्ष्म होते हैं, इन्द्रियों को उनके परिणाम को नापना कभी भी सम्भव नहीं होगा। वह तो केवल अतीन्द्रियशक्तिसंपन्न को ही दिखाई दे सकता है।

लेडबीटर जैसे अतीन्द्रिय द्रष्टाओं द्वारा प्रयोग करने पर उपर्युक्त सिद्धान्त उनके अनुभव में आए बिना नहीं रहेंगे। तथा वे परधर्मी लोग भी चोटी रखना प्रारंभ कर देंगे। ऐसा उदाहरण से प्रतीत होता है। कनछेदन (कर्णवेध) संस्कार की पद्धति अब इंग्लैंड में भी शुरू हो गई है। हिंदुओं में बालक के कान में छिद्र करने (कनछेदन संस्कार) का संस्कार जिसे कर्णवेध कहते हैं, वह नामकरण विधि (बालक को नाम प्रदान करना) के साथ किया जाता है, क्योंकि वह विधि बालक के जन्म के बाद बारहवें दिन किया जाता है। इसे देखकर अंग्रेजों ने भी इस संबंध में प्रयोग प्रारम्भ किए, तब उन्हें दिखाई दिया कि कान में विशेष स्थान पर छिद्र करने से कुछ बीमारियों की उत्पत्ति होना ही असम्भव हो जाता है। इसलिए कुछ वर्षों से यह प्रथा उन में भी धीरे-धीरे शुरू हो गई है। परन्तु बहुधा बड़े आदमियों के ही कान में छिद्र किया जाता है। यह छिन्द्र बनाने का काम बहुधा स्त्रियाँ ही करती हैं, जैसे हमारे यहाँ यह काम सुनार द्वारा किया जाता है। कान में छिद्र करने का शुल्क वहाँ ५।१० पौंड लिया जाता है।

अगले अध्याय में स्नान तथा तीर्थों के संबंध में विवरण किया गया है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १२

स्नान (अभ्यंग) तथा तीर्थ

स्नानमूलः क्रियाः सर्वाः श्रुति-स्मृत्युदिता नृणाम्।
तस्मात् स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्धनम्।। (यो. याज्ञः)
नित्य-स्नानं च यः कुर्यात् स नरः पुरुषोत्तमः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः नाकलोके महीयते।। (पद्म. पु.)

स्नान– पानी से करना यह नित्यकर्म है; इसलिए सभी स्त्री-पुरुषों को कम से कम प्रातः स्नान तो अवश्य करना चाहिए।

अस्नातस्य क्रियाः सर्वाः भवन्ति निष्फलाः यतः।
प्रातः समाचरेत् स्नानं तत् च नित्यम् उपस्थितम्।। (नागदेव याज्ञ.)

स्नान के बिना संध्या, जप, पूजा, होम आदि कर्म करने का अधिकार नहीं है। इसलिए प्रातःस्नान यह नित्यकर्म है। स्नान के बिना किया गया कर्म निष्फल है।

प्रातःस्नान का समय- उषःकाल में अर्थात् सूर्योदय से पूर्व पाँच घटिका (दो घंटे) स्नान करने को प्रातःस्नान या उषःस्नान कहते हैं। उषःकाल में किया जानेवाला स्नान, इसलिए उषःस्नान। तथा प्रातःकाल के कर्म करने के लिए है इसलिए यह प्रातःस्नान है।

स्नान के प्रकार- नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य ऐसे प्रमुख तीन प्रकार हैं। उन में उषःकाल में नित्यस्नान करना सबसे अधिक श्रेष्ठ है। उषःकाल का स्नान प्राजापत्यतुल्य है तथा महापातकों का नाश करनेवाला है। (बृ. पारा.) उषःकाल के दृष्ट तथा अदृष्ट (प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष) लाभ होते हैं। तथा वह पुण्यकारक है, इसलिए पूर्वज, सज्जन एवं मुनि भी उसकी प्रशंसा करते हैं। (बृ. पारा.)

स्नान के लिए जल– भगवान् द्वारा निर्मित तालाब, कुंड तथा नदियाँ आदि में स्नान उत्तम है। यदि यह सम्भव न हो तो कुआँ, वापि आदि का स्वयं निकाला हुआ अथवा स्ववर्ण के व्यक्ति द्वारा निकाला गया मध्यम तथा गरम पानी का कनिष्ठ स्नान है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निषिद्ध जल– घास, सूखे पत्तों से भरा, मलिन, मटमैला, अस्वच्छ, विषैली वनस्पतियुक्त, फल या अन्य विषैले पदार्थ से युक्त जल का उपयोग न करें। उस में तथा उसके द्वारा किए गए स्नान से अन्तर्बाह्य रोग बहुत थोड़ समय में हो जाते हैं। द्विजेतरों के द्वारा निकाले गए अथवा लाए गए जल से द्विजों को स्नान नहीं करना चाहिए। इस से यह समझ में आ जाएगा कि अन्य लोगों को क्या करना चाहिए। पात्र में जमा किए वर्षा के पानी से स्नान, आचमन, पान (पीना), पूजा, तर्पण आदि नहीं करना चाहिए। (वाचस्पति) अंत्यजों के द्वारा खोदे गए कुएँ, तालाब आदि का पानी धर्मकार्य, स्नान-पान आदि में उपयोग में लाने पर पंचगव्य से शुद्धि होती है। (यम.) आपत्काल में इससे दोष नहीं लगता है। ऐसा वृद्धशातातप का वचन है। आपत्काल में पंचगव्य प्राशन न करें।

उष्णोदकस्नान– ठण्डे पानी से स्नान जिन्हें असह्य होता है, उन्हें गरम पानी से स्नान करना चाहिए, परन्तु उषःकाल न चूकने दें। (गार्ग्य)

उष्णोदक स्नान निषेध- बारह संक्रांति, रविवार, सप्तमी, दूसरों के प्रतिनिधि के रूप में किया जानेवाला स्नान, श्राद्धदिन में, उपवास के दिन, अशौच में तथा जन्मदिन पर आदि प्रसंगों के निमित्त किया जानेवाला स्नान गरम-ऊष्ण पानी से नहीं करना चाहिए, ठण्डे पानी से ही करना चाहिए। उसी प्रकार अस्पृश्य व्यक्ति के अथवा मद्य-मांसादि के स्पर्श के कारण किए जानेवाले स्नान के लिए गरम-उष्ण पानी का प्रयोग न करें। (वृद्ध, मनु; शि. पु.) ग्रहण, अर्धोदयपर्व, गजच्छायापर्व, आदि के निमित्त किया जानेवाला स्नान, सभी को ठण्डे पानी से करना चाहिए। काम्य स्नान भी शीतोदक से ही करना आवश्यक है।

कितनी बार स्नान? गृहस्थ ब्राह्मणों को उषःकाल तथा सूर्यास्त के पूर्व संध्याकाल में ऐसा दो बार स्नान करना चाहिए। परन्तु सायं स्नान न करने पर उसे प्रायश्चित्त नहीं लेना पड़ता। ब्रह्मचारियों, वानप्रस्थों, संन्यासियो और तपस्वियों को त्रिकाल स्नान करना चाहिए। ऐसा क्यों यह निम्नलिखित अनुभव से मालूम हो जाएगा।

अनुभव– वेदपठण से, अधिक तप, अधिक प्राणायाम आदि साधनों से, योगाभ्यास से, उपवास, चान्द्रायण, पंचाग्निसाधन आदि तप से, साधना के साथ शरीर में उष्णता बढ़ जाती है तथा गरम पानी से स्नान सहा नहीं जाता है; आगे बढ़कर तो केवल एक बार ठण्डे पानी से स्नान पर्याप्त नहीं होता तथा सिरदर्द, लाल पेशाब होना अथवा जलन होना आदि विकार शुरू होते हैं। तथा शाम को ठण्डे पानी से स्नान शुरू करने पर वे विकार दवा के बिना समाप्त हो जाते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ये अनुभव १९३०-३२ ईसवी कालखण्ड के हैं।

सायंकाल का विशेष अनुभव– नदियों, तालाब का पानी दिनभर सूर्य किरणों से तपकर सूर्यास्त के पहले अच्छा कुनकुना (गरम) हो जाता है। उस में डुबकी लगाकर स्नान करने से दिन में आई हुई थकावट तुरन्त दूर हो जाती है। तथा खूब उत्साह बढ़ता है। गर्मी के दिनों में ऐसा स्नान याने गर्मी से होनेवाले दुष्परिणामों पर अमृत ही है। यह स्वानुभव १९४०-५२ ईसवी का बारह वर्षों का है।

आकण्ठ (गले से नीचे) स्नान– कुमारी, सौभाग्यवती (विवाहित) स्त्रियाँ, जटाधारी पुरुष, रोगी इन्हें सशिरस्क (सिर पर से) स्नान करने की आवश्यकता नहीं है। न करे ऐसा भी नहीं है। इसे अपवाद- ग्रहण, संक्रांति पर्व आदि के निमित्त किया जानेवाला स्नान, गंगादि महानदी के जल में स्नान, तीर्थस्नान आदि सिर पर से ही करना चाहिए। अनुभव- दक्षिण के मैसूर-मद्रास निवासी महिलाएँ (मुंबई में रहनेवाली भी) गोदावरी के किनारे आने पर पहले सिर पर से स्नान करती हैं, ऐसा कई महिनों तक देखने में आया।

ध्यान में रखिए– जलाशय में स्नान करना हो तो जहाँ महिलाएँ होंगी अथवा नीचों के निकट गंदी जगह में स्नान न करें।

स्नान में दिशा– जलप्रवाह में स्नान करते समय प्रवाह जिस दिशा से आ रहा हो उस दिशा की ओर मुँह करें। तालाब आदि में सूर्य की ओर मुँह करें। सूर्योदय से पहले पूर्वदिशा की ओर मुँह करें। सूर्यास्त के बाद नित्यस्नान न करें। घर में अथवा घर के बाहर स्नान करते समय घर की ओर मुँह करें। घर में सुबह पूर्व की ओर तथा सायं में पश्चिम की ओर मुँह करें।

घर में स्नान करते समय विशेष- मार्जन तर्पणादि तथा बीच में आचमन न करें। प्रातःस्नान के समय, स्नान करते समय दाँत को माँजना नहीं चाहिए। लकड़ी के आसन पर अथवा पाषाणासन पर बैठकर हाथपैर धोकर, तीन बार कुल्ली कर के, बाद में देशकालादि का उच्चार करते हुए स्नान का संकल्प करना चाहिए। जलाशय में स्नान से पहले संकल्प करना चाहिए।

संकल्प– मम आत्मनः श्रुतिस्मृति पुराणोक्त फल-प्राप्त्यर्थं मम इह जन्मनि कायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिक- ज्ञाताऽज्ञात- स्पर्शाऽस्पर्शाऽऽसन-भोजन-शयनादि कर्मसु कृतानां दोषाणां निरसनद्वारा त्रिविधतापोपशमनार्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं शीतोदकेन (उष्णोदकेन) (अमुकतीर्थे तडागादि तटे वा) गृहे प्रातःस्नानं (मध्याह्न स्नानं, सायंस्नानं) अहं करिष्ये।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीर्थ प्रार्थना–

आपो नारायणोद्भूतास्ता एवास्याऽयनं पुनः।
तस्मात् नारायणं देवं स्नानकाले स्मराम्यहम्।।
त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता।
याचितं देहि मे तीर्थं तीर्थराज नमोऽस्तुते।।
नमामि गंगे तव पाद पंकजं सुरासुरैर्वन्दित-दिव्यरूपम्।
भुक्तिंच मुक्तिंच ददासि नित्यं भावानुसारेण सदा नराणाम्।।
पुष्कराद्यानि तीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम।।
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिंधो कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु।।

('सिंधु कावेरी' ऐसा कहा जाता है वह गलत है।)

नदी-तालाब में स्नान करने के बाद शरीर पर रहे पानी को हाथ से या कपड़े से भी नही पोछना चाहिए। वैसा करने से देवता अप्रसन्न हो जाते हैं। स्नान के समय गीले हुए वस्त्र को पैर की ओर से न छोड़ते हुए पेट की ओर से छोड़ना चाहिए। तथा उसे नीचे या पात्र में डालना चाहिए। पैर की ओर से छोड़ा जाने पर फिर से स्नान करें। (प्रयो. पा.)

आपत्काल में स्नान– स्नान करना असम्भव हो तो गीले वस्त्र से शरीर पोंछना चाहिए, वह गरम पानी में गीला किया जा सकता है। टाइफाईड जैसी बीमारी में भी डॉक्टर गीले वस्त्र से शरीर पोछने की सूचना देते हैं। (उसे स्पन्जिग कहते हैं।) अथवा भस्मस्नान या मानसस्नान करना चाहिए। शरीर को भस्मधारणाविधि के अनुसार भस्म लगाना, भस्मस्नान तथा विष्णु, राम, शिव आदि अपनी उपास्यदेवता का ध्यान करना, वह है मानसस्नान। अन्य कई गौण स्नान हैं, परन्तु उन्हें यहाँ बताने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है।

स्नानाभाव में प्रायश्चित्त– नित्यस्नान न करते हुए भोजन किया तो एक दिन निर्जल उपवास करना चाहिए। संक्रांति-ग्रहण आदि पर्वकाल में किया जानेवाला स्नान न करते हुए भोजन, जलपान आदि करने पर आठ हजार गायत्री जप द्विजों को करना चाहिए। कौआ, कुत्ता, चांडाल, रजस्वला आदि का स्पर्श हो जाने पर स्नान न करते हुए भोजन किया गया तो त्रिरात्रव्रत करना चाहिए। (ध.सिं.)

धोखे की सूचना- बहुत गरम पानी से स्नान करना, और बहुत अधिक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पानी लेना स्वास्थ्य के लिए हितावह नहीं है। उससे रक्तवाहिनी का रक्त बहुत तप जाता है। अशुद्ध रक्तवाहिनी का रक्त उष्णता से बहुत जोर से उत्तेजित होकर रक्ताशय (हार्ट) अशक्त दुर्बल होता है। बड़ी बीमारी में से ठीक हुए व्यक्ति को जो (रोगमुक्ति) स्नान कराया जाता है वह कुनकुने पानी से ही होना चाहिए, अन्यथा हृदयक्रिया बंद होकर स्नान करते समय ही मृत्यु आने के कई उदाहरण देखे गए हैं। नवप्रसूता महिला को उसका शरीर अच्छा सेंकने की दृष्टि से या भ्रम से बहुत गरम पानी से नहलाया जाता है, उसका भी बुरा असर होता है। चक्कर आना, सिर दुखना आदि शुरू होता है। अति गरम पानी से शुद्ध रक्तवाहिनी का रक्त बहुत गरम होता है, और निष्कारण बहुत पसीना आ कर थकावट आती हैं। बर्फ जैसे ठण्डे पानी में स्नान करना भी आरोग्यविघातक है। 'अति सर्वत्र वर्जयेत्'।

प्रातःस्नान से फायदे- उषःकाल में नित्य नियम से स्नान करने से उत्साह, प्रसन्नता, शक्ति, कीर्ति, कांति, शरीरपुष्टि, सौभाग्य तथा आयु की वृद्धि होती है। (पारा. स्मृ.) दुःख, शोक, थकावट, ग्लानि, क्रोध तथा दुःस्वप्न का नाश होता है। आल्हाद तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है। तप, मेधा, सुख, निरोगिता, ओजस्विता की प्राप्ति होती है। तथा अतिलोभ की प्रवृत्ति नष्ट होती है। (पारा. स्मृ.) क्षुद्रपातक, प्रतिग्रहदोष का नाश संकल्पादि विधिपूर्वक नियम से स्नान करने से होता है। (स्नान याने उषःकाल में किया जानेवाला स्नान, यह नहीं भूलना चाहिए।) तीर्थादि तथा नद्यादि जलाशयों में स्नान करते समय भस्म, गोमय, मृत्तिकास्नान, तिलतर्पण आदि कई विधि हैं। श्रीगुरूचरित्र ग्रंथ (अ. ३६।१७८) यहाँ से आगे देखिए। उन पंक्तियों में अग्निस्नान, भस्मस्नान, ऐसा जो पाठ है, वह गलत है। क्योंकि अग्निस्नान ही भस्मस्नान है। वहाँ 'अग्निस्नान, भौमस्नान' ऐसा पाठ चाहिए। यह स्पष्टीकरण याज्ञवल्क्य वचन देखने से सहज मालूम हो जाएगा। (कामत प्रति) प्रकरण के आरंभ में जो पद्मपुराण का श्लोक दिया है उसमें निर्देशित फल भस्मगोमयमृत्तिकादि स्नान के साथ जो विस्तारित विधि है, उसके अनुसार स्नान नित्य नियम से करने पर मिलता है।

अभ्यंग स्नान- शरीर तथा सिर को तेल आदि लगाकर स्नान किया जाता है, वह है अभ्यंगस्नान। स्नान होने पर सिर अथवा अंग का तेल या तेल-घी जैसे स्निग्ध पदार्थ बीमारी न होते हुए लगाना आरोग्यादिविनाशक तथा मलीनतोत्पादक है। अभ्यंगस्नान गरम पानी से करें, ठण्डे पानी से न करें तथा अभ्यंग स्नान होने पर गोपीचंदन और भस्म न लगाए। कुंकुम, केशर आदि का तिलक लगाए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ब्रह्मचारी, तपस्वी, गृहस्थ, तथा वानप्रस्थ को मस्तक पर स्थित बालों को-जटाओं को तेल आदि लगाना तथा कंघी करना अधर्म है।

अभ्यंग निषेधादि–

रवौ तापं तथा कुर्यात् सोमे कान्तिं लभेत् नरः।
भौमे मृत्युर्लभेताऽथ बुधे लक्ष्मीं लभेत् नरः।।१।।
गुरौ दरिद्रतां चैव शुक्रे चाऽप्यसुखं भवेत्।
सुखं शनैश्वरे चैव वारादि फलमुत्तमम्।।२।।

रवि, मंगल, गुरू तथा शुक्र वार को अभ्यंगस्नान न करें। करने पर बुखार, मृत्यु (मृत्युकारक रोग) तथा दारिद्र्य प्राप्त होता है। सोमवार को कान्तिलाभ, बुधवार को लक्ष्मीवृद्धि तथा शनिवार को अभ्यंगस्नान करने से सुखप्राप्ति होती है।

निषिद्ध वार को अभ्यंग- स्नान करना हो तो रविवार को तेल में आँक के पत्ते डालकर, गुरुवार को दूर्वा, मंगलवार को लाल मिट्टी तथा शुक्रवार को पानी की कुछ बूँदें तेल में मिलाकर बाद में उन्हें शरीर को लगाएँ।

प्रतिदिन अभ्यंगस्नान करना हो तो सुगंधी तेल लगाने में कोई आपत्ति नहीं है।

अपवाद– श्राद्ध दिन में, ग्रहण स्नान के समय में, उपवास के दिन में तथा प्रतिपदा के दिन सुगंधी तेल से अभ्यंग स्नान न करें। तथापि ग्रहण के अलावा अन्य किसी दिन शिरस या सरसों का तेल लगाकर अभ्यंग स्नान करने में कोई हर्ज नहीं है। (शिव पु.) सरसों का तेल ऊष्ण तथा वातहारी है यह न भूलें। यह वर्णन ऐच्छिक अभ्यंग के संबंधमें है।

शास्त्र ने जिस जिस दिन अभ्यंगस्नान को विशेष रूप से करने के लिए कहा हो उस दिन उपर्युक्त निषेध लागू नहीं होते। उदाहरणस्वरूप दिवाली में तीन दिन अभ्यंग स्नान के होते हैं, उस में प्रतिपदा भी है, अतः उस प्रतिपदा को अभ्यंगस्नान करें। शास्त्रविहित अभ्यंग के समय में प्रतिकूल वार हो तो भी सुगंधी तेल लगाएँ।

दिशा– अभ्यंग स्नान उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुँह करके करें। नित्य, नैमित्तिक, काम्य स्नान में जलमय तीर्थों का विशेष महत्त्व है। यह सत्य होने परभी इन तीर्थों से अधिक महत्त्व के तीर्थ हैं, परन्तु तीर्थयात्रा करनेवाले उस तीर्थ को अधिक महत्त्व देते हुए दिखाई नहीं देते। इसलिए उन तीर्थों का वर्णन करना अनिवार्य है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तीर्थानि

शारीरतीर्थ–

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते।।१।।
मनो विशुद्धं पुरुषस्य तीर्थं वाचां यमास्त्विन्द्रियनिग्रहश्च।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिबोधयन्ति।।
चित्तं अंतर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानात् न शुध्यति।
शतशोऽथ जलैर्धौतं सुराभांडे इवाऽशुचि।। (वाचस्पतौ अगस्ति)

जिसके हाथ, पैर तथा मन यह अच्छी तरह नियंत्रण में है, तथा जो विद्यावान, तपस्वी तथा कीर्तिमान है उसें तीर्थ स्नानादि का फल मिलता है। ये शरीर से संबंधित (शारीर) तीर्थ हैं तथा ये स्वर्गमार्ग दिखानेवाले-स्वर्गप्राप्तिकारक हैं। 'विशुद्ध मन', 'वाणी का निग्रह' और इन्द्रियनिग्रह शरीरतीर्थ जलमय तीर्थों से बहुत श्रेष्ठ है। इसीलिए जिसका चित्त, हृदय दुष्ट है, अनेक दोषों से युक्त है, उसने यद्यपि अनेक तीर्थों में स्नान किया हो फिर भी वह शुद्ध नहीं होता। शराब-मदिरा जिस बर्तन में रखा हो उसे सैंकड़ों बार धोने पर भी वह पवित्र नहीं होता, वैसा ही दुष्टचित्त मनुष्य का है।

मानसतीर्थ–

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थं इन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च।।१।।
दानं तीर्थं दमः तीर्थं संतोषः तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता।।२।।
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थं उदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत् तीर्थं विशुद्धिः मनसः परा।।३।।

सत्य, क्षमा, अंतरिन्द्रिय (मन का) निग्रह, सब भूतों पर दया, सरल हृदय (ऋजुता), दान, ज्ञानेन्द्रियनिग्रह, सन्तोष, तथा प्रिय-मधुर भाषण ये मानसिक तीर्थ हैं। ब्रह्मचर्य महातीर्थ है, उसी प्रकार सात्त्विक ज्ञान, सात्त्विक धृति, और पुण्यकर्म भी मानस तीर्थ हैं। और सब तीर्थों का तीर्थ याने अत्यन्त शुद्ध हुआ मन; इसीलिए स्मृति में कहा है–

न यमं यममित्याहुः आत्मा वै यम उच्यते।
आत्मा संयमितो येन तं यमः किं करिष्यति।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यम को, यमराज को यम नहीं कहा है, मन यही यम है। जिसने अपना मन उत्तम प्रकार से नियंत्रण में रखा है, उसे वह यमराज यम क्या करेगा?

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः। बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं स्मृतम्।। (श्रुति) इससे यही सिद्ध होता है कि शौच, आचमन, स्नानादि शास्त्रोक्त कर्म करनेवाले प्रत्येक मनुष्य को- मानवमात्र को सब तीर्थों की प्राप्ति कर लेना यही मानव धर्म की पूर्ति करना है। प्रारंभ में दिए गए मानवधर्म से तुलना कर के देखिए।

स्नान के पश्चात् वस्त्र पहनना पड़ता है, अतः उस विषय से संबंधित विधि-निषेध बताना आवश्यक है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १३

स्नान के पश्चात् वस्त्रधारण

स्वच्छ, सूखा, गीला नहीं है ऐसा शुभ्र वर्ण का धूत वस्त्र ब्राह्मणों को धारण करना चाहिए। बाईं तरफ तथा नाभि के निकट खोंसना चाहिए तथा पीठ के निकट कछोट होना चाहिए, इसे ही त्रिकच्छ युक्त पहनना कहते हैं।

अहत वस्त्र होना चाहिए– कम से कम आठ हाथ लंबा, न फँटा हुआ, दोहरा न बनाया हुआ, गाँठ न लगाया हुआ, दोनों छोर पर धागे निकला (दशा) हुआ होना चाहिए। इसे अहत वस्त्र कहते हैं। दूसरों के द्वारा पहना न हो। आचमनादि धर्मकर्म में पहनने के वस्त्र स्वयं धोए होने चाहिए, स्त्रियोके अथवा धोबियों के धुले हुए न पहने। (मनु, याज्ञ, नागदेव आदि) पहनते समय धूतवस्त्र तीन बार झटक कर उत्तर अथवा पूर्व दिशा में उसका छोर फैलाकर पूरा खोलकर पहनना चाहिए। गलती से दक्षिण अथवा पश्चिम में फैला गया हो तो उसे दुबारा धोकर सुखा कर पहनिए। (शातातप)

उपवस्त्र– (अँगोछा, गमछा, उपरणे) आचमनादि सभी धर्मकर्म में तथा भोजन के समय भी उपवस्त्र शरीर पर धारण: करना चाहिए। (वि. पु.) दाहिना हाथ उपवस्त्र के बाहर रहना चाहिए। तथा उसे सिर पर से पहनना नहीं चाहिए। उपवस्त्र न होगा तो पहने वस्त्र का एक छोर, उत्तरभाग, बाईं ओर से शरीर पर डाले। कपास के धूतवस्त्र न होंगे तो रेशम, जूट-पटसन, ऊनी अहत वस्त्र पहनने चाहिए। किसी का भी स्पर्श होने पर ऊनी वस्त्र अशुद्ध नहीं होता है। यह वस्त्र भी स्वच्छ-निर्मल होने चाहिए। आचारसम्पन्न माने जानेवाले कई मनुष्यों में बहुत बार दिखाई देता है कि ऊनी कंबल, ऊनी धोती आदि इतने मलिन, गंदे, धूलिधूसर होते हैं कि देखनेवाले को घृणा निर्माण होती है। ऐसे वस्त्र न हों। ऐसे वस्त्र भी न हो जो दुर्गंधी, बदबू फैलानेवाले, मटमैले हैं।

एक उदाहरण– (शके-१८८३) एक ६९।७० आयु के ब्रह्मचारी जपानुष्ठान की तैय्यारी करने लगे। उनके सभी वस्त्र इतने गंदे, फटे, जोड दिए, गाँठ लगाए, जहाँ तहाँ सिलाए तथा इतने मलिन थे कि देखते ही घृणा निर्माण हो जाती, ऊनी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

धोती या कंबल इतना मैला था कि यह ऊन का है या नहीं यह पहचानना भी कठिन था! उस कम्बल की अपेक्षा किसी अनाज के दूकान से कोई बोरा या एक साल भर जहाँ तहाँ पडे हुए सीमेंट के पुराने थैले भी अधिक स्वच्छ माने जाते। उन्हें सूचना देने पर उन्होंने उसे साबुन आदि से धोया, फिर भी वह धोती स्वच्छ नहीं हुई। कुछ दिनों बाद फिर से नींबू-सोडा लगाकर खूब धोया और तब उन्होंने सूचित किया कि वह धोती पहन कर उन्हें अपूर्व प्रसन्नता प्राप्त हुई। स्वच्छ वस्त्र क्यों चाहिए, इसे अलग बताने की अब आवश्यकता नहीं है।

स्पर्श दोष– रेशम के या पटसन के वस्त्रों को कौआ या कुत्ता आदि का स्पर्श पहनने के पूर्व हो तो दर्भ से पानी छिडककर वे शुद्ध होते हैं, परन्तु कपास के वस्त्र फिर से धोनेपर ही शुद्ध होते हैं। कटिसूत्र कौपीन-लंगोटी पहनकर गृहस्थद्वारा किए गए सभी धर्मकर्म निष्फल होते हैं। (यो. याज्ञ.) ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ तथा संन्यासी इन्हें कटिसूत्र कौपीन धारण करना चाहिए।

पिता तथा ज्येष्ठ बंधु जीवित होनेपर उपवस्त्र नहीं पहने। गेरु से रंगे वस्त्र गृहस्थ न पहने। दोहरे या बिना कछोटे के पहने वस्त्र तथा उपवस्त्र के बिना किए धर्मकर्म न करने जैसे ही है।

धर्मकर्म के समय क्षत्रियों को लाल रंग की, वैश्यों को पीली तथा द्विजेतर पुरुष को नीले वर्ण की धोती या वस्त्र पहनना चाहिए।

स्नान करने के बाद वस्त्र धारण करने पर पवित्री या पवित्रक पहना जाता है, अतः उसका वर्णन अगले अध्याय में दिया गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १४

पवित्री (पवित्रक) - धारण

सपवित्रेण हस्तेन कुर्यात् आचमनादिकम्।। (स्मृति) पवित्री (पवित्रक) हाथ में धारण कर आचमनादि कर्म करने चाहिए। शास्त्रकथित धर्मकर्म करते समय चारों वर्णों के पुरुषों को पवित्रक धारण करना चाहिए।

धारण स्थान– दाहिनी हाथ की अनामिका के बीच के पोर पर सुवर्ण का अथवा दर्भ का पवित्रक धारण करना चाहिए। चाँदी का पवित्रक दाहिनी तर्जनी में पहनाए। परन्तु जिनके पिता जीवित होंगे उन्हें चाँदी का पवित्रक नहीं पहनना चाहिए। तांबे का अनामिका में तथा त्रिशक्ति पवित्रक (अँगूठी) तर्जनी में पहने। दस भाग सोना, बारह भाग तांबा तथा सोलह भाग चाँदी, इनके मिश्रण से बनाई गई अँगूठी को त्रिशक्तिमुद्रा कहते हैं। वह 'तीव्रदारिद्रनाशिनी' है। सुवर्णादि धातु का पवित्रक ८० गुंजा से कम बजन का नहीं होना चाहिए। सोना गुरुपुष्ययोग के अवसर पर लेकर, उसी गुरुपुष्ययोग में बनाया सुवर्ण का पवित्रक अति उत्तम है। त्रिधातुओं का तार बनता नहीं है, इसलिए मुद्रा या अँगूठी चाहिए।

भोजन काल में दाहिने हाथ में पवित्रक होनाही चाहिए। दर्भ से बना पवित्रक जूठा होता है इसलिए भोजन के बाद हाथ धोने पर उसे निकाल कर खोल देना चाहिए। सुवर्ण आदि से बने पवित्रक जूठे नहीं होते हैं। पद्धति अवश्य विपरीत दिखाई देती है। सुवर्ण का पवित्रक भोजन के पूर्व बाए हाथ में पहनते हैं। केवल बाएँ हाथ में पवित्रक धारण करना बिलकुल निषिद्ध है। वैसा धारण कर आचमन करना याने रुधिर (रक्त) प्राशन करने जैसा है। भोजन समाप्ति के समय १। १ बार आचमन करना ही पडता है।

दोनों हाथों में पवित्रक डालकर आचमन करना सोमपान जैसा है तथा भोजन सोमयाग-फलदायक है। (हरीत. इ.) दर्भ संख्या– बाएँ हाथ में तीन तथा दाहिने में चार दर्भ ब्राह्मणों को धारण करना चाहिए। अथवा सभी २। २ दर्भ धारण करें। (मार्कण्डेय); ब्राह्मणों को सात, क्षत्रियों को पाँच, वैश्यों को चार तथा अन्य और आतुरों को दो दर्भ धारण करना चाहिए।(गरुड. पु)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उंगली से नीचे गिरने जाने पर प्रायश्चित– हाथ से पवित्रक निकल पडा है ऐसा ध्यान में आते ही तीन बार प्राणायाम करें तथा बाद में स्नान करते हुए अघमर्षणसूक्त का तीन बार जप करें। (रत्नावलि;)

पवित्रक त्यागविधि– संपूर्ण कर्म समाप्त होने पर पवित्रक निकालकर तथा उसकी गाँठ खोलकर बाद में उसे विसर्जित करें। उस दर्भ का दुबारा उपयोग न करें। धारण किया हुआ पवित्रक निकाल देने पर फिर से उसे धारण न करें। उसका विसर्जन करें।

पवित्रक के लिए कुश जाति का दर्भ उत्तम है। उन्हें फूल या अंकुर नहीं आते हैं। यह महाराष्ट्र में दुर्लभ हैं। सातारा तथा खेड(पुणे जिला) नगर में दो ब्राह्मणों के पास मिलते हैं। कुश के स्थान पर 'काश' का उपयोग करें। इन्हें बडे अंकुर आते हैं। ये महाराष्ट्र में सर्वत्र हैं। काश भी न मिला तो गेहूँ, चावल, मुंज घास, यव इनकी पत्तियों का उपयोग करें। बीच में रहनेवाले छोटे डण्डे निकाल दें। काशा घाँस की केवल पत्तियाँ लें।

कितने लम्बे पवित्रक– पवित्रक के लिए तथा मार्जनादि के लिए ऊँगली इतने लंबे तथा साग्र होने चाहिए। भोजन के समय वर्तुल ग्रंथी तथा अन्य समय में ब्रह्मग्रंथि होनी चाहिए।

निषिद्ध दर्भ– द्विजेतरों ने लाए हुए अथवा खरीदे हुए, ब्राह्मणों को धारण नहीं करना चाहिए। समंत्रक निकाले गए हो। अग्रहीन, सडे हुए, गर्भभाग न निकाले गए, नाखुनों से तोडे हुए, रास्ते में पडे हुए, यज्ञभूमि में पडे हुए, पिण्ड आदि के लिए प्रयुक्त, मलमूत्रादि का स्पर्श हुए, ब्रह्मयज्ञ, तर्पण में प्रयुक्त, पानी में उबाले गए, अग्नि से स्पर्श हुए अथवा थोडे जले हुए, कर्म के बाद निकाले गए पवित्रक, दर्भादि का प्रयोग न करें।

कुशादि लाना– जिसे चाहिए, उसे प्रतिदिन लाना उत्तम है। रोज यदि सम्भव न हो तो प्रत्येक महीने के दर्श अमावस को लाकर उस में सें एक महीना ही उपयोग में लाए। यह सम्भव न हो तो सावन के दर्श अमावस के दिन ले आए। अमावस के प्रारंभ के १८ घटिका के काल में तथा २४ घटिका के बाद के काल में निकाले। रात्रि में नहीं निकालना चाहिए। सावन अमावस के दिन लाए हुए दर्भ एक वर्ष तक काम में ला सकते हैं।

कुशादि लाने की विधि– शुद्ध भूमि पर, शुद्ध होकर, पूर्व अथवा उत्तर की ओर मुँह किए खडे रहकर या बैठकर, द्विजों को ॐकार का तथा अन्य लोगों को हरिनाम का उच्चार करते हुए कुशादि को स्पर्श करना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'विरंचिना सहोत्पन्न परमेष्ठि निसर्गज।
नुद सर्वाणि पापानि कुश स्वस्तिकरो भव।।'

इस मंत्र से द्विज प्रार्थना करें। तथा 'हुंफट्' मंत्र का उच्चारण करते हुए तुरन्त काटिए। शस्त्र बार बार दर्भ पर घिसना नहीं चाहिए। दर्भ काटते समय जनेऊ सव्य होना चाहिए। मृत व्यक्ति की उत्तरक्रिया के समय में तथा पितृकार्य के समय दक्षिण की ओर मुख करते हुए अपसव्य की स्थिति में दर्भ काटिए। द्विजेतरों को 'हर सर्वाणि पापानि दर्भ कल्याणकृत् भव' कहते हुए प्रार्थना करनी चाहिए तथा 'रुद्राय नमः' कहते हुए काटिए।

पवित्रक को द्विज प्रणव से तथा अन्य लोग हरिनाम से गाँठ लगाए। अगले अध्याय में मृत्तिका-भस्मधारण के संबंध में जानकारी दी है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १५

✤

मृत्तिका, भस्मादि पुण्ड्र-धारण

स्नात्वा पुण्ड्रं मृदा कुर्यात् (पादौ) प्रक्षाल्यैव तु भस्मना।
देवानभ्यर्च्य गन्धेन जलमध्ये जलेन तु।। (प्रयोग पारि.)
सर्वे शाक्ताः द्विजाः प्रोक्ताः न शैवा न च वैष्णवाः।
गायत्रीं वेदजननीं आदिशक्तिमुपासते।। (विश्वा.सं.)

स्नान हो जानेपर मिट्टी से (ऊर्ध्व) पुण्ड्र लगाए तथा पैर धोकर भस्म से त्रिपुण्ड्र धारण करें। देव-पूजा हो जाने पर बचे हुए गंध से तथा जल में जल से ही पुण्ड्र धारण कीजिए। सभी द्विज शाक्त अर्थात् शक्ति उपासक हैं। कोई भी शैव नहीं है अथवा कोई वैष्णव नहीं है; क्योंकि वेदजननी गायत्री की उपासना सभी द्विजों को करनी पडती है। इसलिए गायत्री उपदेश हुए बिना द्विजत्व ही प्राप्त नहीं होता है। इसी अर्थ का श्लोक देवी भागवत में भी है। स्मृति भी यही गायत्री की उपासना सभी द्विजोंको करनी पडती है। स्मृति भी यही कहती है कि द्विज तथा अन्य सभी स्त्री पुरुष,कन्या आदि को स्नान के बाद भस्म धारण करना ही चाहिए, परन्तु अपने को शैव माननेवाले वैष्णवों का तथा वैष्णव शैव चिह्नों का द्वेष करते हैं। यह भक्ति के अभाव का लक्षण है।

'अद्वेष्टा सर्वभूतानाम्'(भ. गी)

'कोणाहि जीवाचा न घडो मत्सर, वर्म सर्वेश्वर पूजनाचे।
नारायण असे विश्वीं, तयाची पूजा करीत जावी।'

अर्थात्, किसी भी जीव के प्रति मत्सर-द्वेष भाव न हो यही सर्वेश्वरपूजन का मर्म है। विश्व में नारायण व्याप्त है, उसी की पूजा करते रहना चाहिए। ऐसा स्मृति एवं संत कहते हैं। इसीलिए स्मृति, पुराण तथा अन्य धर्मग्रंथ कहते हैं कि मृत्तिका तथा भस्म भी धारण करना चाहिए। 'धर्मसिंधु' में भी पहले मृत्तिका तथा बाद में भस्म धारण करने के लिए कहा है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आदौ मृद्धारणं कुर्यात् भस्मना च ततः परम्।
उभयं चंदनेनैव अभ्यंगोत्सवरात्रिषु।। (कात्यायनः)

स्नान तथा वस्त्रधारण के बाद गोपीचंदनादिमृत्तिका तथा उसके पश्चात् भस्म धारण करें। अभ्यंगस्नान के बाद (विवाहादि) समारोह में तथा रात्रि में चंदन से दोनों प्रकार के पुण्ड्र (तिलक) धारण करें, परन्तु देवपूजा के पहले चंदन न लगाए, अतः पिंजर, केशर आदि लगाए।

पुण्ड्र प्रकार- ऊर्ध्वपुण्ड्र अर्थात् खडा तिलक तथा त्रिपुण्ड्र (आडा तिलक) तीन अथवा दो खडी रेषाएँ बने, इस रीति से भ्रूमध्य से बालों तक मृत्तिका लगाना, उसे ऊर्ध्वपुण्ड्र तथा तीन आड़ी रेखाएँ बनेंगी उसे त्रिपुण्ड्र कहते हैं। ऊर्ध्व भस्म से तथा त्रिपुण्ड्र मृत्तिका से लगानेपर तो नरक में जाना पडता है। (विश्वा. स. तथा अन्य)

पुण्ड्र में निहित रहस्य तथा बोध– पुण्ड्र की तीन रेखाएँ याने प्रणव के अकार, उकार तथा मकार ये तीन मात्राएँ हैं। साथही त्रिदेव, त्रिगुण, त्रिलोक आदि सब त्रैत हैं। तथा उसके बीच में तिलक है वह अर्धमात्रा है। इस प्रकार पुण्ड्र (तीन रेखाओं का) प्रणवात्मक, ब्रह्मस्वरूप है तथा उसकी ओर देखने पर सर्वव्यापक अधिष्ठान चैतन्य का स्मरण कर देनेवाला है। ऊर्ध्वपुण्ड्र नाक के छोर से लगाते हैं, परन्तु उसके लिए कोई शास्त्राधार नहीं मिला है।

दोनों प्रकार के पुण्ड्र आवश्यक हैं यह बताने का शास्त्र का हेतु स्पष्ट दिखाई देता है कि श्रुति स्मृतिपुराणों द्वारा सूचित शिव-विष्णु अभेद न भुला दिया जाए। और द्वेष-मत्सर, साम्प्रदायिक वृथाभिमान न बढ़े। तथा 'जे जे दिसे भूत। ते ते मानिजे भगवंत' या 'विष्णुमय जग' 'जो जो जीव दिखाई दे, वह भगवान मानकर उसकी भक्ति करें' या 'सारा जगत् विष्णुमय है' इस 'मर्मदृष्टि' को आँखों से ओझल न होने दे। तथा मिथ्याचार, बाह्य आडम्बर की वृद्धि न हो। शिखाबन्धन में तथा प्राणायाम में, त्रिकाल सन्ध्या वर्णन में तथा दिग्देवता वंदन में भी यही हेतु स्पष्ट दिखाई देता है। प्रमुख गायत्री के ध्यान में भी वही हेतु है, परन्तु उसकी ओर कौन ध्यान दे रहा है?

मृत्तिका कौनसी हो? – गोपीचन्दन, तुलसी पौधे के नीचे की मिट्टी, गंगादि महानदियों के किनारे पर स्थित मिट्टी, अथवा वल्मीक या चीटी-घर की मिट्टी का उपयोग करें। (धर्मसिंधु) भस्म-ब्रह्मचारियों को समिधा की अग्नि से, अन्य द्विजों को अग्निहोत्र से अथवा विरजाहोम से प्राप्त भस्म उत्तम है। स्मार्ताग्नि से प्राप्त मध्यम तथा शूद्रों को विप्र के रसोईघर से प्राप्त अग्नि से तथा अन्य लोगों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

को दावाग्नि का भस्म उपयोग में लाना चाहिए। यह भस्म भी जमीन या भूमि का स्पर्श न किया हुआ गोमय का होना चाहिए। तथा वे सूखे गोले भी भूमि से स्पर्श न किए हुए हों।

भस्म धारण फल–

श्राद्धे होमे जपे यज्ञे वैश्वदेवे सुरार्चने।
धृत त्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युं जयति मानवः।।
सन्ध्या दानं जपो होमः स्वाध्यायः देवतार्चनम्।
ऊर्ध्वपुण्ड्रं विना कर्म निष्फलं स्यात् इति स्मृतिः (कात्यायन)
सितेन भस्मना कुर्यात् त्रिसंध्यं च त्रिपुण्ड्रकम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवेन सह मोदते।। (भविष्य पु.)
सत्यं शौचं जपो होमः तीर्थदेवादि पूजनम्।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यः त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्।।

इतने वचन पर्याप्त हैं।

ऊर्ध्वपुण्ड्र और त्रिपुण्ड्र न धारण कर किया कोई भी श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त कर्म निष्फल होता है। दोनों धारण कर स्वकर्म करने से सर्वपापविनाश होता है। पापविनाश से द्वंद्वमोहनाश होकर ज्ञानप्राप्ति होती है। ज्ञान से मोक्ष मिलता है। अर्थात्, मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। 'मृत्युं जयति' ध्यान में रखिए कि दोनों प्रकार के पुण्ड्रों की आवश्यकता अन्वय तथा व्यतिरेक दोनों पद्धतियों से धर्मशास्त्र ने स्पष्ट सूचित की है।

भस्मजाबालोपनिषद् में कहा है कि जलस्नान के अलावा आपत्काल में गौणस्नान चल सकता है। नैमित्तिक स्नान पुत्रादि प्रतिनिधि के द्वारा भी किया जा सकता है। जल के अभाव में आचमन दक्षिण कर्णस्पर्श से भी हो सकता है। गायत्री जप पुत्र-ब्राह्मणादि प्रतिनिधि द्वारा भी किया जा सकता है। परन्तु भस्मधारण के लिए पर्याय नहीं है अथवा प्रतिनिधि द्वारा नहीं चल सकता। इस से भस्मधारण का महत्त्व ध्यान में आ जाएगा।

भस्मधारण विधि– मध्याह्न तक जलमिश्रण करते हुए, मध्याह्न स्नान के बाद चंदन मिश्रित करते हुए तथा मध्याह्न के बाद सूखा भस्म धारण करना चाहिए। (प्रयोग पारि.; पारस्कर सूत्र, स्मृति रत्नावलि आदि.) संन्यासियों को सदा सूखा भस्म ही धारण करना चाहिए। कैसे लगाए? - अंगूठा तथा कनिष्ठिका (करांगुलि) छोड़कर बीच की तीन उँगलियों से बाईं ओर से दाहिनी ओर (भ्रूमध्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से प्रारम्भ करते हुए) तथा बाद में उन्हीं तीन उंगलियों से दाहिनी ओर से बाईं ओर संपूर्ण ललाट (कपाल) (माथा) तक लगाए। तीन रेखाएँ स्पष्ट दीखनी चाहिए। दूसरी पद्धति– अनामिका तथा मध्यमा इन से ललाट (कपाल) की बाँई ओर से दाहिनी भौंहों के ऊपर एक तथा बालों के नीचे की ओर एक ऐसी दूर-दूर दो रेखाएँ निकालिए तथा बाद में अंगूठे के अगले भाग से दो रेखाओं के बीच में दाहिनी ओर से बाँई ओर रेखा निकालिए।

स्थान– ललाट(माथा) (कपाल) हृदय (दोनों भाग), नाभि, गला, कंधा, बाहुसंधि, तथा मस्तक इस क्रम से बीच की तीन उँगलियों से भस्म लगाए। (स्मृ. रत्ना.) कुछ लोग कलाई तथा पैरों पर भी लगाते हैं।

प्रमाण– बहुत छोटा आयु-हानिकारक तथा बहुत लंबा तप का नाश करनेवाला माना जाता है। ब्राह्मणों को छः अंगुल, क्षत्रिय को चार अंगुल, वैश्य को दो अंगुल तथा अन्य एक अंगुल लंबाई का त्रिपुण्ड्र लगाना चाहिए। इस संबंध में मतभेद दिखाई दिए हैं। इन में एक मत यह है कि ब्राह्मण का जितना ललाट लंबा होगा उतना लंबा त्रिपुण्ड्र लगाए।

मंत्र– द्विजों को 'अग्निरिति' मंत्र से अभिमंत्रित किया हुआ, (अन्य व्यक्तियों के 'रुद्राय नमः' मंत्र से;) भस्म शिवषडक्षर या शिवपंचाक्षर (शिवाय नमः) मंत्र से अथवा अष्टाक्षर नारायण मंत्र से अथवा गायत्री मंत्र से लगाए। संन्यासियों को प्रणव से लगाना चाहिए। द्विजेतर 'शिवाय नमः' 'नारायणाय नमः' 'आदिशक्तये नमः' इन से इच्छानुसार लगाए। (पुलस्त्यः)

मंत्रानुसार फलभेद– शिवमंत्र से शिवलोक में श्रेष्ठता मिलती है। नारायण मंत्र से विष्णुलोक प्राप्ति, गायत्री तथा आदिशक्ति मंत्र से सूर्यलोक तथा देवीलोक की प्राप्ति होती है। प्रणव से ब्रह्मरूपता होती है; (धर्म सिं.) परन्तु वानप्रस्थ, द्विज तथा संन्यासी इन के सिवा अन्य प्रणव से न लगाए। ऐसा क्यों, इसका स्पष्टीकरण 'गायत्री जप' अध्याय में दिया गया है।

इस विविधता से यह स्पष्ट होता है कि भस्म लगाना आवश्यक माना गया है फिर भी वह केवल शैवलक्षण नहीं है। शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर आदि को उपासना भेद के अनुसार रुचिस्वातंत्र्य दिया गया है। इस से यह स्वाभाविक रूप से स्पष्ट होता है गाणपत्यों को गणेश मंत्र से, देवीभक्तों के अपने देवी मंत्र से लगाना चाहिए, परन्तु भस्म सभी को लगाना ही चाहिए।

प्रायश्चित्त– एक बार भी गलती से भस्म धारण न करने पर ब्राह्मणों को एक दिन निर्जल उपोषण और पानी में खडे होकर १०८ गायत्री जप करना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संन्यासियों को एक दिन उपवास तथा १२ हजार प्रणव जप ऐसा प्रायश्चित्त बताया गया है। (भस्मजाबालोपनिषद; देवी भाग.)

भस्मोद्धूलन– इसके पहले बताए अनुसार भस्म का अभिमंत्रण करने पर (ललाट आदि पर लगाने से पहले) भस्मोद्धूलन करना चाहिए। गीला या सूखा भस्म सिर से पैर तक छिड़कना यह उसका संक्षिप्त प्रकार है। भस्मोद्धूलन करने पर बाद में उँगली से ललाट आदि भागपर लगाए। भस्मधारण प्रयोग में आवश्यक उतने मंत्रों का अर्थ दिया गया हैं।

आश्रमानुसार फल–

यतीनां ज्ञानदं प्रोक्तं वनस्थानां विरक्तिदम्।
गृहस्थानां मुने स्तद्वत् धर्मवृद्धिकरं तथा।।३।।
ब्रह्मचर्याश्रमस्थानां स्वाध्यायप्रदमेव च।
शूद्राणां पुण्यदं नित्यं अन्येषां पापनाशनम्।।४।।

(दे. भा. स्कं. ११/१३)

इसके आगे पाँच श्लोकों में भस्मोद्धूलन तथा त्रिपुण्ड्रधारण वैदिक श्रुतियोंने सभी को अत्यंत आवश्यक बताया है, तथा उस प्रत्येक में 'विधन्ते वैदिकी श्रुति' ऐसा उल्लेख किया है। तेरहवा तथा चौदहवा ये दो अध्याय अवश्य देखिए। स्नान के बाद गीले सर्वांग पर भस्म लेपन, भस्मोद्धूलन करने से सैकडों वातरोग, पित्तरोग तथा कफरोग ठीक हो जाते हैं, ऐसा अध्याय १४/२०/११ में कहा गया है। स्वयं प्राप्त किए अल्प अनुभव से विश्वास प्रतीत होता है कि इस से रोग ठीक हो जाएँगे।

भस्म क्या है? भस्म, भसित्, भूति तथा रक्षा ऐसे उसके नाम है।

(१) **भस्म–** भस् दीप्तौ, भस्यते, दीप्यते अनेक इति भस्म। 'दीप्यते, क्रीडते यस्मात् रोचते द्योतते, दिवि' इसलिए (दीप्ति = जो सत्ता जड़वस्तु को चेतन बनाती है, क्रीडा-चेष्टा-क्रिया करने में समर्थ बनाती है, जिसके कारण उज्ज्वलता-प्रकाश-तेज प्रकट होता है, उसे दीप्ति अर्थात् ब्रह्मज्योति कहते हैं।) यही ज्योति सम्पूर्ण जड़भावमय जगत् को शोभित, संवर्धित करती है तथा अन्त में उसका संहार करती है। यह सत्ता ही ब्रह्म है, इसलिए भस्म = ब्रह्म; 'अग्निरिति' इस मंत्र का अर्थ यही बताता है कि भस्म याने सब जगत् का अधिष्ठानस्वरूप ब्रह्म। अन्य अर्थ–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भासनात् भसितं प्रोक्तं, भस्म कल्मषभक्षणात्।
भूतिर्भूतिकरी पुंसां रक्षा रक्षाकरी तथा।।
त्रिपुण्ड्रधारणं दृष्ट्वा भूत-प्रेत-पुरस्सराः।
भीताः प्रकंपिताः शीघ्रं नशन्त्येव न संशयः।।

(दे. भा. ११/१४; ३२-३४;)

सत्त्वगुण का प्रकाश फैलानेवाला इसलिए भसित। दोष, पातकों का भक्षण करता है, इसलिए भस्म; विविध ऐश्वर्य प्रदान करता है इसलिए भूति; और रक्षा करता है, इसलिए उसे रक्षा कहते हैं। भस्म त्रिपुण्ड्र देखकर भूतप्रेतादिक भयभीत होकर तुरन्त भाग जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। ऐसा नारायण ने नारद मुनि से कहा है।

शास्त्रोक्त शुद्ध भस्म दुर्लभ हो गया है। अग्निहोत्र के तथा स्मार्ताग्नि से बड़े परिश्रम से जो मिलता है वह भी शास्त्रशुद्ध नहीं होता है। तथा यह भी कुछ वर्षों के बाद में मिलनेवाला नहीं है। विरजाहोम से मिल जाएगा, परन्तु उसके लिए याज्ञिक-पुरोहितों की सहायता लेनी पडेगी। परन्तु वे भी दुर्लभ हो गए हैं तथा आगे कलिकाल के प्रभाव से बहुत दुर्लभ हो जाएँगे। यह जानकर ही मानो दे. भा. ११/११ में एक अत्यन्त सरल, बिना खर्च का तथा प्रत्येक द्विज के लिए सहज सम्भव हो सके ऐसी विधि दी है। भस्मजाबालोपनिषद में भी एक विधि है, परन्तु वह तो इतना सरल नहीं है। इसलिए दे. भा. में दिया गया विधिसंकेत आगे दिया गया है।

भस्मोत्पादन की अत्यन्त सरल विधि

स्नान करते हुए तथा पवित्रक धारण कर मृत्तिका-भस्म लगाते हुए गौओं के समूह में जाए और उन्हें प्रणाम करें। जमीनपर-भूमिपर न गिरने देते गोमय को पकड कर उसे शुद्ध पात्र में अथवा पलाश से बने पत्तल आदि पर रखें। बाद में द्विज शिवषडक्षर 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र कहते हुए उस गोमय के बडे लड्डू इतने बडे ठोस गोले बनाए। तथा उसे शुद्ध पात्र, काष्ठासन (पीढा) आदि पर रखकर धूप में उसे अच्छी तरह सुखाए। उसके बाद उसी तरह प्राप्त किए गोमय के २/३ आवरण (पुट) उनपर लगाएँ। ऐसा करते समय भूमि का अथवा पाषाण का स्पर्श न होने दे। गोलों के प्रमाण से दुगना बडा गड्ढा जमीन में करते हुए उसे शुद्ध गोमयसे लीपकर उस गड्ढे में वे गोले रखें तथा अग्निहोत्री के घर से अग्नि लेकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अथवा वह न मिलने पर चकमक पत्थर एक दूसरे पर घिसकर या काँच (सूर्यभिंग) से अग्नि प्रज्वलित करें। तथा षडक्षर शिव मंत्र उस समय कहे। आग नहीं बुझेगी इसका विश्वास हो जाने पर चावल की भूसी से गड्ढा भर दें। या जवार आदि खलिहान में पडी भूसी भरकर अच्छी तरह दबा रखे। एक-दो दिन के बाद कुण्ड की अग्नि शान्त हो गई है ऐसा विश्वास हो जाने पर भूसी की राख निकाल कर, हलके हाथ से जलकर राख हुए गोले निकाल कर उन्हें किसी नए शुद्ध पात्र में (मिट्टी का घडा उत्तम है) शिवषडक्षर मंत्र से भस्म भर रखे। उस घडे में केवडे के पत्ते, चन्दन, खस, कपूर, केशर आदि सुगंधी द्रव्य ड़ालकर अच्छी तरह से ढँककर, शुद्ध पवित्र स्थान में रखिए।

घर में गाय नहीं होगी तो शुद्ध पात्र लेकर ग्वाले के साथ गाय के पीछे जाए तथा जब गौएं मल त्याग करें तो उसे पात्र में जमीनपर गिरने से पहले पकडे। ग्वाले को उचित धन दीजिए। शहर में किसी गोशाला में गोमय मिल जाएगा।

इच्छा होने पर किसी भी द्विज को इस प्रकार अत्यन्त शुद्ध, शास्त्रोक्त, शुभ्र, सुवासिक भस्म उपयोग के लिए मिल जाएगा। शहर में भी यह सम्भव हो सकेगा।

भस्मधारण के बाद आचमन, प्राणायाम इनका क्रम है। आचमन के सम्बन्ध में इसके पहले ही लिखा जा चुका है। इसलिए अगले अध्याय में प्राणायाम के सम्बन्ध में जानकारी दी जाएगी।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १६

प्राणायाम

जलबिन्दु-कुशाग्रेन मासि मासि पिबेत् तु यः।
संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समः।। (मद. पारि. श्रुतिः)
प्राणायामैर्विना यद् यत् कृतं कर्म निरर्थकम्।
अतो यत्नेन कर्तव्यः प्राणायामः शुभार्थिना।। (अगस्त्य सं.)

प्राणायाम यह सभी धार्मिक कर्मों में एक अत्यन्त महत्त्व का अंग है। यह नित्यकर्म है। प्राणों का कार्य अनियंत्रित तथा अव्यवस्थित होने से तथा प्राणशक्ति का अपव्यय होते रहने से अनेक व्यक्तियों को रोगों एवं अकालमृत्यु का शिकार होना पडता है। फिर भी यह कर्म बहुधा कोई व्यंवस्थित करता नहीं है; केवल कानों एवं नाक को हाथ लगाते रहते हैं!

प्राणायाम–

'प्राणः स्वदेहजो वायुः तस्य आयामः निरोधनम्' (अग्नि. पु.)

प्राण याने अपनी देह के अन्दर स्थित देह में उत्पन्न वायु, उसका आयाम अर्थात् निरोध एवं विस्तार जिस कार्य से होता है अथवा किया जाता है, उसे प्राणायाम कहते हैं। प्राणों की क्रिया अनियंत्रित-अव्यवस्थित हो जाने पर शरीर तथा उसके आन्तरिक विविध इन्द्रिय और अवयव दुर्बल हो जाते हैं। अपना-अपना कार्य उन्हें ठीक करते नहीं बनता है। उसके कारण रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्राणायाम से फुप्फुस, रक्ताशय, ज्ञानतंतु, मगज आदि आन्तरिक अवयव इनकी दुर्बलता समाप्त होकर क्रिया शक्ति अर्थात् प्राण, अपान, व्यान आदि की शक्ति सुचारुरूप से कार्य करने लगती है। दोनों प्रकार की रक्तवाहिनियाँ, रसवाहिनियाँ, वसावाहिनियाँ आदि के, इतना ही नहीं बल्कि पीठ में स्थित रीढ की हड्डी के दोष भी नष्ट हो जाते हैं। इसीलिए ही 'श्रुति' कहती है कि 'प्राणायामैः दहेत् दोषान्।' योग के आठ अंगों में प्राणायाम यह अत्यन्त महत्त्व का अंग हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

यथा पर्वतधातूनां दोषान् हरति पावकः।
एवं अन्तर्गतं पापं प्राणायामेन दह्यते।।

(जाबाल दर्शन उ.)

खान से निकाले गए अशुद्ध धातुओं के दोष, मल आदि को भट्टी में विधिपूर्वक तपाने से, अग्नि के योग से नष्ट हो जाते हैं, उसी प्रकार स्थूल-सूक्ष्म देह में स्थित दोष, पाप प्राणायाम से दग्ध हो जाते हैं। यह कैसे होता है इसकी अंतरंग प्रक्रिया अत्रि-स्मृति (१/६) में दी गई है।

निरोधात् जायते वायुः वायोरग्निः प्रजायते।
अग्नेरापश्च जायन्ते ततोऽन्तः शुध्यते त्रिभिः।।

अग्निपुराण में इसी अर्थ का श्लोक है। प्राण का निरोध करने से वायु उत्पन्न होती है, वायु से अग्नि तथा अग्नि से आप-जल उत्पन्न होता है तथा उन से तीन प्राणायामों से शुद्धि की जाती है।

प्राणायामेन चित्तं तु शुद्धं भवति सुव्रत।
चित्तं (मन) प्राणेन संयुक्तं प्राणः चित्तेन संयुतः।।

(जाबाल द. उ.)

प्राणायाम का विशेष अभ्यास करने से दो महीने में ही सभी नाडियाँ (रसवाहिनी आदि) शुद्ध हो जाती हैं। नाडी-शुद्धि होने पर अग्नि प्रदीप्त होता है। पचनशक्ति सुधर जाती है। दशनादों में से कुछ नाद अपने आप सुनाई देने लगते हैं। तथा चित्त की एकाग्रता सहज साध्य होती है। आरोग्य अच्छा रहता है। (योग-शि. उप.) इस प्रकार दोष-पातकरूप इंधन जलानेवाली तथा पवित्रता उत्पन्न करनेवाली अग्नि (पावक) याने प्राणायाम है।

चित्त तथा प्राण इकट्ठा होने से प्राण की जय साधने पर चित्त की जय तथा लय सहज साध्य होता है। चित्त तथा प्राण इनके नियंत्रण से वीर्यजय सहज रूप से हो जाता है। तथा ब्रह्मचर्य पालन करना आसान हो जाता है। इसीलिए प्रथम दिए गए श्लोक में प्राणायाम की महती बताई है कि प्रति मास दर्भ के अग्र पर रहनेवाले जल के एक बिंदु का पान करते संपूर्ण सौ वर्ष तपश्चर्या करना और एक बार व्यवस्थित प्राणायाम करना समान है।

प्राणजय के लक्षण—

जिते प्राणे स्वल्प दोषविण्मूत्रादि प्रजायते।
आरोग्यं शीघ्रगामित्वं उत्साहः स्वरसौष्ठवम्।। (अग्नि. पु.)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्राणजय हो जाने पर कफ-वात-पित्तादि और मलमूत्र इनका दोष बहुत ही कम हो जाता है। आरोग्य, शीघ्रगति, उत्साह, आदि बढ़ता है। और स्वर-(आवाज) मधुर आकर्षक होता है।

अनुभव– ३५/३६ वर्ष की आयु होने पर भी जो पचास वर्ष की आयु का दिखाई देता था तथा कमर झुक गई थी। उसने वर्ष छः महीने आसन, प्राणायाम आदि का अभ्यास शास्त्रोक्त पद्धतिसे किया, तब वह तरुण दीखने लगा तथा पचास वर्ष की आयु होने पर अपरिचित को पैंतीस वर्ष की आयु का लगता था। झुकी कमर सीधी हो गई और १२/१२ घंटे, पैर न हिलाते वह सीधा बैठ सकता था। अटल प्रारब्ध से बीमार हुआ, बुखार आया, कॉलरा हुआ, पित्त भी ठण्डे पानी से दो बार स्नान चालू रखकर दवाई न लेने पर भी कभी काली तुलसी के थोडेसे पत्ते खाकर ठीक हो गया।

'यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् (भ. गी.)' ऐसा भगवान् ने कहा है और सन्ध्या में 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' और वह जपयज्ञ भी 'गायत्री छंदसां अहम्' इस मंत्र का! 'न गायत्र्याः परो मंत्रः' ऐसे परमश्रेष्ठ भगवद्विभूतिरूप मंत्र का यज्ञ है। जिस दान से सूर्य का रक्षण होता है वह 'अर्घ्यदान' है; और 'प्राणायामः परं तपः' प्राणायाम रूप श्रेष्ठ तप है। वह कितना श्रेष्ठ तप है यह प्रारंभ में दिया हुआ श्लोक बताता है।

'यज्ञो दानं तपः चैव पावनानि मनीषिणाम्।'

मनीषी याने धैर्यशाली दूरदर्शी विद्वान्; उन्हें भी यज्ञ, दान तथा तप पावन बनाता है। सन्ध्या में तो परमश्रेष्ठ यज्ञ, परमश्रेष्ठ दान तथा परमश्रेष्ठ तप है। इसलिए सन्ध्या द्विजों को पावन करेगी इस में क्या आश्चर्य। ऐसा होने पर भी अच्छे सुशिक्षित भी कहते हैं कि सन्ध्या से कुछ भी लाभ नहीं है।

प्राणायाम में तीन क्रियाएँ करनी पडती है। उन्हें पूरक, कुंभक तथा रेचक कहते हैं। नाक का एक छिद्र बंद करते हुए दूसरे से धीरे धीरे बाहर की वायु अन्दर लेना याने पूरक; फुप्फुस तथा अन्दर का भाग वायु से पूरा भर जाता है इसलिए उसे पूरक कहते हैं।

अन्दर भरी हुई वायु को बाहर जाने न देते हुए निश्चल रोक रखने को कुंभक तथा रोकी हुई वायु को बिलकुल धीरेधीरे दूसरे या उसी छिद्र से बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। प्राणायाम की यह सामान्य तीन क्रियाएँ हैं।

ध्यान– पूरक के समय नाभिस्थान में नीलवर्ण, चतुर्भुज हरि, विष्णु, नारायणादि का; कुंभक के समय चतुर्भुज, लाल, गौरवर्ण के तथा कमल में बैठे ब्रह्मदेव का

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हृदय में तथा रेचक के समय स्फटिक वर्ण के निर्मल महेश्वर का ललाट-भ्रूमध्य में ध्यान करें।

विचार कीजिए कि शैव-वैष्णव मतभिन्नता या द्वेषादि को यहाँ कहाँ स्थान दिया गया है?

इन्हीं का ध्यान क्यों? विष्णु का कार्य भरण-पोषण करना है। पूरक में वायु खूब भर दी जाती है, वायु से पोषण किया जाता है इसीलिए विष्णु का ही ध्यान उचित है। फुप्फुस के करोडों छिद्रोंमें स्थित तथा अन्य स्थान के दोष निकाल कर वायुजनित अग्निसे तथा अग्निजनित आप से पवित्रता, निर्मलता इनकी उत्पत्ति कुंभक में की जाती है। उत्पत्तिकार्य ब्रह्मदेव का है, अतः उनका ही ध्यान योग्य है। कुंभक से निकाले गए वायुस्थित दोष, मल, पाप इनका त्याग करने का तथा त्याग से संहार करने का कार्य रेचकका है। त्यागी तथा संहारकार्य करनेवाले और उसके द्वारा शं याने कल्याण करनेवाले शंकर महेश्वर; इसलिए रेचक में उन्हीं का ध्यान उचित है। दोष, मल यदि न निकाले गए तो शुद्ध स्फटिक जैसा चित्त नहीं होगा। इसलिए यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव इनके कार्य परस्परावलंबी हैं; क्योंकि संहार ही नहीं होगा तो उत्पत्ति किसकी और कैसे की जा सकती है? इसलिए इन त्रिदेवों में कोई भी एक या दूसरे को छोटा-बडा या खोटा आदि मानना यह महादोष है, ऐसा श्रुति-पुराण (श्रीमद्भागवत भी) कहते हैं। और 'हे विश्वचि माझे घर।... किंबहुना चराचर। मीच पै गा।।' अर्थात् 'यह पूरा विश्व ही मेरा घर है, इतनाही नहीं बल्कि यह सम्पूर्ण चराचर मैं ही हूँ।' ऐसे परमदृढ स्वानुभवपर आरूढ जिनकी अवस्था हो गई है तथा इस स्थिति तक न पहुँचे हुए संत भी उच्च स्वर से यही कहते रहे हैं।

प्राणायाम रीति– सीधे तनकर बैठिए, गर्दन बाजू में अथवा आगे-पीछे झुकी हुई न हो। (प्रारंभ में आइना-दर्पण सामने होना लाभदायक है।) नाक के जिस छिद्र से साँस चल रही होगी उससे पहले रेचक कीजिए तथा तुरन्त उसी से पूरक करें। दाहिने नाक के छिद्र पर (पिंगला पर) अँगूठा तथा बाएँ (इडा पर) अनामिका तथा मध्यमा ब्रह्मचारी और संन्यासी रखें, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ ये चारों उँगलिया इडा पर रखें। जिस नाक के छिद्र से पूरक करना होगा उसके दूसरी ओर का छिद्र उसपर रखी उँगलियों से दबा रखें, परन्तु नाक का अग्रभाग (या नाक) जरा भी टेढ़ा नहीं होना चाहिए। कुंभक करते समय दोनों छिद्रों पर रखी उँगलियों को उसी सावधानता से दबा रखिए। अँगूठा तथा उंगलियाँ नाक की हड्डी के नीचे मृदु भागपर रखें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विशेष सावधानी– पूरक के चौगुना कुंभक ऐसा यद्यपि योगशास्त्र के ग्रंथों में कहा है फिर भी नए अभ्यासकों द्वारा उस प्रमाण में कुंभक करने पर रोकी गई वायु ऊपर-नीचे धक्के देने से पहले ही रेचक शुरु कर देना चाहिए। बहुत धीरे धीरे वायु बाहर निकालें। रेचक करते समय मलमोचनद्वार ऊपर आकर्षित करें, तथा नाभि के पास का भाग बिलकुल सावकाश अंदर खींचते हुए पेट खाली होने तक रेचक कीजिए। इस प्रकार पूरक तथा रेचक इनका प्रमाण १:२ सहजता से स्थापित हो जाता है। परन्तु पूरक करते समय धीरे धीरे पेट को फुलाते अधिक से अधिक वायु अन्दर लेनी चाहिए।

प्राणायाम में मंत्र–

द्विजों को सन्ध्या में प्राणायाम करते समय सप्रणव सात व्याहृति, गायत्री मंत्र तथा शिरोमंत्र इनका तीन बार कुंभक के समय मन में उच्चार करने को प्राणायाम कहा है। परन्तु यह उत्तम प्राणायाम का लक्षण है। इतनी देर कुंभक करना नए साधक को सधता नहीं है। इसलिए पूरक, कुंभक तथा रेचक १:१:२; १:१: १/२:२; १:२:२; १:२ १/२:२; १:३:२; इस प्रकार धीरे धीरे कुंभक का प्रमाण बढ़ाते प्राणायाम करना चाहिए। इस प्रकार के कुंभक को अन्तःकुंभक कहते हैं। बहिःकुंभक से इसकी अपेक्षा अधिक लाभ होता है, परन्तु इसकी आवश्यकता सन्ध्या में नहीं है इसलिए यहाँ अधिक विस्तार नहीं करते। द्विजेतरों को नाममंत्र से प्राणायाम करना चाहिए। इतना ही अन्तर है, अन्य प्रक्रिया उसी प्रकार है।

प्राणायामत्रयं कार्यं सन्ध्यासु च तिसृषु अपि। (मनु.) सन्ध्या में बार बार प्राणायाम करना पडता है। तीनों सन्ध्याओं में हर समय तीन प्राणायाम करें। कम करने पर प्रायश्चित्त नहीं। एक कर्म से पहले प्राणायाम करते हुए अन्त में रेचक किया हो तो अगले समय पहले पूरक करें। प्रारंभ में केवल तीन प्राणायाम करने ही चाहिए। उसी प्रकार गायत्री जप से पहले प्राणायाम करें।

ध्यान में रखिए– छाती पर से मनुष्यों से भरी गाड़ी का एक पहिया ले जाते हैं वह अन्तः कुंभक के बलपर ही! सर्वोपयोगी अनुभूत प्रयोग– (१) भोजन के समय पिंगला (नाक के दाहिनी ओर से) श्वास चालू रहना चाहिए; पानी पीते समय इडा से (बाँई ओर से) इसीलिए भोजन करते समय पानी पीना आरोग्यविघातक है। पिंगला से श्वास चलते शरीर में, विशेषरूप से पेट में ऊष्णता बढती है। इडा के चलते शीतलता बढती है। अन्नचर्वण, पचन इन से ऊष्णता बढती है। तथा पचन के लिए ऊष्णता चाहिए। इडा को चन्द्रनाडी तथा पिंगला को सूर्यनाडी कहते हैं। इसका कारण यही है कि चन्द्र शीतलता देता है, तो सूर्य ऊष्णता देता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(२) बाँई ओर करवट लेने से पिंगला नाडी शुरू होती है तथा शरीर की ऊष्णता रात्रि के ठण्ड से भी कम नहीं होती है। भोजन के बाद थोडी देर बाँई करवट सोने के लिए कहा है, उसका भी यही हेतु है। दाहिनी साँस (पिंगला) शुरू होकर शरीर में पचन के लिए पर्याप्त ऊष्णता का निर्माण सहज ही हो जाता है। दाहिनी करवट सोने से इसके विपरीत परिणाम होता है।

साँस बदलना– साँस बदलने के लिए समर्थ सम्प्रदाय में प्रचलित योगदण्ड (कुबड़ी) का अच्छा उपयोग होता है। बाई साँस बन्द करके दाहिनी शुरू करना हो तो पालथी डालकर बैठिए तथा बाँई बगल में योगदण्ड सीधा रखकर उस पर बगल से जोर दीजिए तथा बाँई साँस (इडा) जोर से लेकर पिंगला से जोर से बाहर निकाले; ऐसा न रुकते १०/१२ बार करें, जिस से दाहिनी साँस शुरू हो जाती है। विपरीत पद्धति से करने पर बाई साँस शुरू होती है। नाक के दोनों छिद्रों से साँस चलती है तब उसे सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्ना शुरु रहते जप, ध्यान आदि कार्य करें। इस से विशेष लाभ होता है। एकाग्रता शीघ्र सध जाती है।

इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना ये नाडियाँ पीठ की रीढ में से मस्तिष्क तक जाती हैं। शरीर का तथा मन का आरोग्य, अनारोग्य टिकना इसका संबंध प्रमुख रूप से पीठ की रीढ के आरोग्य पर अवलंबित है। प्राणायाम से इन तीन नाड़ियों का कार्य व्यवस्थित अकुंठित चालू रहता है। तथा लौकिक एवं पारलौकिक सुख-सन्तोष की वृद्धि होती है। यह किसी को भी प्रयत्न करने पर अनुभव में आ सकता है। परन्तु आहार, अन्न-पानी, व्यायाम, निद्रा, भाषण आदि सब बातें शास्त्रोक्त पद्धति से समुचित प्रमाण में सुनियंत्रित रखनी चाहिए। अधिक जानकारी के लिए 'शिवस्वरोदय' ग्रंथ देखिए।

दीर्घश्वसन– इस में दो प्रकार हैं। कुंभक न करते हुए, केवल पूरक, रेचक बिलकुल सावकाश, नाक को हाथ न लगाते करना यह एक प्रकार है और कुंभक के साथ करना यह दूसरा प्रकार है। (नाक को उँगलियाँ न लगाते) पहिले प्रकार का व्यायाम, अधिक करने के लिए नाडीशोधन व्यायाम कहा जाता है। परन्तु उन में उँगलियों का उपयोग किया जाता है। कुंभक के साथ दीर्घश्वसन, यह प्राणायाम का ही एक प्रकार है। उसे उज्जाई प्राणायाम कहते हैं। यह चलते समय या खड़े रहकर भी किया जा सकता है। दीर्घश्वसन के संबंध में पश्चिमी विद्वानों का मत आचमन अध्याय में दिया है।

प्राणायाम तथा दमा (रोग)– दमा बीमारी ठीक करने में सहायक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

होनेवाला प्राणायाम करने का एक यंत्र अभी तैय्यार हुआ है। नाक से साँस लेकर मुख से रेचक करने के प्राणायाम के एक प्रकार से वह बनाया गया है, ऐसा लगता है। एक नलीमें सावकाश बहुत धीरे फूँक लगानी पडती है तथा साँस नाक से लेनी पडती है।

वैदिक सनातन धर्मशास्त्र यह आरोग्यशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि (शास्त्रों के) मानव की सर्वांगीण उन्नति के लिए उपयुक्त सभी शास्त्रों का सार-सर्वस्व है। इनके पालन से व्यक्ति तथा समाज का कल्याण होगा। प्राणायाम के बाद संकल्प करना चाहिए।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १७

सन्ध्या का संकल्प

कोई भी कर्म करने से पहले उस कर्म का तथा वह किसलिए करना है, इस संबंध में वाचा से उच्चारित जो निश्चित विचार उसे संकल्प कहते हैं। देशकालादि का उच्चार करते हुए, संकल्प का उच्चार कर, हाथ में से पानी छोडना इसे संकल्प छोडना कहते हैं। यह पद्धति आसेतु हिमाचल चल रही है।

इस पद्धति को शास्त्राधार नहीं है ऐसा गीता प्रेस-नित्यकर्म ग्रंथ में काशीनगरी में स्थित प्रसिद्ध पंडितत्रयी ने कहा है। इस लेखक को भी कहीं आधार प्राप्त नहीं हुआ है। आधार प्राप्त नहीं हुआ इसलिए बिलकुल नहीं है, ऐसा मानना भी उचित नहीं है। कोई भी संकल्प प्रथम मानसिक ही होता है; उच्चार से उसे वाचिकता तथा पानी छोडने से कायिकता आती है। इसलिए रूढ पद्धति उचित है। संकल्प के प्रमुख तीन प्रकार मतभिन्नता के कारण दिखाई देते हैं।

(१) कुमारिलभट्ट मतानुसार– 'ममोपात्त-दुरितक्षयार्थम्'

(२) श्रीमत् शंकराचार्य मतानुसार– 'श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थम्'

(३) गुरूमतानुसार-विधिसिद्ध्यर्थम् विधि सिद्ध होने के लिए।

महाराष्ट्र में तथा अन्यत्र बहुधा सभी धर्मकर्म में जो पद्धति है, उसमें कुमारिल भट्ट तथा भाष्यकार मत इनका संयोग है। 'ममोपात्र-दुरित-क्षयद्वारा श्री परमेश्वर प्रीत्यर्थं प्रातः (मध्याह्न, सायं) सन्ध्याम् उपासिष्ये, अथवा (विशिष्ट) कर्म करिष्ये' ऐसी पद्धति है। वही अच्छी है। पाप का नाश हुए बिना परमेश्वर कृपा नहीं होती है। तथा पापक्षय के हेतु से पुण्य कर्म किए बिना, पाप का नाश होता नहीं है।

येषां तु अन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः भजन्ते मां दृढव्रताः।। (भ. गी.)

पुण्यकर्म करते हुए जिन्होंने अपने पापों का नाश कर लिया है, वे सुखदुख, यशअपयश आदि द्वंद्वों से तथा मोह से (मोह = अज्ञान) मुक्त होते हैं तथा दृढनिष्ठा से मुझे भजते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पापनाश-चित्तशुद्धि-ज्ञान-मोक्ष ऐसा क्रम है। 'चित्तस्य शुद्धये कर्म।' सभी नित्यकर्म पापक्षय करते हुए चित्तशुद्धि के लिए है। सन्ध्या के आचमनादि प्रत्येक कर्म पाप संहारक है; उसमें भी गायत्री-जपध्यान जैसा पाप संहारक साधन द्विजों के लिए दूसरा नहीं है।

संकल्प के बाद मार्जन करना पडता है, अतः उसीका वर्णन आगे दिया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १८

मार्जन तथा मंत्राचमन

रक्षस्तमो-मोहजातान् जाग्रत-स्वप्न-सुषुप्तिजान्।
वाङ्मनः कायजान् दोषान् नवैतान् मार्जनं हरेत्।। (स्मृतिसंग्रह)

सन्ध्या के विविध अंगों में मार्जन, मंत्राचमन, तथा अघमर्षण ये कर्म बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। मार्जन याने पोछपाछकर साफसुथरा बनाना, पवित्र, निर्मल करना, स्नान करने से थकावट, आलस आदि दूर होकर उत्साह बढता है। शरीर का शुद्ध तथा अशुद्ध रक्त जोर से बहने लगता है तथा उष्णता बढ़ जाती है। और नाडियों में स्थित दोष दूर करने के लिए कुछ समय तक उस गति की आवश्यकता होती है।

मार्जन में विधि को महत्त्व है ही, परन्तु मंत्रदेवताओं की तथा इन्द्रिय देवताओं की प्रसन्नता और हृदय की भावना इन्हें अधिक महत्त्व है। रक्तप्रवाह की बढ़ी हुई गति मार्जन से योग्य प्रमाण में आ जाती है। तथा शीतलता आती है। इसे वैज्ञानिक प्रयोगों से भी सिद्ध किया जा सकता है। भावनाओं का उद्रेक नियंत्रित होकर शान्तिपूर्वक विचार तथा चिन्तन करने के लिए मन और चित्त समर्थ हो जाता है। जल देवता, आकाशस्थ देवता, हृदयस्थित देवता, शरीरस्थ देवता प्रसन्न होकर साधक को उसके कार्य में सहायक होते हैं। मार्जन के मंत्र में प्रमुख रूप से जलदेवताओं के ही मंत्र हैं। उन में अभ्युदय तथा निःश्रेयस इनकी प्राप्ति के लिए और पापविनाश के लिए प्रार्थना है। पापों का फल दुःख और पुण्य का फल सुख यह सिद्धान्त होने से, पापनाश होते ही भविष्य में आनेवाले दुःखों का नाश अवश्य होगा। मनुष्य की देह में २/३ से अधिक जल का अंश है, क्योंकि जल से ही प्राणों का पोषण होता है। प्राण जीवित रहते हैं। रक्त, वीर्य, पित्त, कफ, मूत्र आदि सभी रसमय, जलमय ही हैं। रक्ताशयादि सभी अवयव जल से ही जुडे हुए हैं। जपध्यान में तन्मयता, एकाग्रता प्राप्त होने के लिए जलदेवताओं की प्रसन्नता होनी ही चाहिए। अपनी पूरी शक्ति लगाकर, प्रसन्नता से एकाग्र चित्त से कर्म किए बिना इष्ट फल पूर्णांश में मिलता नहीं है। चित्त तथा प्राण इन में प्रसन्नता रहने के लिए मार्जन की तथा उसके

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मंत्रों की आवश्यकता है, परन्तु उन मंत्रों का अर्थ मंत्र कहते समय ध्यान में आना चाहिए।

ऐसी भावना रखनी चाहिए कि जलदेवताओं के प्रसाद से मैं पूर्ण निष्पाप होकर एकाग्र चित्त से परमात्मा की उपासना करने लायक हो गया हूँ; पाप दुःखादि अब मेरे पास आनेवाले नहीं हैं। इस भावना से मंत्रार्थ चिंतनपूर्वक मंत्रोच्चार करते हुए, उन देवताओं की प्रार्थना कर निश्चित स्थान पर दर्भ से पानी छिडकना ही मार्जन करना है।

मार्जनविधि– प्रथम मार्जन में 'आपोहिष्ठा' आदि तीन मंत्र हैं। प्रत्येक में तीन पाद हैं। प्रत्येक चरण के पूर्व ओंकार लगाकर सात चरणों से मस्तक पर, आठवे से पैरों पर तथा भूमिपर और नौवे चरण से फिर से मस्तक पर दर्भ से पानी छिडके। दूसरा प्रकार- ओंकारपूर्वक प्रत्येक चरण से क्रम से १-मस्तक, २-भूतौपादयोः ३-आकाशेहृदये, ५-भूमौपादयोः ६-मस्तके, ७-मस्तके, ८-आकाशेहृदये, ९-भूमौ, पादयोः इन स्थानोंपर मार्जन करें।

दूसरा प्रकार अधिक श्रेयस्कर है ऐसा इस लेखक को प्रतीत होता है, क्योंकि इस में हृदय पर भी मार्जन है; इसके अलावा याज्ञवल्क्य कहते हैं कि,

अधोभागे विसृष्टाभिः असुरा यान्ति संक्षयम्।
सर्व तीर्थाभिषेकं च उर्ध्वसंमार्जनात् भवेत्।।

अधोभाग में भूमिपर प्रोक्षण करने से असुरों का नाश होता है। तथा ऊपर आकाश में छिडकने से सभी तीर्थों में स्नान करने का फल मिलता है।

प्रोक्षण कैसे करें?– बीच की दो उंगलियाँ तथा अँगूठे से दर्भ पकड कर बाए हाथ में लिए आचमनी में रखे पानी में, दर्भों के अग्र हर समय डुबाकर उन से प्रोक्षण करे। जलाशय के किनारेपर सन्ध्या करते समय, दर्भ हर समय जलाशय में डुबाकर मार्जन करें।

नल से गिरनेवाले धाराजल से अथवा वर्षा के धारा जल से मार्जन नहीं करना चाहिए। (प्रयो. पारि. इ.) किसी भी ऊपरसे नीचे गिरनेवाली पानी की धारा के जल से सन्ध्यादि कोई भी कर्म नहीं करें। नल के नीचे बैठकर स्नान न करें। वर्षा में भी स्नान निषिद्ध हैं। परन्तु धूप और वर्षा दोनों रहनेपर स्नान निषिद्ध नहीं है। उस गौण स्नान को दिव्य स्नान कहते हैं। बाएँ हाथ में (हथेलीपर) पानी लेकर जो सन्ध्या की जाती है वह वृषली है।

उस से देव तृप्त न होते हुए असुर तृप्त होते हैं। इसलिए बाए हाथ के जल से मार्जन न करें। जिस समय पात्र मिलना असम्भव होगा, उस समय आपद्धर्म

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
के रूप में चलेगा। मार्जन के लिए पानी कैसा हो यह आचमन अध्याय में देखिए।

मार्जन से लाभ– राक्षस, तम तथा मोह इनके कारण वाणी, मन तथा देह इन से घटित होनेवाले, जागृति, स्वप्न तथा निद्रा इन अवस्थाओं में होनेवाले दोष मार्जन से दग्ध होते हैं। (श्लोक प्रारंभ में है।)

क्रोध यह विकार पित्त से, पित्तप्रकोप होने से, उत्पन्न होता है। बहुत क्रोध आनेपर 'पित्त प्रकोप हुआ है' ऐसा कहा जाता है। क्रोध से ऊष्णता बढती है, मस्तक भडक उठता है। क्रोध आनेपर मस्तक पर पानी लगाए तथा आँखें, होंठ और हृदय पर पानी छिडके। यह प्रयोग एकबार बिना मंत्र के करें और फिर से दुबारा मार्जन के मंत्रों से अर्थचिंतनपूर्वक करें, तब दोनों का अन्तर ध्यान में आ जाएगा।

अनुभव– मुंबई के एक लखपति वृद्ध ब्राह्मण ने कहा कि 'मैं बहुत क्रोधी था; तथा क्रोध निकल जाने पर मुझे ही बहुत बुरा लगता था। अन्त में मैंने नियम किया कि क्रोध आते ही, शरीर पर रहनेवाले वस्त्रों के साथ ठण्डे पानी से स्नान किया जाए। (वे नित्य गरम पानी से स्नान करते थे।) प्रथम एक दिन में उन्हें १७ बार स्नान करना पडा, परन्तु अब कुछ वर्ष बीत जाने पर ७५% कमी आ गई है। ठण्डे पानी से स्नान करने पर क्रोध तत्काल शान्त हो जाता है। तथा अकाज घटित नहीं होता है। इसीलिए ही प्रथम मार्जन के बाद क्रोध की देवताओं को प्रार्थना करते हुए अभिमंत्रित जल प्राशन करने की एक विधि है, उसे मंत्राचमन कहते हैं। कोई उसे अंबुप्राशन, जलप्राशन कहते हैं।

मंत्राचमन– दाहिनी हथेली पर आचमन इतना जल विशिष्ट मंत्र से अभिमंत्रित कर, आचमन की तरह ही परन्तु एक बार ही पीने पर क्रोधादि विकार वश में आ रहे ऐसा समझ कर या न समझते, रात्रि तथा दिनमें किए पापों के विनाश के लिए विशिष्ट देवताओं की मंत्र में प्रार्थना की गई है। उन देवताओं के प्रसाद से क्रोध की उत्पत्ति होना ही बन्द होनेपर क्रोधप्रेरित पापाचरण, हिंसा आदि अपने आप बन्द होंगे।

तीनों सन्ध्या में मंत्र अर्थ के साथ प्रयोग में दिए हैं। मंत्राचमन के बाद फिर से मार्जन है; वह होने पर अघमर्षण है। उसका वर्णन अगले अध्याय में है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : १९

✤

अघमर्षण (पाप-पुरुष-निरसन)

यथाऽश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः।
तथाऽघमर्षणं सूक्तं सर्वपापापनोदनम्।। (ल. व्यास-स्मृ.)

अघमर्षण-सूक्त यज्ञश्रेष्ठ अश्वमेधयज्ञ की तरह सभी पापों का संहार करनेवाला है। रज-तम की प्रबलता से मनुष्य अपार पापपर्वत जानकर या अनजाने में रचता रहता है। इसलिए सच्चिदानन्दस्वरूप होकर भी परमात्मा से दूर विभक्त जैसा रहता है। और यहाँ तथा मरने के बाद अपार यातनाएँ भुगतता है। सर्वभूत हित रत वेदोंने तथा त्रिकालदर्शी ऋषियों ने सभी पापों का संहार करनेवाला जो अत्यंत सरल साधन सुलभ कर रखा है, वह है अघमर्षण-सूक्त! पाप का संहार करनेवाला इसलिए अघमर्षण। 'सर्वेनसामपध्वंसि' ऐसा उसका अर्थ कोश में भी दिया हैं। तथा कोश में ही 'जप्यं त्रिषु (कालेषु) अघमर्षणम्' उसका त्रिकाल जप करना चाहिए, ऐसा कहा है।

विधि- आचमन की मुद्रा जैसा हाथ बनाकर जलप्राशन करें तथा वह हाथ नाक के पास ले जाएँ। तथा श्वासनिरोध कर अथवा निरोध न करते हुए अघमर्षण मंत्र का जप, अर्थचिन्तन के साथ, एक बार अथवा तीन बार करें। तथा ऐसा भाव धारण करें कि यह जल नाक की बाँई ओर से अन्दर प्रवेश कर, शरीर में स्थित पापसंचयरूप पुरुष को नाक की दाहिनी ओर से बाहर निकाल रहा है तथा उस जल की ओर न देखते हुए, दाहिने नाक के छिद्र से उस पर साँस छोडे और वह जल अपने बाँई ओर जोर से जमीन पर फेंक दे।

परम साक्षात्कार होने में मल, विक्षेप तथा आवरण यह तीन महादोष बाधक होते हैं। सन्ध्या करते रहने से इन तीनों का ही नाश होता हैं। अघमर्षण से मलविक्षेप दूर होता है। एकाग्रता प्राप्त होती है तथा प्रसन्नता निर्माण होती है। चित्त प्रसाद से दुखोंका का नाश होता है। सदा प्रसन्नता यह पापनाश होने का लक्षण है। तीनों सन्ध्याओं में अघमर्षण करना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri

पाप-पुरुष ध्यान चिन्तन (यह ऐच्छिक है)— पाप-पुरुष के साकार रूप का वर्णन स्मृति में भी किया है। उसके दो पैर होकर सभी अवयव पाप के ही बने हैं। उपपातक रोम या रोयाँ हैं। डाढी, मूँछें, तथा आँखें गहरे लाल रंग की हैं, वह कालाकलूटा है, हाथ में ढाल-तलवार है। तथा वह बाँई बगल में रहता है।

अगले अध्याय में अर्घ्यदान के संबंध में वर्णन है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २०

अर्घ्यप्रदान तथा प्रदक्षिणा

अर्घ्य क्यों देना चाहिए? मन्देह नामक तीस कोटि राक्षस सूर्य को उदित होने से रोकने तथा उस का भक्षण करने का प्रयत्न उदय से पहले तथा अस्तकाल तक करते हैं।

ॐकारोऽथ व्याहृतयः गायत्री सशिरास्तथा।
आदित्यरक्षणार्थं तु सायंप्रातर्दिने दिने।।
सृष्टाः स्वयंभुवा पूर्व ब्रह्मणः तन्मुखं स्मृतम्।।

प्रतिदिन सन्ध्या तथा प्रातः काल में आदित्य का रक्षण करने के लिए स्वयंभू ब्रह्मदेव ने ॐकार, व्याहृती, गायत्री तथा गायत्रीशिर इन मंत्रों की उत्पत्ति की। (योगी, याज्ञ.) गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित किया पानी उनकी ओर फेंकनेसे उस गायत्री अस्त्र से उनका वध किया जाता है। उस जल का प्रत्येक बिंदु वज्र बनकर उन मन्देहों को मार कर मन्देहारुण नामक द्वीप (टापू) में गिर जाता है।
(सं. र. मा. पृ. २१६; देखें) तीन अर्घ्य क्यों?

एकं तु शस्त्रनाशाय द्वितीयं हयनाशने।
राक्षसानां वधार्थाय दद्यात् अर्घ्यत्रयं बुधः।। (व्यासः)

उन राक्षसों के शस्त्रों के नाश के लिए एक अर्घ्य; घोडे आदि उनके वाहनों के नाश के लिए दूसरा तथा राक्षसों के नाश के लिए तीसरा; इस प्रकार तीन अर्घ्य सूर्योदय के पूर्व, अरुणोदय के बाद तथा सायंकाल में सूर्यास्त के समय में तीन अर्घ्य देने चाहिए। सायंकाल को फिर से क्यों? प्रातःसन्ध्या में दिए अर्घ्यों से यद्यपि वे मृत हो जाए; फिर भी उन्होंने प्राप्त किए वरों से ने सूर्यास्त के पहले शस्त्र, वाहनों के साथ जीवित हो जाते हैं तथा सूर्य को निगलने का प्रयास करते हैं। इसंलिए सायंकाल में भी तीन अर्घ्य देने चाहिए।

सूर्य के समय पर उदय होने तथा अस्त होने पर संपूर्ण जगत का जीवन कैसे अवलंबित रहता है यह 'सन्ध्योपासना' अध्याय में बताया गया है। कोई बडा अफसर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गाँव में आनेवाला हो, तो उस गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति, नेता, अन्य सरकारी अधिकारी उनका स्वागत करने के लिए हार-गुच्छ लेकर समय के बहुत पहले स्टेशन पर उपस्थित हो जाते हैं, तब जिस पर सारे विश्व का जीवन अवलंबित हो, उसके उदय के समय उसके शत्रु का नाश कर जगत के तथा अपने कल्याण के लिए, पानी का अर्घ्य देना यह द्विजों का तथा 'वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः' ऐसे ब्राह्मणों का प्रमुख कर्तव्य न कर के कैसे चलेगा?

अर्घ्य क्यों देना चाहिए यह देख लेने पर सहज ही सिद्ध हो जाता है कि वह प्रातःकाल में अरुणोदय के समय में ही देना आवश्यक है। गुरुचरित्र ग्रंथ की पंक्तियों का रहस्य समझ में न आने के कारण यह भ्रम फैल गया है कि सूर्योदय हुए बिना अर्घ्य नहीं देने चाहिए; परन्तु 'अरुणो भास्करेऽपि स्यात्' (अमरे) अरुण सूर्यरथ का सारथि है; वह दिखाई देना सूर्योदय का पूर्वचिह्न है, इसलिए उस पंक्ति के सूर्य शब्द का अर्थ 'अरुण' करना अनिवार्य है। अन्यथा अनेक शास्त्रवचनों से विरोध हो जाता है। अरुणोदय काल सूर्योदय के पूर्व ३ से ४ घटिका तक माना गया है, अतः अरुणोदय के आरंभ में सन्ध्या का आरंभ करने पर अरुणोदय समाप्ति तक अर्घ्य देना सम्भव होता है। अरुणोदय के लिए एक घटिका शेष रहती है। पिछले सूर्योदय से ५५ घटिका (पंचपंच उषःकाल); षट्पंच (५६) घटिका होते ही अरुणोदय; तथा सप्त पंच (५७) प्रातःकाल होता है। सायंकाल में सूर्यास्त होने का समय यह अर्घ्यदान के लिए उत्तम काल है। वह साध्य न हो तो प्रायश्चित्तार्घ्य!

आशंका– आदित्यरक्षणार्थ उत्पन्न ओंकार व्याहृति तथा गायत्री मंत्र इनका उपयोग किया जाता है। परन्तु गायत्रीशिरमंत्र का क्यों नहीं किया जाता है? शास्त्रों ने तो यह विधि बताई है, पता नहीं क्यों ध्यान नहीं दिया जाता। आश्वलायन सूत्रकार भी इसकी आवश्यकता बताते हैं।

अर्घ्य कैसे दिए जाने चाहिए? *(प्रातःकाल में)*

ततः तिष्ठन् जलं गृह्य प्राङ्मुखः अंजलिना स्मरन्।
मण्डले सुस्थितं तेजः स्फाटिकं ज्योतिषा समं।
उत्तीर्य तच्च संप्राप्तं दक्षिणेन पथाऽञ्जलिम्।।
व्याहृत्यादि जपेत् मंत्रं स्मृत्वैवं, परितो रवेः।
मन्देहान्युध्यतः क्रूरान् निक्षिपेत् तेष्वबंजलीन् (तेषुअप् अंजलीन्)
षोडशाक्षर मंत्रेण पुनराकृष्य सत्वरः।
पुनर्जलं गृहीत्वैवं तेजोमंत्रं च संस्मरन्।।
एवं त्रिवारं आवर्त्य दग्ध्वा तान् असुरान् द्विजः।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मंत्रेणाऽऽकृष्य तत्तेजः स्थानादौ स्थापयेत् स्मरन्।
पूर्ववत् श्वासमार्गेण स्मृता संस्थाप्य चात्मनि।
प्रदक्षिणं समावर्त्य जलं गृह्याऽऽचमेत्ततः।।

(इति आश्वलायनः सं. र. मालायाम्)

अर्थ– (प्रातःसन्ध्या में अर्घ्य देते समय) दोनों हाथों की तर्जनी तथा अंगूठे अलग रखकर अंजलि में पानी लेकर मुँह पूर्व की ओर करते हुए खड़े रहिए। बाद में अपने हृदय में स्थित सूर्यमण्डलान्तर्गत दैदीप्यमान स्फटिक जैसा गायत्री का तेज दाहिने नाक के छिद्र से अंजलि में लिए पानी में आ रहा है ऐसा भाव धारण करते हुए प्रणवव्याहृतीयुक्त गायत्री मंत्र से वह पानी अभिमंत्रित करते हुए, सभी ओर से सूर्य को घेरकर लड़नेवाले क्रूर मंदेह राक्षसों पर उसे फेंकिए-छिडकिए। बाद में उस गायत्री अस्त्ररूप फेंके हुए तेज को 'ॐ आपो ज्योती सुवरोम्' इस सोलह अक्षर के मंत्र के द्वारा आकर्षित कर, वह तेज नाक के बाए छिद्र से हृदय में पूर्वस्थान पर चला गया है, ऐसा भाव धारण करें। तथा फिर से अंजलि में पानी लेकर तेजोमंत्र से गायत्री का स्मरण करते हुए पूर्व की तरह उसे पानी में ले आए। फिर से उसे फेंकिए तथा सोलह अक्षरों के मंत्र से आकर्षित करें। हृदय में स्थापित करें। इस प्रकार तीन बार करें। तीसरा अर्घ्य देने के बाद वह तेज आकर्षित कर हृदय में स्थापित करें। दैत्यों को, असुरों को जलाने का प्रायश्चित्त समझ कर अपने चारों ओर प्रदक्षिणा कर आचमन कीजिए। ऐसी आश्वलायन, बौधायन, आदि की आज्ञा है। इसे ही अन्य लोगों ने अस्त्रोपसंहरण, अस्त्रोपसंहार ऐसा कहा है। अस्त्रविद्या में भी फेंके हुए, छोडे हुए अस्त्र को आकर्षित कर फिर से अपने पास ले आने के विविध मंत्र हैं। वे मंत्र सिद्ध न रहने पर छोडा हुआ अस्त्र वापस लौटता नहीं है। यह महाभारत के युद्धवर्णन से भी मालूम हो जाता है। कोई ब्रह्मदण्डास्त्र मंत्र, कोई ब्रह्मास्त्र मंत्र, ऐसे विविध मंत्र इस गायत्री अस्त्र के आकर्षण के लिए दिए हैं। परन्तु वे बहुत बडे तथा कठिन हैं। इसलिए यह छोटासा सन्ध्या में दिया मंत्र लिया है।

हृदय से गायत्री तेज बाहर निकालते समय 'उत्तिष्ठ देवि गन्तव्यं पुनरागमनाय च' ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए। तथा अन्त में हृदय में स्थापन करते समय 'उत्तिष्ठ देवि स्थातव्यं प्रविश्य हृदयं मम' ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसा कुछ सन्ध्या भाष्यकार आदि कहते हैं। आश्वलायन इन्होंने बताए अनुसार भाव धारण करने में ये प्रार्थनाएँ उपयुक्त हैं, इसलिए उनका उपयोग करना आवश्यक है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अर्घ्य देते समय किस प्रकार खडे रहना चाहिए?

ईषन्नम्रः प्रभाते स्यात् मध्याह्ने ऋजु-संस्थितः। उपविश्य तु सायाह्ने।

(१) सुबह थोडा झुककर खडे रहिए, मध्याह्न सन्ध्या में सीधे तनकर खडे रहे तथा सायंसन्ध्या में बैठकर अर्घ्य देना चाहिए, यह साधारण प्रकार है।

(२) एक पैर पर खडे होकर दूसरे पैर की एडी जमीन को या आसन को स्पर्श न करते, केवल पंजे की उंगलियों को टिकाए।

(३) केवल एक ही पैर पर खडे रहकर;

(४) केवल एक ही पैर के पंजे पर खडे रहकर अर्घ्य दीजिए।

यह चारों प्रकार उत्तरोत्तर अधिक श्रेष्ठ हैं। इसका कारण यह है कि जितने अधिक कष्ट, परिश्रम अधिक उतना अधिक फल, ऐसा मनीषि कहते हैं। (गोभिल स्मृति.) ध्यान में रखिए– सूर्योपस्थान तथा गायत्री जप भी इस पद्धति से करना अधिकाधिक लाभदायक सिद्ध होगा। इसलिए जहाँतक सम्भव हो वे इस पद्धति को अपनाए।

एक पैर पर खडे रहने के लिए संतुलन रखना पडता है। तथा चित्त की एकाग्रता हुए बिना संतुलन प्राप्त करना सम्भव नहीं है। दृष्टि स्थिर होने पर चित्त भी स्थिर होता है। इसका कारण यह है कि 'नेत्रे जागरितं विद्यात्' (श्रुति) जागृति में मन-चित्त दृष्टि में– नेत्र में होता है। इसलिए सामने क्षितिज के निकट लाल हुए भाग में दृष्टि स्थिर करें, टक लगाकर (लगातार एकाग्र होकर) देखने से संतुलन सध जाता है। ऐसे समय देखने से दृष्टिदोष भी कम हो जाते हैं। अर्थात् नेत्र में जल आनेपर टक लगाकर देखना बन्द करना चाहिए। अन्यथा आँखें बिगड जाती हैं। इस प्रकार टक लगाकर देखने को 'त्राटक' कहते हैं। त्राटक से बाघ, शेर आदि पशु भी वश में आ जाते हैं। कई रोग ठीक हो जाते हैं। आदि कई फायदे होते हैं। इसका अनुभव कई व्यक्तियों ने लिया है। ध्यान में रखें– प्रातःकाल तथा मध्याह्न में अर्घ्योदक जल में पडना चाहिए। थाली (ताम्र-अभिषेक पात्र) में पानी भरकर रखें। तथा जल ऊपर ऐसे उछालें जिससे वह अर्घ्यजल थाली के पानी में पडे। अथवा भूमिपर पानी छिडके तथा अर्घ्योदक वहाँ पडे ऐसा उछाले। मध्याह्न सन्ध्या में एक अर्घ्य दें; मंत्र प्रयोग में दिया है। मध्याह्न सन्ध्या रात्रि में करने का प्रसंग आ जाए तो 'आ कृष्णेन' मंत्र से अर्घ्य दें तथा जमीन पर (गोभिल) अर्घ्य देते समय अंगूठा तथा तर्जनी इनका स्पर्श जल को न होने दें। और अंगूठा तथा तर्जनी का स्पर्श भी एक दूसरे को नहीं होना चाहिए। (दे. भा. ११।१६।४९) अंगूठा तथा तर्जनी के संयोग से अर्घ्यजल रुधिर के समान होता है तथा राक्षसों का नाश न होते हुए वे पुष्ट होते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पानी यदि न मिले– पानी मिलना बिलकुल असम्भव हो तो अंजली में धूलि लेकर अर्घ्य दीजिए। (यात्रा में, कैदखाने में, युद्ध में आदि) (अग्नि स्मृ.)

सुबह जल में अर्घ्य क्यों दे? सन्ध्याकाल में क्यों नहीं? उन सब का नेता नेत्रप नामक राक्षस शुक्राचार्य की आज्ञा से जल में रहता है। गायत्री अस्त्र का जल पानी में पडने से नेत्रासुर मरकर टापू में पडता है। सुबह मरे हुए राक्षस सायंकाल में मन्देहारुण टापू में जीवित हो जाते हैं; इसलिए सायंकाल में अर्घ्य भूमिपर दें।

मध्याह्न में एक अर्घ्य क्यों? मध्यान्ह में राक्षसों का वध नहीं करना होता है; वे मरे हुए होते हैं, अतः एक अर्घ्य सूर्य की पूजा के रूप में दिया जाता है। गायत्री से अर्घ्य देने पर वह अस्त्र होता है। परन्तु उसकी मध्याह्न सन्ध्या में आवश्यकता नहीं होती है।

प्रदक्षिणा

यह सभी राक्षस ब्राह्मण होने के कारण, अर्घ्य देनेवाले को ब्रह्महत्या का पातक लगता है। उसका प्रायश्चित्त समुद्रवलयांकित पृथ्वी की प्रदक्षिणा तथा सूर्यप्रदक्षिणा यह है। पृथ्वी की प्रत्यक्ष प्रदक्षिणा अथवा सूर्य की प्रदक्षिणा करना असंभव है, इसलिए हाथ में पानी लेकर उसकी अखण्ड धारा भूमि पर गिराते हुए अपने चारों ओर प्रदक्षिणा करें, परन्तु उस समय ऐसा भाव रखें कि मैं यह पृथ्वी प्रदक्षिणा कर रहा हूँ। तथा चारों ओर हुई गीली भूमि यह मानो सागर का आवरण है।

'सूर्यः आत्मा जगतः तस्थुषः च' सूर्य सम्पूर्ण विश्वकी आत्मा होने से वही जीवात्मा-रूप से मुझ में है। उसे ही मैं प्रदक्षिणा कर रहा हूँ। इस भाव से 'असावादित्यो ब्रह्म' (यह तथा मेरे हृदय में विद्यमान सूर्य ब्रह्म है।) यह मंत्र कहते एक प्रदक्षिणा करनी चाहिए। इस में ब्रह्मात्मैक्य चिन्तन सहज घटित होता है।

अद्वैत प्रतिपादकः अधिक आधार–

आदित्यान्तर्गतं यच्च ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्।
हृदये सर्वभूतानां जीवरूपेण तिष्ठति (याज्ञ. सं.)
ममैवांशोः जीवलोके जीवभूतः सनातनः।। (भ. गी.)

कालातिक्रम प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में गायत्री जप अध्याय में साधार विवेचन किया गया है। अब सन्ध्या में सर्वश्रेष्ठ कर्म जो गायत्री जप, उसकी तैय्यारी में धीरे धीरे लग जाना चाहिए; उस में भी प्रथम आसन तथा आसन विधि।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २१

बैठने के लिए आसन तथा आसनविधि

सन्ध्या, पूजा, जप, ध्यान आदि कर्मों में बैठने के लिए तथा खडे रहने के लिए निम्नलिखित जो भी आसन प्रिय हो, उसका उपयोग करे। (व्यास, नारद, दे. भा.; प्रचेता, गु. च., रा. चं, ब्रह्मयामल आदि ग्रंथों के वचन आधाररूप हैं।)

कुशासन (दर्भासन), कम्बल आदि ऊनी वस्त्र, कृष्णाजिन, व्याघ्राजिन, रेशमी वस्त्र, ताड के पत्ते, काष्ठ (पाट), जूट या पटसन, वेत अथवा भस्म का आसन चल सकता है। काले वर्ण का वस्त्र न हो, नीला वर्ण ब्राह्मणों को त्याज्य।

निषिद्ध आसन– कळक या बाँस, कपास, केवल भूमि, पत्थर, पाषाण, घाँस, सूखे पत्ते, गोबर, टूटा-फूटा, फटा, मलिन, पीपल या रुई के काष्ठ का, लोहे के कीले लगाया, छिद्रयुक्त, फटा पीढा आदि का उपयोग आसन के लिए न करें। आसन गुण- कृष्णाजिन से ज्ञानसिद्धि (कृष्णाजिन अर्थात् काली पीठ का मृगचर्म; पुत्रवान् गृहस्थ को केवल मृगाजिन पर नहीं बैठना चाहिए।), व्याघ्राजिन से सब प्रकार की सिद्धि, वस्त्रासन से रोगनाश, वेत के आसन से ऐश्वर्यवृद्धि, कुशासन से व्याधिनाश तथा पुष्टि; कंबल से दुःखनाश; भस्मासन से व्याधिनाश; सब से उत्तम चित्रकंबल!

निषिद्धासन के दुष्परिणाम– वंशासन से दारिद्र्यप्राप्ति; पाषाण के आसन से रोग-उत्पत्ति; केवल जमीन पर बैठने से धनहानि, यशोहानि; सूखे पत्रोंपर बैठने से चित्तभ्रम; कपास के आसन से जपादि निष्फल; अन्य निषिद्ध आसन से दुर्भाग्य, दारिद्र्य तथा चिन्ता इनकी उत्पत्ति होती है।

(लकडी का तख्ता) पाट– (काष्ठासन) अखण्ड, बिना जोड का, छिद्ररहित, योग्य काष्ठ का होना चाहिए। एक ही अखण्ड, लम्बी-चौडी तथा मोटी पट्टी लेकर उसका निचला भाग कुरेद कर चार खुर (पैर) बनाए। जिस से वह अखण्ड पीढ़ा बन जाता है। गूलर पेड की लकडी से बना पीढा सर्वोत्तम है। ऐसा पीढा निषिद्ध न होने पर भी उस पर अधिक देर तक बैठने से पैर में पीडा होने लगती

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। इसलिए मोटा आसन होना चाहिए। बहुत देर तक रोज बैठनेवालों को पीढे का उपयोग न करना हितकारक है।

भगवत् गीता में बताए अनुसार नीचे दर्भासन, उसपर मृगचर्म अथवा व्याघ्रचर्म तथा उसके ऊपर कंबल की तह से बना आसन उपयोग में लाना सर्वोत्तम है। कोई भी आसन हो, वह मृदु तथा स्वच्छ होना चाहिए। केवल रेशम का आसन जमीन पर न बिछाए। रेशम उत्तम विद्युतवाहक होने से साधन से उत्पन्न होनेवाली शक्ति भूमि में चली जाती है।

आसन का प्रमाण (आकार)–

कुशाऽजिनाऽम्बरैर्युक्तं चतुरंगुलमूर्ध्वतः।
चतुरस्त्रं द्विहस्तं च सुदृढं मृदु निर्मलम्।। (नारद)

दो हाथ लंबा, चार अँगुल ऊँचा (मोटा) तथा चौकोना होना चाहिए। दो हाथ चौडा, तीन से पाँच अँगुल मोटा (ऊँचा) होना चाहिए। (काली पु.) उसी प्रकार वह मृदु तथा स्वच्छ होना चाहिए।

वस्त्रासन को दशा (छोरपर खुले धागे) होनी चाहिए। तथा वे पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर खुले, ऐसा आसन बिछाए। आसन पर बैठने से पूर्व द्विजों को गायत्री मंत्रसे तथा अन्य नाममंत्र से, जल प्रोक्षण करते हुए, वंदन कर आसन पर बैठना चाहिए।

आसन विधि–

सन्ध्या के प्रारंभ में ही यद्यपि आसन पर बैठना पडता है, फिर भी आसन विधि अर्घ्यदान के बाद करना पडता है। तथा उसके बाद गायत्री जप करें। इस से यह सिद्ध होता है कि गायत्री जप यही सन्ध्या का सब से प्रमुख कर्म है।

आसन विधि मंत्र में प्रथम पृथ्वी की प्रार्थना 'पृथ्वि त्वया' मंत्र से करते हैं। वह दोनों हाथ खोलकर सीधे फैलाते हुए, अँगूठे का अग्रभाग कनिष्ठिका (करांगुलि) के मूल पर रखकर, उँगलियों से भूमि को स्पर्श करते हुए प्रार्थना करें। 'अपसर्पन्तु' मंत्र से भूमि पर रहनेवाले कष्टदायक तथा विघ्नकारक जीव-जंतु इन्हें उस मंत्रशक्ति से भगा देना चाहिए। इसलिए यह मंत्र कहते हुए बाएँ पैर की एडी जमीन पर, आसन से बाहर, तीन बार पटकिए। 'ऊर्ध्वकोशि' मंत्र से उग्र ऐसे चामुण्डा देवि की प्रार्थना कर उसे चोटी की गाँठ पर बिठाइए। भाव ऐसा हो कि वह रक्तमांस खानेवाली देवी चारों ओर, हवा में रहनेवाले मच्छर जैसे जीवों को तथा भूत प्रेत पिशाच को खाए। उससे भयभीत होकर सब भाग जाएँगे। 'अपक्रामन्तु' इस मंत्र से आकाशस्थ,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विघ्नकारक भूतादि को दूर निकल जाने की सूचना दी जाती है। यह मंत्र कहते हुए आकाश की ओर जरा उग्र तिरछी नजर से देखें तथा बाद में 'अस्त्राय फट्' यह अस्त्र मंत्र कहकर बाएँ हथेली पर दाहिनी अंगूठे के निकट की दो उँगलियाँ जोर से पटके; (ताली बजाने की तरह) तथा बाद में दाहिना हाथ चुटकी बजाते मस्तक के चारों ओर घुमाइए।

इस आसनविधि का प्रभाव बहुत अधिक है, आश्चर्यजनक है। असत्य न बोलनेवाला, नीतिसम्पन्न तथा सदाचारसम्पन्न रहकर उत्तम काल में १०८ गायत्री जप करते हुए सन्ध्या करनेवाला होगा, ऐसा ब्राह्मण सन्ध्या अथवा कोई भी जप, ध्यान, ग्रंथ पठन आदि कर्म करते समय कभी भी यह विधि करें, तब उसे अनुभव आएगा कि सिर के ऊपर मँडरानेवाली मक्खियाँ, मच्छर आदि फौव्वारे की तरह उडते रहने पर भी शरीर को स्पर्श भी नहीं करते हैं या आवाज नहीं करते हैं। सन्ध्यादि कार्य में तो यह होता ही है; परन्तु सोते समय केवल 'अपक्रामन्तु... निद्राकर्मसमारभे' ऐसा कहकर बिछौने पर चित लेटिए (पीठ जमीन पर टिकी हो, और दिग्बन्ध करें, जिस से कितने ही मच्छर, मक्खियाँ हों फिर भी खुले शरीर को स्पर्श भी नहीं करते हैं; अर्थात विनियोग के उच्चार से कहीं त्रुटि रह जाए तो उसी का फायदा वे अज्ञ जीव भी लेते हैं जिन्हें भाषा, अर्थ समझता नहीं है! इसलिए 'ब्रह्मकर्मसमारभे' के स्थान पर उचित परिवर्तन करना चाहिए।

और एक प्रकार– ऐसी प्रार्थना करें कि (हे राम! हे कृष्ण! हे पांडुरंग!) मच्छर-मक्खी आदि के रूप में आकर इस विशिष्ट सत्कर्म में काटते हो, विघ्न लाते हो; उसकी अपेक्षा तुम्हारे दिव्य रूप में आ कर तकलीफ दोगे तो अधिक अच्छा होगा! इन जीवों के रूप में कष्ट दोगे तो मेरा चंचल चित्त इस सत्कार्य में कैसे रमेगा? इस प्रकार प्रार्थना करते हुए अनुभव लेनेवाले कई वृद्ध तथा बिलकुल ५/६ वर्ष के बालक भी इन आँखों ने देखे हैं। आवश्यक परिवर्तन करते हुए ऐसी प्रार्थना सोने के समय में करने से मच्छर शीघ्र भाग जाते हैं यह चक्षुर्वै सत्यम् है।

बालकों को अधिक फल– बडे मनुष्यों की अपेक्षा ऐसी प्रार्थना का फल बालकों को अधिक मिलता है यह भी दिखाई दिया है। बालकों की देह तथा हृदय बडों की तरह मलिन नहीं होता है। 'कुडी वाढे कुबुद्धि वाढे' अर्थात 'शरीर बढने पर कुबुद्धि भी बढती है' लोकोक्ति की तरह अहंकार, राग, द्वेष आदि मानसिक रोग तथा पाप इन्होंने बालक के हृदय में निवास नहीं बनाया होता है, उनकी देह पर्याप्त शुद्ध होती है।

सर्वत्र भगवद्भावना का अभ्यास इन प्रार्थनाओं से सहज ही हो जाता है। यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भावना बचपन में ही बालक के हृदय में प्रस्थापित करना पालकों का महत् कर्तव्य है। सहज ही क्रम से विचार आया और वह अत्यन्त उपयुक्त होने से उसका अधिक विस्तार करना पडा।

श्रीमान् लेडबीटर इन्होंने इस मंत्र के दिव्य परिणाम `A Temple thought form' इस निबन्ध में सचित्र दिए हैं, उसे अवश्य देखें। कुछ अनुभव– 'अपक्रामन्तु' इन दो मंत्रों से आसन के चारों ओर शुद्ध भस्म की अखण्ड रेखा निकालने पर रेंगनेवाले जीव अन्दर नहीं आते हैं।

पिशाचबाधा हुए व्यक्ति को गुरुचरित्र सप्ताह आदि सुनाना हो और वह व्यक्ति आसन से उठकर जाने लगे, तो संपूर्ण आसनविधि उसके चारों ओर करें तथा भस्मरेखा बनाएँ, तब वह मनुष्य उठकर नहीं जा सकेगा। मोंढ़ा (पाट) समेत वह स्वयं उछलकूद करेगा, परन्तु आसन छोडकर उसे बाहर जाना सम्भव नहीं होगा, वह जाता नहीं है, वह नहीं गया है। यह भस्मरेखा निकालनेवाला कैसा हो यह इस अध्याय में दिया गया है। आसन कौनसा हो? प्राणायाम, जपादि बैठकर करते समय सहजासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन लगाकर बैठे। स्वस्तिकासन सब प्रकार से हितकारक है, क्योंकि वह योगासन होकर बहुत समय तक सहज बैठना सम्भव होता है, थोडासा गलत बैठने पर भी कोई नुकसान नहीं होता है। इसीलिए ही ऐसा लगता है कि सिद्धासन का उल्लेख बहुत थोडी स्मृतियों तथा पुराणों में मिला। पद्मासन अच्छा ही है। सहजासन का अर्थ है मनुष्य सहजरूप से पलथी मारकर बैठ सकता है वह स्थिति। प्रौढासन ब्रह्मयज्ञ के सिवा अन्य समय में न करें। एक पैर की जँघा पर अथवा घुटने पर दूसरा पैर रखकर बैठना, वह है प्रौढासन। वंद्य, पूज्य, आदरणीय व्यक्तियों के सामने, अथवा उनके निकट भी प्रौढासन में नहीं बैठना चाहिए। वैसे ही उनके सामने प्रौढासन में बैठने का प्रयत्न भी उनका अनादर अपमान करना माना जाना है।

आसन पर जलप्रोक्षण कर के बैठने पर न्यास करना चाहिए, इसलिए उसकी जानकारी अगले अध्याय में दी गई है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २२

✤

न्यास तथा मुद्रा

नाऽदेवोऽभ्यर्चयेत् देवं इति वेदविदो विदुः।। (दे. भा.)
देवो भूत्वा देवं यजेत्।।

न्यास याने स्थापन करना, रखना। जिस मंत्र का जप करना है उसके विविध भागों की, अंगों की स्थापना शरीर के विविध अवयवों पर करना ही न्यास करना है। हृदय तथा शरीर मंत्रमय, देवतामय कर के देवकार्य करें। देव बनकर देव की पूजा, उपासना करनी चाहिए। देव न हुए अदेव को देव का अर्चन नहीं करना चाहिए यह वेदविदों ने जान लिया था। कोई कहेंगे कि मंत्रमय बनने से देवमय बनना कैसे सम्भव है? मंत्र और देव, देवता भिन्न नहीं होते हैं, इसलिए यह सम्भव होता है।

न स्वर्गेषु न तीर्थेषु नौषधीषु नगेषु च।।
ऋषयो देवताः सन्ति मन्त्रा एव तु देवताः।।
साधकानां फलं दातुं तत् तत् रूपं धृतं सुरैः।।
मुख्यं स्वरूपं तेषां तु मन्त्रा एव न चेतरत्।। (मेरुतंत्र प्रकाश)

बोधायन स्मृति में यह सिद्धान्त अध्याय-४ में सिद्ध किया है।

अर्थ– ऋषि और देवता स्वर्ग में, तीर्थ में, औषधि में, वृक्ष में, पर्वत आदि में न होकर मंत्र ही देवता हैं। (मंत्र में ही ऋषि हैं।) साधकों की उनके अनुष्ठान का फल देने के लिए संबंधित मंत्रों की देवताओं ने वे रूप नमूने के तौर पर धारण किए हैं। फिर भी उनके मुख्य रूप याने मंत्र ही हैं, अन्य नहीं।

एक ही उदाहरण इस सिद्धान्त की सत्यता प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त होगा। देवराज जो इंद्र उसके सिवा अग्नि, वायु, यम, वरुण आदि सभी देव रावण के बन्दीगृह में थे। उनके स्वभावगुणों के अनुसार उन्हें लंका में सख्त-मजदूरी के काम करने पडते थे। उनका ऐश्वर्य, निवासस्थान, उनकी स्त्रियाँ, आदि सब रावण ने बलात्कार से छीन लिए थे। रावण, उसका पुत्र इंद्रजित आदि राक्षस देवों के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कट्टर दुष्मन थे। ऐसा होते हुए भी इंद्रजित अमर होने के लिए निकुंभिला में यज्ञ कर रहा था तथा उस अग्निकुंड में से दिव्य रथ उस अग्नि में से आधे से ज्यादा बाहर आ गया था! यह कैसे घटित हुआ? अग्निदेव बंदीखाने में होनेपर उनके तथा देवों के कट्टर दुष्मन को वह देव दिव्यरथ देने के लिए मन से भी तैय्यार होना असम्भव! मंत्र ही देवता होने से तथा वे मंत्र तपश्चर्या से तथा शुक्राचार्य गुरु की कृपा से उन्होंने सिद्ध किए थे, इसलिए वे उन्हें फल दे रहे थे। जो अग्निदेव लंका में बंदीगृह में सख्त मजदूरी की सजा भुगत रहा था, वह उस मंत्रदेवता का एक चेतन नमूना था इतना ही। स्वर्गस्थ सभी देव विविध मंत्रदेवता के ऐसे ही नमूने हैं।

मंत्र ही देवता– मंत्र में ही देवता होती है। तथा मंत्र से या मंत्र में वह प्रकट होती है। इसका अनुभव १९३२-३३ ई. से अनेक मंत्रों के संदर्भ में कई बार लिया था। १९३७ ई. में भिवंडी नगर में श्रीनाथ षष्ठी समारोह में जाना हुआ था, उस समय ह. भ. प. केशवदत्त महाराज सोनगीरकर इन्होंने पूछा, 'स्वामीजी, तुम्हें किसीने तीन लाख रुपये दिए तो आप क्या करेंगे?' उत्तर दिया, 'नहीं लूँगा।' 'मान लीजिए, उनका विनियोग सत्कार्य में करने के तुम्हारे अधिकार में तीन लाख रुपये दिए तो क्या करेंगे?' उत्तर दिया, 'उनके ब्याज को खर्च करते हुए, योग्य साधक को मंत्र अनुष्ठान कराने की प्रेरणा दूँगा जिससे मंत्रशास्त्र का पुनरुज्जीवन हो।' ऐसा जो स्पष्ट उत्तर दिया गया वह पूर्वानुभव से विश्वास होने के कारण ही दिया गया।

गत २८/२९ वर्षों में इस लेखक ने सैंकडों बार अनुभव लिया, इतना ही नहीं तो गत १६ वर्षों में इसके संबंध में आए, संगति प्राप्त किए अनेक स्त्री-पुरुष, आबालवृद्धों ने भी कई बार अनुभव लिया है कि मंत्र ही देवता, आदि; गायत्री मंत्र सिंद्ध होने पर कोई भी मंत्र सहज सिद्ध होता है।

ऋषि मंत्र में ही होते हैं, इसका अनुभव ऋष्यादि न्यास में लेने का प्रयत्न ही नहीं किया गया है। परन्तु जब प्रणव का ऋषि कौन, इस सम्बन्ध में श्रुतिस्मृतिपुराणादि ग्रंथों में और पोथियों में मतभेद दिखाई दिए, तब सन्देह निवृत्ति के लिए प्रयोग करना आवश्यक हो गया। तब अनुभव आया कि मंत्रर्षि उस मंत्र में ही होता है, तथा उसका स्थान मस्तिष्क में होता है, यह भी सहज सिद्ध हुआ। '... ऋषये नमः शिरसि' ऐसा न्यास करने की आज्ञा शास्त्रों ने क्यों दी, इसका पूरा स्पष्टीकरण प्राप्त हुआ। तथा उस समय उपर्युक्त मेरुतंत्र में दिया संपूर्ण वचन याद आया। काया पुलकित हुई तथा आनंदमग्नावस्था में कुछ समय चला गया। शास्त्रकारों के उपकार से कौन कैसे मुक्त होगा?

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१९०० ई. में 'गर्भाष्टमेऽब्दे' सन्ध्या पढाई गई थी। जिनके घर में वेदपाठशाला परम्परा से चालू थी, ऐसे शुद्ध, सदाचारसंपन्न, शूद्रप्रतिग्रहपराङ्मुख वृद्ध पुरोहितों ने पढाई थी। उस में 'अंगुष्ठाग्रे तु गोविन्दं' आदि न्यास, सप्तव्याहृति न्यास, ऋषि छंद देवतादि न्यास, गायत्री मंत्रांगों से करन्यास तथा हृदयन्यास, पढाया गया था। तथा उनका विस्मरण कभी नहीं हुआ था। वर्तमान पोथी-पुस्तकों में देखने पर बहुत काट छाट दिखाई दी; इसलिए अनुसंधान प्रारम्भ करना पडा। उस में यह दिखाई दिया–

गृह्यसूत्र में केवल गायत्री मंत्र से षडंगन्यास ही दिखाई दिया। कुछ निबन्धकारोंने न्यास कृताकृत ऐसा उल्लेख किया है। कुछ लोगोंने तो न्यास-मुद्रा अनावश्यक 'अवैदिकत्वात्' वेदों में नहीं कहा है, इसलिए; ऐसी कटु फटकार सुनाई। परन्तु ऐसे लोगों ने भी आचमन कहा है वह पुराणाचमन! श्रौताचमन क्यों नहीं, ऐसा पूछनेपर स्मृतिवचन तथा गृह्यसूत्र आधार सामने रखा गया।

केवल वेद ही धर्मशास्त्र नहीं है। वेद (श्रुति)-स्मृति-पुराण याने धर्मशास्त्र। 'श्रुतिस्मृती उभे नेत्रे पुराणं हृदयं स्मृतम्' आदि श्लोक तथा धर्मशास्त्रनिर्णय कैसे करें, इसकी जानकारी देवी भागवत में मिली। वेदविरोधी नहीं है ऐसे पुराणवचन और श्रुति-स्मृति विरोधी न होनेवाले पुराणवचनों को अवश्य स्वीकार करना चाहिए। इतना ही नहीं आगे कहा है कि श्रुति-स्मृति विरोधी न रहनेवाले तंत्रोक्त कर्म भी अवश्य करने चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं न्यास कृताकृत; कुछ कहते हैं गृह्यसूत्रोक्त ही काफ़ी है। कुछ कहते हैं न्यास-मुद्रा वेदोक्त नहीं है इसलिए त्याज्य हैं। परन्तु ऐसा कहनेवाले जनेऊ पहनते समय 'श्रौतस्मार्त-कर्मानुष्ठान-सिद्ध्यर्थं' ऐसा ही संकल्प करते हैं। पूजादि विविध कर्मों में 'श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त-फलप्राप्त्यर्थं' ऐसा कहकर संकल्प करते हैं। पूजा में पुरुषसूक्त न्यास, घंटामुद्रा, शंखमुद्रा, धेनुमुद्रा दिखाते हैं। पोथियों में भी इसका उल्लेख है। श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठान का अधिकार सन्ध्या न करनेवालों को नहीं है। इतना सन्ध्या का महत्त्व है, फिर श्रौतस्मार्त कर्मानुष्ठान सिद्धि के लिए श्रुति तथा स्मृति इनके वचन क्या स्वीकार नहीं करने चाहिए? श्रुति-स्मृति-पुराणोक्त फलप्राप्ति के लिए श्रुति-स्मृति-पुराण के वचन मानने चाहिए या नहीं? 'अवैदिकत्वात्' घोष करनेवाले के सामने कोई पुराण के विरोध में बोलने लगे तो, 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदार्थम् उपबृंहयेत्' यह वचन तत्काल सामने रखेंगे और कहेंगे कि वेदों का अर्थ इतिहास-पुराण के वचनों से स्पष्ट करना चाहिए। सम्भव है, 'इतिहासपुराणः पंचमः वेदः' (छांदो. अ. ७;) यह

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वचन भी कहेंगे और ऊपर से यह भी दिखाएँगे और कहेंगे कि, 'सुनिए, इतिहास-पुराण भी अपौरुषेय है। (बृह. उप. २।४।१०); पाठक महोदय! ऐसे 'कृताकृत' 'अवैदिकत्वात्' आदि वचन उपहास से करनेवालों के सम्बन्ध में आप का क्या मत होगा?' कुछ कहेंगे कि सद्यःपरिस्थिति में इतना 'न्यास' करने की क्या आवश्यकता है?

वर्तमान परिस्थिति में तो गायत्रीजपांगभूत स्मृति-पुराणोक्त न्यास तथा मुद्रा इनकी विशेष आवश्यकता है, क्योंकि उपनयन संस्कार भी सांगोपांग यथाविधि नहीं हो रहा है, ब्रह्मचर्याश्रम नाममात्र रह गया है, रिश्तेदारों से दूर १०।१२ वर्ष गुरुगृह में निवास नहीं है; गुरुसेवा नहीं है; वेदपठण भी नहीं है (सार्थपठन अध्ययन), सुसंगति, सुसंस्कृत अन्नाहार नहीं है। रोज दो बार अग्निकार्य-अग्नि की उपासना नहीं है। देहशुद्धि, वाचाशुद्धि, चित्तशुद्धि सहज हो जाती थी, वह अब नहीं है। सदाचार, देवताप्रसाद, ओजस्विता, तेजस्विता इनकी सहज प्राप्ति हो जाती थी, इन में से कुछ भी नहीं है, इतना ही नहीं तो इसके विरुद्ध अनिष्ट संगति, कुसंगति, अनिष्ट साहित्य, विपरीत संस्कार, असंस्कृत अन्न आदि सभी कुछ विपरीत परिणाम कर रहे हैं। ब्रह्मचर्याश्रम धर्म का लोप न हो इसलिए जहाँ उपनयन संस्कार के बाद ७/८ दिनों में ही समावर्तन (उपनयन विधि का समारोप) कर दिया जाता है, वहाँ उसे 'अनाश्रमी' रहना पडता है, तथा जहाँ विवाहतक समारोप नहीं होता, उनके आश्रमधर्म का लोप हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में देहशुद्धि, इन्द्रियशुद्धि तथा देवताप्रसाद इनकी प्राप्ति होने के लिए स्मृति-पुराणोक्त न्यासादि तो भी करना ही चाहिए। जिस मंत्र का जप करना हो उसके विविध न्यास किए बिना 'देवो भूत्वा देवं यजेत्' यह घटित नहीं होगा और 'अदेवेन च यत् जप्तं सर्वं तत् निष्फलं भवेत' ऐसा परिणाम होगा, इसलिए यह स्मृति पुराणवचन अवश्य ध्यान में रखने चाहिए।

श्रुतिः स्मृतिश्च विप्राणां नयने द्वे प्रकीर्तिते।
काणः स्यात् एकहीनस्तु द्वाभ्यां अन्धःप्रकीर्तितः।। (अत्रिस्मृ.)

गुरुचरित्र ग्रंथ में दिए कथन को याज्ञवल्क्य स्मृति तथा न्यास स्मृति के प्रमाण (कामथ पोथी में) प्रस्तुत किए हैं। कलियुग में प्रमुखरूप से पाराशर द्वारा कथित धर्म का पालन करें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कृते तु मानवा धर्माः त्रेतायां गौतमस्य च।
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः।।

(बृ. पारा स्मृ. १/२३-२४)

कृतयुग में मनुस्मृति, त्रेतायुग में गौतमस्मृति, द्वापर में शंखलिखित स्मृति और कलियुग में प्रमुखरूप से पाराशरस्मृति में बताए धर्म का पालन करना चाहिए।

'बृ. पारा. स्मृ. अ. ३/१ में अक्षराणां तु विन्यासं तेषां चैव तु देवताः' इस कथन के अनुसार उपक्रम करते हुए आगे अक्षरन्यास और अक्षरदेवता तथा तत्त्वों का विवेचन किया है।

यदक्षरेषु दैवत्यं चतुर्विंशतिषूच्यते।
सन्न्यासं, यत् विबोधेन कुर्वन ब्रह्मत्वमाप्नुयात्।।

ऐसा अक्षरदेवताज्ञान के साथ अक्षर न्यास का फल चौबीस अक्षरों की देवताओं का वर्णन किया है।

पादांगुष्ठादिमूर्धान्तिं आत्मनो वपुषि न्यसेत्।
अक्षराणि च सर्वाणि वांच्छन् ब्रह्मत्वं आत्मनः।। (अ. ३/१६)
गायत्रीन्यस्त-सर्वांगो गायत्रो ब्रह्म उच्यते।। (३/३०)

श्लोक ७४ से अक्षरन्यास के स्थान, उन अक्षरों के वर्ण तथा अक्षरों के न्यास से होनेवाले लाभों का वर्णन उसमें है।

पद्म पु. तथा अग्नि. पु. इन में भी तत्त्वों का ज्ञान तथा स्मरण, अक्षरन्यास और मुद्रादर्शन आवश्यक बताया है। देवी भागवत में भी यह सब आवश्यक के रूप में बताया गया है।

चतुर्विंशति तत्त्वानां प्रत्येकं चाक्षरेषु यः।
गायत्र्याः संस्मरेत् योगी स याति ब्रह्मणः पदम्।। (३/७३)

एता अक्षर देवताः।

जपकाले तु संचिन्त्य तासां सायुज्यतां व्रजेत्।।
सर्व पापविनिर्मुक्तो ब्रह्मणः पदवीं व्रजेत्।।

अक्षर न्यास का फल–

एतान् विन्यस्य धर्मात्मा ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः।
महायोगी महाज्ञानी परं निर्वाणकं व्रजेत्।
विष्णुसायुज्यतां व्रजेत्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

परन्तु ऐसा न करनेपर–

य एनां नैव जानाति स शूद्रात्परतः स्मृतः।
विद्या वित्तं द्विजत्वादि सर्वं च निष्फलं भवेत्।

(पद्म पु. सृ. खं. ४३/१७५-१९१;)

गोविन्दादि नामों से करन्यास, प्रणवन्यास, सप्तव्याहृतिन्यास, ऋष्यादिन्यास आदि न्यास और मुद्रादर्शन आवश्यक बताया है। पाराशरस्मृति, बृहत्पाराशरस्मृति, वृद्धपाराशर, लघुपाराशर आदि ३८ स्मृति-हस्तलिखित पोथियाँ ही मिली हैं और वे भी अत्यन्त अशुद्ध, इसलिए छदे पद्म-पुराण तथा अग्नि पु. इनका ही वर्णन अक्षरन्यान्यादि के लिए लिया है। पद्म. पु. तथा अग्नि-पुराण इनके वर्णन बिलकुल एक जैसे हैं। छपे ग्रंथों में पाए गए दोष पाद-टिप्पणी में दिए गए पाठभेदों से दूर करना सम्भव हुआ। योगी याज्ञवल्क्य (स्मृति.) तो २४ अक्षरों को ही २४ तत्त्व मानते हैं तथा ये न्यासमुद्रादि सभी आवश्यक कहते हैं।

माध्यंदिन आह्निक सूत्रावली की पाद-टिप्पणी में वचन है– 'तस्माद् आचार्येण अध्येतृणां एताश्चतुर्विंशति मुद्रा इतिकर्तव्यतया अवश्यमेव शिक्षणीयाः' भाव यह कि सन्ध्या पढानेवाले आचार्य अपना एक आवश्यक कर्तव्य जानकर यह २४ मुद्राएँ सन्ध्या पढनेवालों को जरूर जरूर पढाए।

ऊपर निर्देशित तथा कई आधार स्मृतिपुराण ग्रंथों में होनेपर तथा उनमें एक भी ग्रंथ तंत्रमार्ग का न होने पर भी सन्ध्या के संबंध में ग्रंथ लिखते समय इनका आवश्यक ऐसा उल्लेख न करना याने शास्त्रमत तथा नियम लोकरंजनार्थ छिपाकर रखते हुए उनका बुद्धिभेद करने जैसा है। वर्तमान समय में कोई नहीं करेंगे इसलिए उनको निकाल देना यह इस लेखक-संपादक का बहुत बड़ा दोष ही होगा। ऐसा दोष अनजाने में भी प्राप्त न हो और कम से कम कितना करना चाहिए इस संबंध में निर्णय करने के लिए अनेक ग्रंथों को इकट्ठा कर, उनका अवलोकन करते हुए प्रमुख मुद्दों को संग्रहित करना पडा। हस्तलिखित स्मृतियों में तो अनुक्रमणिका का भी पूर्ण अभाव। कोई करें या न करें, परन्तु साधक को अन्धेरे में रखने का दोष ग्रंथकर्ता को न लगे तथा जो कोई भाग्यवान इसको अपनाएँगे उनका कल्याण हो; तथा ऐसे थोडे तो अवश्य होंगे ही। 'बहुरत्ना वसुन्धरा'।

गायत्री 'तत्त्वार्थ वर्णात्मिका' है। उसके चौबीस अक्षरों से चौबीस तत्त्वों का बोध किया जाता है। चौबीस अक्षरों के रूप में मानो चौबीस तत्त्वही मंत्र में हैं। इसलिए कौनसा अक्षर किस तत्त्व का निदर्शक है यह जान लेना भी आवश्यक है। वर्णाक्षर,

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवता, न्यासस्थान, तत्त्व तथा मुद्रा इनका ज्ञान सहज प्राप्त हो इसलिए कोष्ठक के रूप में आगे तालिका को प्रस्तुत किया है।

न्यासादिक कृताकृत हैं, ऐसा भ्रम फैलाने में एक ही प्रमाण मिला, उसे संपूर्ण रूप में देना उचित लगता है। (दे. भा. स्कं. १२/१)

सन्ध्यासु चार्घ्यदानं च गायत्री-जपमेव च।
सहस्त्रत्रितयं कुर्वन् सुरैः पूज्यो भवेत् मुने।।९।।
न्यासान् करोतु वा मा वा गायत्रीमेव चाऽभ्यसेत्।
ध्यात्वा निर्व्याजया वृत्त्या सच्चिदानन्दरूपिणीम्।।१०।।

'तीनों सन्ध्याओं में अर्घ्यदान तथा गायत्री का तीन हजार जप, सच्चिदानंदरूपिणी गायत्री का ध्यान, पूर्ण एकाग्र चित्त से करते रहा तो हे नारद! वह जापक सभी देवों को पूज्य हो जाता है; फिर वह न्यास करें या न करें। ऐसा श्रीनारायण ने नारदमुनि से कहा है। पूर्ण एकाग्रता न होने पर जो प्रतिदिन तीन हजार तप करेंगे, उन्होंने भी उपर्युक्त अपवाद का आधार लेना अपने आप का नाश करने जैसा होगा! तब फिर अन्य लोगों ने उसका आधार लेना कहाँतक उचित तथा हितकारक होगा इसका विचार पाठक ही अवश्य करें। यह न्यास तथा मुद्रा करने के लिए ५/७ मिनट भी लगते नहीं है; अतः समय नहीं है यह बहाना बिलकुल निरर्थक है। 'काम न करनेवाले का वार शनवार' लोकोक्ति की तरह ही है।

ग्यारहवे स्कंध में एक समय ऋषि, छंद, देवता, न्यास आदि संपूर्ण जानकारी उन चौबीस अक्षरों के सम्बन्ध में देने के बाद उपर्युक्त अपवाद बताकर फिर से नारायण नारद से कहते हैं,

अथातः श्रूयतां ब्रह्मन् वर्णऋष्यादिकांस्तथा।
छंदांसि देवतास्तद्वत् क्रमात्तत्त्वानि चैव हि।।

ऐसा उपक्रम करते हुए फिर से सब कहने का हेतु यही है कि पूर्ण एकाग्र चित्त से गायत्री का ध्यान करते तीन हजार जप करना जिन्हें सम्भव न होता होगा, उन्हें यह सब न्यासादि करना ही चाहिए, क्योंकि उससे मन की तथा चित्त की शुद्धि होते जाएगी, तथा उन अक्षर देवताओं के प्रसाद से एकाग्र चित्त से ध्यान करते जप करना धीरे धीरे सध जाएगा। इस प्रकार तीन हजार जप करना सम्भव हो जाने पर वे न्यास न करें तो चल जाएगा। दोषार्ह नहीं होगा। फिर भी वे बिलकुल न करें ऐसा नहीं है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मुद्रा

आवाहन-पूजन के बाद शापविमोचन करके मुद्राओं को दिखाना पडता है। मुद्रा याने हाथों से, प्रमुख रूप से दोनों हाथों की उंगलियों से मिलकर करने की-दिखाने की आकृति-देवपूजा में भी घंटामुद्रा, शंखमुद्रा, कुंभमुद्रा, धेनुमुद्रा आदि विशिष्ट अवसरों पर विशिष्ट स्थान में दिखानी पडती है। तथा पोथियों में भी उसका निर्देश किया गया है। छोटे बच्चे जो बाघ की आँख उंगलियों से बनाकर देखते हैं, वह आकृति पाशमुद्रा है। यह विविध मुद्राएँ करते समय कलाई के निकट तथा उसके अगले भाग, उंगलियाँ, बाहु आदि विविध स्थान पर दबाव-तनाव पडता है, और वैसा न हुआ तो मुद्रा व्यवस्थित होती ही नहीं है। वैसा तनाव पडने से विशिष्ट नसें, स्नायु, रक्तवाहिनी, ज्ञानतंतु आदि पर दबाव आता है तथा उसके परिणामस्वरूप, पीठ के मेरुदण्ड से मस्तिष्क तक जानेवाली प्रमुख नाडियों पर तथा उनके माध्यम से मन का कार्य करनेवाले दिमाग पर उसका असर होता है। जैसे बहुत लेखन करनेवाले की कनिष्ठिका के बीच के भाग में नित्य दबाव आता है तथा घर्षण होते रहता है और कलम पकडनेवाली उंगलियों के अग्रभाग पर निरंतर दबाव आता है तथा अनामिका के साथ सभी उंगलियाँ सदा झुकी हुई रहती हैं। इस अतिरेक का परिणाम मस्तिष्क पर होता है, परन्तु बुरा परिणाम दिमाग मगज तक पहुँचनेवाले ज्ञानतंतु पर (अ‍ॅफरेंट नर्व्हस पर) होता है तथा प्रतिक्रिया शुरु होती है। दिमाग से ज्ञानतंतु के द्वारा पीठ में स्थित रीढ से हाथ की ओर उ़लटी गति शुरु हो जाती है, जो कम्परूप से अनुभव की जाती है, हाथ काँपने लगता है, जिसे लेखक-कंप (राइटर्स क्रॅम्प्स) कहते हैं। बहुत टाईप करनेवाले तथा (टेलिग्राफ) तार से संदेश भेजनेवालों को भी ऐसी ही तकलीफ (कम्प) शुरु होती है, उसे भी विशिष्ट नाम दिए गए हैं।

सोमल, बचनाग, कुचलाबी, गंधक जैसे पदार्थ अधिक खाने पर बुरा प्रभाव दिखाते हैं, परन्तु उचित प्रमाण में खाने पर या देने पर कई रोगों को दूर करते हैं। स्ट्रेप्टोमायसिन, क्लोरोमायसिन, कोमायसिन आदि आधुनिक औषधियों में गंधक प्रमुख होता है, इसलिए उसे सल्फा ड्रग्ज (गंधकयुक्त औषधि) कहते हैं। उनसे क्षयरोग, टाइफाईड, टायफस आदि असाध्य समझे जानेवाले रोग ठीक हो जाते हैं। उसी तरह ये मुद्राएँ दिन में तीन ही बार करें तो उनका औषधि की तरह दिमाग पर तथा मन पर सुपरिणाम होता है। मन का संचालन केंद्र मध्य मस्तिष्क के पीछे गर्दन के निकट मस्तिष्क के भाग में है। मस्तिष्क तथा नसों में स्थित दोष इन मुद्राओं के प्रमाणबद्ध गति से धीरे धीरे कम होते हैं। पवित्रता यही देवत्व

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

तथा दोष-अपवित्रता याने राक्षसत्व।

मुदं ददति देवानां द्रावयत्यसुरानपि (मुद्रा.)

मुद् याने आनंद, आल्हाद; देवों को आनंद देनेवाली तथा असुरों को भगा देनेवाली, इसलिए 'मुद्रा' कहते हैं। अच्छी आदत हो जाने पर २४ मुद्राएँ व्यवस्थित करने के लिए दो मिनट भी नहीं लगते हैं। दैवी संपत्ति की उत्पत्ति तथा विकास और आसुरी-राक्षसी संपत्ति का विनाश ये द्विविध कार्य मुद्रा के द्वारा होते हैं। जैसे जैसे मन पवित्र होने लगता है, वैसे वैसे चित्त की एकाग्रता अधिकाधिक होने लगती है। सच्चा सुख चित्त की एकाग्रता में प्राप्त होता है, क्यों कि उस अवस्था में मन-चित्त आनंद स्वरूप-सुखस्वरूप परमात्मा के बिलकुल निकट रहता है। विषयों का परदा बीच में नहीं होता है। विषय सेवन में जो आनंद मिलता है, जो सुख मिलता है वह भी केवल क्षणिक, उस विषय के प्रेम के कारण, उसके सेवन में होनेवाली एकाग्रता के कारण ही होता है! सिगारेट पर बहुत प्रेम करनेवाले मनुष्य को एक हाथ लम्बी सिगारेट उत्तमोत्तम तमाखूसे भर कर दी और कहा, 'तुम्हें सिगारेट बहुत प्रिय है, अतः इसे आखिर तक फूँको; ऐसा कहने पर क्या वह सिगारेट पीएगा? बिलकुल नहीं। भला ऐसा क्यों? बहुत प्रिय है, आनंद देती है ना! पूरी सिगारेट पीयो तो बहुत सुख मिलेगा। परन्तु उसका स्वाद लेने में जितना मन एकाग्र रहता है, उतनी देर ही वह प्रिय मधुर लगती है तथा बाद में अप्रिय हो जाती है। विषयानंद का स्वाद बहुत देर तक नहीं लेते आता। निर्विषय सुख का स्वाद कितना भी ले फिर भी मन ऊब नहीं जाता, तिरस्कार निर्माण नहीं होता। देह अमर बनानेवाला स्वर्गीय अमृत भी अधिक पीते नहीं बनेगा। अरुचि, तिरस्कार निर्माण होगा। परन्तु इन्द्रियातीत सुख का-आनंद का कभी तिरस्कार निर्माण नहीं होता। परन्तु वह प्राप्त करना अपने मन पर अवलंबित है। इसका कारण यह है कि–

'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।। (श्रुतिः)'

धर्मकार्य की विविध कलाकृतियों का जो परिणाम होता है वह अतिसूक्ष्म होता है, इसलिए कुछ समय तक इन्द्रियों को वह अज्ञात रहता है। जैसे बहुत लेखन से होते रहनेवाला दुष्परिणाम दीर्घकाल तक अवश्य रहता है, परन्तु कुछ समय के बाद ज्ञात हो जाता है; दृश्य हो जाता है, वैसे ही धर्मकार्य से होनेवाले सूक्ष्म परिणामों का भी है।

यह पढनेवाले केवल एक ही मुद्रा प्रथम कर के देखे। वह इस प्रकार है– दोनों हाथों के तलुए एक दूसरे को अच्छी तरह से चिपका कर, प्रत्येक की पाँचों उंगलियाँ एक दूसरे चिपका कर रखते हुए, दोनों हाथों की उंगलियाँ, चिपकाकर हाथ अपने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सामने रखे। बाद में प्रत्येक के बीच की तीन उंगलियाँ, उन में अन्तर पडने न देते हुए केवल तीन भाग दूसरे तीन भागों को स्पर्श नहीं हो इस प्रकार अग्र की ओर से फैलाएँ। दोनों कनिष्ठिकाएँ पूरी तरह एक दूसरे को चिपकाए रखकर उन्हें अनामिका से दूर ले जाइए। उसी प्रकार दोनों अँगूठे जुडे रखकर तर्जनी से पीछे दूर तक ले जाइए, तब कहाँ कैसे दबाव निर्माण हो रहा है, यह ध्यान में आ जाएगा। पहले प्रयास में यह अच्छी तरह से करना सम्भव नहीं होगा। जुडी हुई कनिष्ठिकाएँ अनामिका से दूर ले जाते समय ही, अनामिका भी मध्यमा से दूर जाने लग जाएँगी। 'शितावरून भाताची परीक्षा' अर्थात् एक चाँवल के दाने से भात की परीक्षा हो जाती है अथवा 'थोडक्यात उमजे सूज्ञांना' अर्थात् बुद्धिमान को थोडी सूचना भी काफी होती है, इन उक्तियों से स्पष्ट होगा कि मुद्रा करने में कुछ विशेषता है, प्रत्येक मुद्रा में अलग-अलग स्थान पर दबाव आता है।

जो अनेक व्यक्ति, अनेक स्थानों पर, मुद्रा करनेवाले मिले; वे जो मुद्रा करते हैं, उनका ग्रंथोक्त लक्षणों से १/२ मुद्राओं को छोडकर जरा भी तालमेल नहीं है। तथा प्रत्येक में विचित्रता है! यमपाश तथा धेनु (सुरभि) मुद्रा अवश्य सर्वत्र समान दिखाई दी, फिर भी बिलकुल निर्दोष कोई नहीं।

ऊपर जो निर्देशित किया वह द्विमुख मुद्रा का लक्षण है। जुडी हुई कनिष्ठिकाएँ एक मुख तथा जुडे दो अँगूठे मिलकर होनेवाला दूसरा मुख।

मुद्राओं के लक्षण मूल श्लोक के अनुसार, ऊपर बताए अनुसार स्पष्ट सरल शब्दों में मूल श्लोक के साथ आगे एक अध्याय में बताए गए हैं।

न्यास में प्रथम गोविन्द, महीधर आदि का न्यास क्रम से अँगूठा-तर्जनी आदि पर करना चाहिए। तब ऐसा प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि नाम तथा अँगूठा आदि स्थानों का कुछ सम्बन्ध है या केवल खींच-तान कर सम्बन्ध जोड दिया गया है। संबंध है और बहुत समुचित है यह अगले अध्याय को पढने से ज्ञात हो जाएगा। परन्तु जिन ऋषियों ने उसे प्रस्थापित किया उनकी बुद्धि की साश्चर्य सराहना करनी पडेगी।

अगले पृष्ठ पर गायत्री के २४ वर्णादिकों की सूची दी है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गायत्री के अक्षर, देवता, तत्त्व, न्यासस्थान तथा मुद्रा का कोष्ठक

अक्षर	देवता	तत्त्व	न्यासस्थान	मुद्रा
तत्	अग्नि	पृथ्वी	पैर का अँगूठा	संमुखं
स	वायु	आप	गुल्फ	संपुटं
वि	रवि	तेज	पिंडली	विततं
तु	विद्युत्	वायु	घुटने	विस्तृतं
व	यम	आकाश	जंघा	द्विमुखं
रे	वरुण	गन्ध	गुद	त्रिमुखं
णि	बृहस्पति	रस	लिंग	चतुर्मुखं
यं	पर्जन्य	रूप	कटिदेश	पंचमुखं
भ	इन्द्र	स्पर्श	नाभि	षण्मुखम्
र्गो	गंधर्व	शव्द	उदर	अधोमुखं
दे	पूषा	उपस्थ	दोनों स्तन	व्यापकांजलिकं
व	मित्रावरुणौ	पायु	हृदय	शकटं
स्य	त्वष्टा	पाद	कण्ठ	यमपाशं
धी	वसवः	हाथ	मुख	ग्रंथितं
म	मरुतः	वाचा	तालु	सन्मुखोन्मुखम्
हि	शशी	घ्राण	नासिकाग्र	प्रलम्बं
धि	अंगिरा	जिव्हा	दोनों नेत्र	मुष्टिकं
यो	विश्वेदेवा	चक्षु	भ्रूमध्य	मत्स्यः
यो	अश्विनीकुमार	त्वक्	ललाट	कूर्मः
नः	ब्रह्मदेव	श्रोत्र	पूर्वमुख	वराहकं
प्र	सर्वदेवता	मन	दक्षिणमुख	सिंहाक्रान्तं
चो	रुद्र	बुद्धि	पश्चिममुख	महाक्रान्तं
द	ब्रह्मा	महत्तत्त्व	उत्तरमुख	मुद्‌गरं
यात्	विष्णु	अव्यक्त	मस्तक	पल्लवम्

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २३

गोविन्दादि नामोंका अंगुष्ठादि से संबंध

अंगुष्ठाग्रे तु गोविन्दं तर्जन्यां तु महीधरम्।
मध्यमायां हृषीकेशं अनामिक्यां त्रिविक्रमम्।।१।।
कनिष्ठिक्यां न्यसेत् विष्णुं करमध्ये तु माधवम्।
एवं तु करविन्यासं सर्व-पाप-प्रणाशनम्।।२।।

गोविन्द का अंगूठे से, महीधर का तर्जनी से, ऋषीकेश का मध्यमा से, त्रिविक्रम का अनामिका से, विष्णु का कनिष्ठिका से तथा माधव का करतल से कुछ सम्बन्ध है अथवा सम्बन्ध न होने पर भी खींचतान कर वह जोडा गया है, ऐसी आशंका स्वयं लेखक को ही न्यास के बारे में लिखते समय निर्माण हुई। आशंका अपना समाधान अपनी पीठ पर ही ले आती है ऐसा अनुभव जैसे अनेक वर्षों तक आता रहा, उसी प्रकार इस आशंका का तत्काल समाधान स्फुरित होने लगा और जो स्फुरित हुआ वही नीचे दिया जा रहा है।

१. गोविन्द तथा अंगुष्ठ-गो = पृथ्वी, कोई भी घन (स्थूल) पदार्थ, प्राप्त करा देनेवाला वह गोविन्द अथवा अँगूठा न होगा, या उसका उपयोग न किया तो कोई भी छोटा-बडा घन पदार्थ हाथ से उठाना सम्भव नहीं होता है। ६-७ महीने के बालक के सामने एक छोटासा खडीशक्कर का टुकडा (मिस्री) डाल दिया जाय तो किसीने उसे न सिखाने पर भी वह बालक अँगूठा, तर्जनी अथवा अंगूठा तथा अनामिका इन से ही टुकडा उठा लेता है और मुँह में डालता है। इस से यह सिद्ध होता है कि गोविन्दत्व अँगूठे में प्रकृति द्वारा जन्म से ही प्राप्त है। मनुष्य के अँगूठे में जैसा गोविदत्व है वैसा ही बंदर के पास भी वह दिखाई देता है। कोई कुछ माँग ने लगे, और उसे वह न देना हो तो 'अँगूठा दिखाया' जाता है

२. महीधर तथा तर्जनी-महीधर = सहस्त्र फनधारी शेष नाग। एक ही फन फैलाए कोई नाग अचानक दीख पडे तो कोई भी डरसे चार कदम पीछे हट जाएगा। दाहिना हाथ उठाकर, केवल तर्जनी सीधी फैलाकर नाक के सामने कुछ न बोलते हुए भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रख दे तो भय दिखाने की क्रिया प्रकट होती है। तर्जनी = भय दिखानेवाली; विश्व में किसी भी देश में डराने के लिए तर्जनीका ही उपयोग किया हुआ दिखाई देगा। एक ही उंगली से फटकारने की शक्ति जितनी तर्जनी में है, उतनी अन्य किसी उंगली में नहीं है। नाग भी फन ऊपर उठाकर फिर जोर से नीचे आकर फटकारता है।

३. हृषीकेश तथा मध्यमा-हृषिकों का-इन्द्रियोंका-जो ईश वह हृषीकेश; इन्द्रियों पर अधिकार करनेवाला; उन्हें अपने तंत्र से चलानेवाला; मध्यमा तथा अन्य चार उंगलियों का बिलकुल वैसा ही संबंध है। हथेली फैलाकर औंधी रखिए और मध्यमा (बीच की उंगली) को हिलाइए। तब दिखाई देगा कि अन्य सभी उंगलियाँ बीच की उंगली का अनुसरण करती है। अँगूठा (गोविन्द) दूर होने पर भी थोडा हिलता ही है; महीधर भय दिखानेवाला अवश्य है फिर भी वह हृषीकेश का अनुसरण करता है। इतना संचालकत्व मध्यमा के सिवा अन्य उंगलियों में नहीं है; ऐसा ही हृषीकेश सभी के इन्द्रियों का चालक हैं।

४. त्रिविक्रम तथा अनामिका-जिसने त्रिपाद विक्रम किया उस बटु वामन का इस में नाम नहीं; नाम न लेने इतना छोटासा बटु! वामन मूर्ति! परन्तु उसने ही अपने एक कदम से सारी पृथ्वी व्याप्त की, दूसरे कदम से ब्रह्मलोक तक सभी लोक व्याप्त किए तथा पैरों की उंगलियाँ ब्रह्मलोक में फैला दी! ब्रह्मलोक विराट पुरुष का मस्तक है। 'पद पातालशीर्ष अजधाम' विराट पुरुष के मस्तक पर बटु के पैर का अंगूठा जा बैठा। ब्रह्मदेव का पाँचवा मस्तक जिस उंगली से कट गया उसका नाम लेना भी अधर्म, इसलिए उसे अनामिका कहते हैं, परन्तु उसका प्रताप-विक्रम इतना है कि सभी देवों के मस्तक पर उसका अग्र विराजमान होता है। इतनी वह पवित्र है। देवों की, सद्‌गुरू की पूजा करते समय चन्दन लगाने के लिए, ललाट पर गन्ध लगाने के लिए केवल उसी का ही उपयोग किया जाता है। सुवर्ण का पवित्रक उसी के मध्य भाग में डाला जाता है। जप की माला उसी के बीच भाग पर होती है। करमाला में जप संख्या गिनने का प्रारंभ भी उसी के बीच भाग से होता है। तर्जनी पर महीधर। उसका मुख विषैला! उसका अग्र देवपूजा में किसी को भी नहीं लगने देना चाहिए। माला के मणि को उसका स्पर्श नहीं होना चाहिए। उसके नसीब में चाँदी का पवित्रक! अनामिका होकर भी त्रिविक्रम जैसा उसका पराक्रम-प्रताप है।

५. विष्णु तथा कनिष्ठिका-व्यापनेवाला इसलिए विष्णु। लंबाई, ऊँचाई, चौडाई उंगलियों से (बित्ता इतना) गिनते हैं। ब्रह्मदेव की देह याने ब्रह्माण्ड! परन्तु गोपालकृष्ण की स्तुति करते समय ब्रह्मदेव अपनी देह के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, देखिए- 'क्वाऽहं तमो महदहं-खचराग्नि-वार्भू-संवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः' (भाग १०/

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१४ ब्रह्मस्तुति) केवल सात ही बित्ते की ब्रह्माण्डरूप देह ऐसा मैं क्षुद्र कहाँ? ब्रह्माण्डरूप देह की नाप कनिष्ठिका की सहायता से भी करना सम्भव हुआ!

६. माधव और करमध्य-(करतल) मा-लक्ष्मी, धनसम्पत्ति, द्रव्य आदि उसका जो स्वामी, पति, मालिक, वह माधव। तीर्थप्रसाद, पैसे, पेडा, दक्षिणा आदि कोई तुम्हें देने लगे तो तुरन्त करतल ही सामने फैलाया जाता है। तथा उसपर जो कुछ दिया जाता है, उसे रखने पर वह लेनेवाला स्वामी, मालिक या पति हो ही जाता है। करमध्य ऐसा माधव है।

ध्यान में रखें कि पैर की उंगलियों में ऐसा प्रभाव नहीं है, इसलिए पदन्यास नहीं हैं। आश्वलायन तथा तैत्तिरीय सन्ध्या में इन छः नामों का ही निर्देश है तथा उनके स्थानों का निर्देश भी है। शुक्ल यजुर्वेदीय मा. आ. सूत्रावली में 'करपृष्ठे हरिं' तथा 'मणिबन्धे जनार्दनम्' इतना अधिक है। माध्यंदिन शाखा के एक वृद्ध पुरोहित मिले। उन्हें पूछने पर उन्होंने बताया कि उनकी परम्परा में दिए पाठ में यह आधिक्य नहीं है। हरि तथा जनार्दन इन नामों के अनेक अर्थों में से एक भी अर्थ की समानता, करपृष्ठ तथा मणिबन्ध कलाई इन से नहीं है।

सेवकों के पाप, शत्रुओं के सिर, और भक्तों के भवताप हरण करनेवाला वह हरि; जन याने विशिष्ट दैत्य, जन याने जन्म (तथा मरण) जन = उत्पन्न होनेवाला, निर्माण हुए का संहार करनेवाला वह जनार्दन; ऐसे अर्थ हैं।

गोविन्दादि छः नामों के न्यास के श्लोक तथा न्यास जिस महापुरुष ने रूढ किए, वह निश्चय ही कोई महर्षि रहा होगा। ये श्लोक तथा न्यास किसी पुराण में पढ़नेका स्मरण आ रहा है। वह स्मृति यदि सही होगी तो महर्षि व्यास ही उनके ऋषि रहे होंगे यह मानना पडेगा।

ये न्यास करते समय गोविन्दादि नामों के अर्थानुसार भाव किस प्रकार हो, इन उंगलियों से व्यवहार में कौन से कार्य करने चाहिए, कौन से नहीं करने चाहिए, यह कहने का अभी स्थान नहीं है, फिर भी थोडा सुविचार करने पर किसी को भी इन बातों को सहजरूप से निश्चित करते बनेगा।

इन न्यासों के बाद प्रणवन्यास तथा सप्तव्याहृतिन्यास करना चाहिए, इसलिए उनके विविध अर्थ अगले अध्याय में स्पष्ट किए हैं।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २४

प्रणव व्याहृतियों के अर्थ

प्रणव के विविध अर्थ–

ॐकार, प्रणव, तार, प्रलय, सूक्ष्म आदि अनेक शब्द प्रणव के ही पर्याय हैं। ॐकार के परिणाम होते हैं, उसके अनुसार ये नाम हैं।

ॐकार=(१) ॐ; अवति इति ओम् (आचार्य, अमरव्याख्या सुधा), जन्म, दुख, पातक आदि से रक्षा करनेवाला; (२) ऊर्ध्वं उन्नमयति; ऊर्ध्वगति देनेवाला इसलिए ॐ। 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः।' (भ.गी.) जो सत्त्वगुण सम्पन्न होते हैं उन्हें उच्च गति, उत्तम गति मिलती है। अतः यह निश्चय हुआ कि ॐकार के शुद्ध उच्चारण से तथा चिन्तन से सत्त्वगुण की वृद्धि, पूर्णता प्राप्त होती है। (३) उच्चारण से ही प्राणों को ऊर्ध्व गति देनेवाला (अथ.); **प्रणव**– (१) प्र-णूयते- प्रकर्षेण स्तूयते अनेन; जिससे उत्तम प्रकार से (परमात्मा की) स्तुति की जाती है वह; (२) उच्चार्यमाणः एव प्राणान् सर्वान् परमात्मनि प्रणमयति इति; केवल उच्चारण से ही सभी प्राणों को परमात्मा में पूर्णरूप से विनम्र बनानेवाला; (३) उच्चारण करने से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद इनका सार जो ब्रह्म वह ब्राह्मणों को अनायास प्राप्त करा देनेवाला; (अथ.) **तार**-उच्चारण करने से ही गर्भवास, जन्म, व्याधि, आधि, जन्ममरण इनसे युक्त रहनेवाले संसार-संसृति-रूप महाभय से उद्धार करता है, तारता है इसलिए तार कहा जाता है तथा त्रायते, रक्षा करता है, इसलिए भी तार कहते हैं।

प्रलय– सभी प्राणों का परमात्मस्वरूप में-परब्रह्म में लय करता है, इसलिए उसे प्रलय कहते हैं। 'प्राणः चित्तेन संयुक्तः चित्तं प्राणेन संयुतम्' (श्रुति); चित्त और प्राण एकत्र रहते हैं। प्राणों का लय होते ही चित्त का, बुद्धि का तथा जीवका भी परब्रह्म में क्रमशः लय हो जाता है।

सूक्ष्म– उच्चारण करते ही सूक्ष्म बनकर संपूर्ण शरीर में भर जाता है तथा सभी अवयवों का परामर्श लेता है इसलिए सूक्ष्म कहते हैं। (अथर्व.-उ.)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ॐ इति ब्रह्म; (तै. श्रुति) 'ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म' (तारा. उ.) 'ॐ इति एकाक्षरं ब्रह्म' (भ. गी.) 'प्रणवः हि अपरं ब्रह्म; प्रणवः च परःस्मृतः' (श्रुति) प्रणव = ॐकार याने परब्रह्म; जो निर्गुण, निराकार, निरंजन आदि प्रकार से निषेधमुख से वर्णित होता है वह; और अपरब्रह्म = परमेश्वर; सगुण निराकार, सगुण साकार ब्रह्म (नारायण, विष्णु, राम, कृष्ण, शिव आदि) 'तस्य (ईश्वरस्य यः एकः) वाचकः प्रणवः (पा. यो. सू.) प्रणव– ॐ यह परब्रह्म का, परमात्मा का, परमेश्वरका, जो एक ही है, उसका नाम है। नाम और नामी (जिसका नाम है वह) इन में अभेद होता है, परन्तु यह नियम मनुष्यादि को लागू नहीं होता है। ॐ और ब्रह्म एक ही है, परन्तु नाम की सहायता से जैसे उस विशेष व्यक्ति की पहचान हो सकती है, उसी प्रकार भगवंत के परमात्मा के नाम से परमात्मा की पहचान हो सकती है। ॐकार ही सर्वव्यापक है– 'ॐ इति एतद् अक्षरं इदं सर्वम्' (मां. उ.) 'यह' इस शब्द से निर्देशित सभी याने विश्व ॐ या ब्रह्म ही है। भूत, भविष्य, वर्तमान तथा त्रिकालातीत रहनेवाले सभी 'ॐ' हैं।

ॐकार पुरुष तथा गायत्री प्रकृति (पति-पत्नी) इन से सब वेदादि वाङ्मय तथा संपूर्ण जगत इनकी उत्पत्ति और अन्त में उस प्रणव में ही सभी का लय होता है आदि विस्तृत वर्णन बृह. पारा. अ. ३ में है।

ॐकार सर्वव्यापी, अनंत, सूक्ष्म है आदि वर्णन अथर्वशिर उपनिषद में है। संपूर्ण वाच्य वस्तु प्रणवात्मक है। (अथ. शिखा.)

न्यास में प्रणव के अकार, उकार तथा मकार इन तीन मात्राओं का न्यास तीन स्थानों में करना चाहिए। ये तीन मात्राएँ वेदत्रय, देवत्रय, गुणत्रय, लोकत्रय, अवस्थात्रय, अग्नित्रय, कालत्रय, लिंगत्रय आदि सभी त्रैतनिदर्शक हैं।

व्याहृति

भूः भुवः स्वः (सुवः) इन्हें 'समस्त' (इकट्ठा) व्याहृति कहते हैं। ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः (सुवः) इन्हें 'व्यस्त' (बिखरे हुए) महाव्याहृति कहते हैं। भूः भुवः स्वः महः जनः तपः तथा सत्यम् इन सातों को सप्तव्याहृति कहते हैं। साधारण अर्थ में ये सात लोकों के नाम हैं।

भूः– भूमि। यह मर्त्य लोक है। भवन्ति भूतानि अस्याम्। जहाँ विविध स्थावर-जंगम (चर-अचर) भूत निर्माण होते हैं। जहाँ उद्भव होता है वह भूमि-मृत्युलोक-यह पृथ्वी। भूः-सत्।

भुवः– अवकाश, जो स्थिति देकर सभी विश्व को प्रकाश में लाता है वह लोक;

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अन्तरिक्ष लोक, चित्।

स्वः– (सुवः) तैत्तिरीय सुवः ऐसा उच्चार करते हैं। स्वर्ग लोक। देवों का वसतिस्थान। उत्तम प्रकार का (विषयभोगादि) सुख जहाँ प्राप्त होता है वह लोक। आनंद।

महः– महर्लोक; सभी को सब प्रकार से पूजनीय ऐसा स्थान।

जनः– जनलोक; सृष्टि के उत्पत्ति के समय आकाशादि सभी अपने अस्तित्व से जन्म देनेवाला लोक।

तपः– सर्वज्ञ, सब प्रकार का ज्ञान-बोध देनेवाला, सभी पर शासन करनेवाला, तापक, तपोलोक;

सत्यम्– जिसके स्वभावादि में कभी भी विपर्यास, उलट-पलट, परिवर्तन नही होता। देशकाल तथा अन्य प्रमाणों से जिसका कभी बाध, निरास नहीं होता ऐसा; ब्रह्मलोक।

ॐ भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम–इन लोकोंका परस्पर सम्बन्ध (अगला विचार २।११।६१ रात्रि में २ बजकर १० मिनट पर स्फुरित हुआ। भूः भुवः स्वः = सत्, चित तथा आनंद यह अनेक व्यक्तियों ने सिद्ध किया है, परन्तु निम्नलिखित विचार कहीं भी पढ़ने-सुनने में, नहीं आया।)

ॐ= ब्रह्म, परब्रह्म; भूः = सत्, भुवः = चित तथा स्वः = आनन्दस्वरूप है। सत् चित् आनंद ब्रह्म का स्वरूपलक्षण है। वह वैसा है इसीलिए महः = परमपूज्य है। (महे रणाय चक्ष से, इस में मह = परमपूज्य यही अर्थ भाष्यकारों ने दिया है, मह पूजायाम्) और वही जनः है। संपूर्ण जगत् का उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय का अधिष्ठान है। 'जन्माद्यस्य यतः' (ब्रह्मसूत्र) 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यं प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति तत् ब्रह्म' (श्रुति)

सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म को यह जगदुत्पत्त्यादि कर्म कैसे करने आता है, यह पूछेंगे तो उसका उत्तर सुनिए– 'तपः' तप के बल पर; 'एकः अहं बहुस्याम् प्रजायेय' ऐसी स्फूर्ति-आलोचनारूप तप के बल से सब कुछ करने आता है।

तब 'न तस्य कार्यं करणं च विद्यते' (श्रुति) क्या यह श्रुति मिथ्या है? नहीं, नहीं; वह 'सत्यम्' है। देश, काल-वस्तु-परिच्छेदातीत, त्रिकालाबाधित है। अखण्ड एकरस ही होता है।

प्रत्येक व्याहृति के पहले प्रणव लगाते हुए यह सूचित किया जाता है कि भूर्लोकादि ब्रह्मलोक तक सप्त स्वर्ग और सप्त पाताल यह सब ॐ ब्रह्म है। इस प्रकार सर्वात्म-सर्वब्रह्म-भाव इन व्याहृतियों के उच्चार से सहज ही साध्य हो जाता

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है, पर पता नहीं इस पर क्यों ध्यान नहीं दिया जाता!

इसके पश्चात् गायत्री के न्यास हैं। गायत्री का अर्थ प्रयोग में प्राणायाम विधि में दिया गया है। न्यास के बाद ध्यान तथा आवाहन करना चाहिए। अतः अगले अध्याय में उसके संबंध में लिखा गया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २५

गायत्री का ध्यान तथा आवाहन

या सन्ध्या सैव गायत्री सावित्री च सरस्वती।।

जिसे सन्ध्या कहते हैं वही गायत्री, वही सावित्री तथा वही सरस्वती है, इसीलिए 'मुक्ताविद्रुम्.' इस श्लोक में वर्णित ध्यान ही सन्ध्या का मानना उचित है। उसके हाथ में रहनेवाले आयुधों में ब्रह्माणी-गायत्री, रुद्राणी-सावित्री तथा वैष्णवी-सरस्वती इन (प्रातः, मध्याह्न तथा सायं) तीनों सन्ध्याओं में शक्ति के आयुधों में से कुछ है ही, वाहनों का निर्देश नहीं है, क्योंकि तीन सन्ध्याओं में तीन भिन्न वाहन हैं। पाँच मुखों के वर्ण में रक्त (लाल) विद्रुम का है। ब्रह्माणी रक्तवर्णा है। रुद्राणी सावित्री श्वेतवर्णा है, अतः उपर्युक्त ध्यान में धवल (श्वेत) वर्ण का मुख है। वैष्णवी-सरस्वती कृष्णवर्णा है, अतः उपर्युक्त ध्यान में 'नील' मणि के वर्ण का एक मुख है। नील तथा कृष्ण यह शब्द राम, नारायण, विष्णु, कृष्ण इनके वर्णन में समानार्थक प्रयुक्त हुए हैं। रुद्राणी-सावित्री के ध्यान में जटा-मुकुट पर चंद्रबिन्दी है। वैसी चन्द्रबिन्दी पंचमुखी के मुकुटपर है। नारायण उपनिषद में चौबीस अक्षरों के पाँच मस्तक धारण करनेवाली ऐसा ही कहा है।

जहाँ कहीं भी गायत्री का मन्दिर है वहाँ 'मुक्ताविद्रुम.' श्लोक में वर्णित जैसी पंचमुखी मूर्ति ही है। जिनको गायत्री के उपदेश के समय अथवा प्रसन्न होकर गायत्रीने साक्षात् दर्शन दिए हैं, उन्हें पंचमुखी के ही दर्शन हुए। प्रातःसन्ध्या के, मध्याह्न सन्ध्या के, अथवा सायंसन्ध्या के दर्शन नहीं हुए। नारायण ने नारद से कहे 'गायत्री कवच' स्तोत्र में गायत्री का जो ध्यान बताया है वह 'मुक्ताविद्रुम' यही है। वह कवच आगे दिया है।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि गायत्री का ध्यान याने 'मुक्ताविद्रुम.' इस में वर्णित पंचमुखी का ध्यान। जब जिस देवता के मंत्र का करना होता है उस देवता का ध्यान विशिष्ट मंत्र से करना चाहिए। मंत्र देवता एक ही होनेपर भी उस मंत्र के लिए जो ध्यान निर्देशित होगा वही उस देवता का ध्यान करना चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

मंत्रभेदानुसार देवतारूप भेद हैं, यह श्रीरामरहस्य उपनिषद्, दत्तात्रेयोपनिषद, मंत्र महार्णव, मंत्र महोदधि आदि में दिखाई देगा।

त्रिकाल में गायत्री जप से पहले पंचमुखी गायत्री का ध्यान करना ही चाहिए। ध्यान करना याने केवल ध्यान का श्लोक उच्चरित करना नहीं है। उस श्लोक में वर्णित रूप की मूर्ति हृदय में निर्माण करते हुए मन के नेत्रों से, प्रेम से उस रूप को निहारना याने ध्यान करना है। ऐसा करने से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है तथा शुद्ध सुख की प्राप्ति अधिकाधिक होती है। ऐसा ध्यान करते हुए 'ध्यातस्य पूजां कुर्वीत' इस नियम के अनुसार मन से ही पंचोपचार पूजा भी करें। पंचोपचार पूजा के सरल मंत्र प्रयोग में दिए हैं। पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत समर्पण करना यह पंचोपचार पूजा का प्रमुख हेतु है।

पंचमहाभूतों का तथा पंचविषयों का फैलाव ही प्रपंच है। (प्र-पंच); उसे अर्पण करने पर जो शेष रहता है वही पूज्य तथा वही पूजक! 'पूजा के रहस्य' यह अध्याय अवश्य देखें। मानसपूजा में अपार आनन्द मिलता है। मन से अर्पण किए गए पदार्थों की सुगंधि प्रत्यक्ष घ्राणेंन्द्रियों को आने लगती है। ध्यान में रखिए कि कई लोगों ने गत ५/१० वर्षों में इसे कई बार अनुभव किया है। यह त्रिविध प्रचीति से सिद्ध हुआ सत्य है।

'मुक्ताविद्रुम' इस श्लोक में 'शुभ्रं कपालं गुणं' 'शूलं कपालं गुणं' 'शुभ्रं कपालं गदा' ऐसे पाठभेद मिलते हैं। (दे. भा; बृह. पारा. स्मृति तथा अन्यत्र 'शूलं कपालं गुणं' यही पाठ प्राप्त हुआ।

पुरानी छपी पोथियों में यह श्लोक तथा 'शुभ्रं कपालं गुणं' यह पाठ था तथा वही इस लेखक के पाठ में था; परन्तु 'कलौ पाराशर स्मृतिः' यह एक कारण और 'शूलं कपालं गुणं' अधिक तर्क संगत, इसलिए वही स्वीकार किया है।

कपाल = नृकरोटी-मनुष्य की खोपड़ी; वह शुभ्र ही होती है, इसलिए शुभ्र विशेषण निरर्थक हो जाता है; इसके अलावा 'अरविन्द युगलं = कमलयुग्म अर्थात् कमल की जोड़ी कहा है। अर्थात एक हाथ में दो कमल चाहिए; परन्तु 'शुभ्र कपालं' पाठ स्वीकार किया तथा दो कमल एक हाथ में दिए कि एक हाथ रिक्त रहता है! इसलिए वह पाठ त्याज्य। बाक्रे द्वारा लिखित ग्रंथ में 'शूलं कपालं गुणं' है। देवी भागवत में भी वैसा है।

प्रातःसन्ध्या तथा मध्याह्न सन्ध्या में ध्यान के दस से भी अधिक भेद दिखाई दिए। परन्तु चार हाथ होनेपर एक या अधिक हाथों में आयुधादि कुछ भी न होना उचित नहीं तथा गद्य वर्णन की अपेक्षा श्लोक में प्रस्तुत वर्णन ध्यान में रखने के लिए योग्य

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

[illegible]

Experiences of Rajamani- disciple of Swamiji — from Madras

I took the opportunity of Mangala's marriage and decided to meet Swamiji wherever he may be (fortunately I was informed by my friends that Swamiji was at Selampur). No sooner this decision was taken things that refused to go according to plan immediately starting to take place as if I had preplanned them.

I went to Selampur for the two-fold purpose of not only seeing Swamiji but also to complete the "Trilokya Mangala Kavach" Hawan.

The very evening I met Swamiji I saw Lord Krishna's image which refused to take form on the mental screen for well over a year. The next day was the day arranged for the "Kavach" Havan. On that day I saw Shri Ganesh assuming his seat at the time of installing him. In fact each and every diety which was called upon responded by its immediate presence. The Havan went off very well.

The day after the Havan was the Satynarayan performed along with my friends also. On that day according to Swamiji's forecast there was a comparatively bigger crowd compared to the previous Satyanarayan. So accordingly we prepared more Prasad. On commencing the reading of "Satyanarayan Katha" I called and signalled to some of my friends that I believe Narad and some other luminary has come to listen to the Katha and is amongst us.

Afterwards I could identify the other person as Lord Satyanarayan himself. All this is based on the prompting and identification by my conscience. That the above is really so was duly confirmed by Swamiji later.

Rajamani.
10, Davidson St.
Madras. 1

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। उस में भी बहुत दीर्घ वर्णन दिखाई दिए, इसलिए नारद पुराण का यह संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया है।

सायंसन्ध्या ध्यान में बहुत अन्तर नहीं पाया गया, परन्तु गद्य में दिया गया, न लेते हुए नारद पुराणोक्त संक्षिप्त श्लोकात्मक प्रस्तुत किया है।

तैत्तिरीय लिखित निबन्ध ग्रंथ में सन्ध्या ध्यान वर्णन में यथासम्भव भेद नहीं दिखाई दिए। इसलिए अन्य शाखा के ध्यान से अलग होने पर भी उसे ही लिया है। माध्यंदिन निबन्ध ग्रंथ में जो उचित लगा उसे उनकी सन्ध्या में दिया है।

पंचमुखी का ध्यान-पूजन करने के बाद उस विशिष्ट सन्ध्या का ध्यान करें।

आवाहन

आवाहन याने निमंत्रण, बुलाना; आए, आइए ऐसी प्रार्थना मंत्र से करना। 'मंत्राधीनम् तु दैवतम्' देवता के मंत्र के अधीन होने से उन्हें आना ही पड़ता है। देवता एक ही समय में चाहे जितने रूप ले सकते हैं। यह ध्यान में रखें। केवल नाममंत्रों से जहाँ आवाहन होता है वहाँ उतने पर भी वे आ जाते हैं। यह त्रिवार सत्य है। तथा ऐसे अनुभवों के लिखित सैंकड़ों प्रमाण पास में हैं। आवाहन, मंत्रों से न करने पर नहीं आते, यह भी सिद्ध हुआ है। देवता आते हैं तथा योग्य साधक को दीखते भी हैं। मंत्र भी देवतास्वरूप होने से मंत्रद्वारा भी वे प्रकट होते हैं, यही रहस्य है।

मराठी भाषा ठीक न लिखनेवाले एक मद्रास निवासी ब्राह्मण साधक के अँग्रेजी पत्र का फोटो ही पृष्ठ १५७ पर दिया है। यह सज्जन बी. कॉम्. हैं तथा एक ऑडिटिंग फर्म में काम करते हैं तथा अँग्रेजी सिनेमागृह के मालिक चालक हैं।

आते समय या आनेपर देवता किसी को खुली आँखों से तो किसी को बंद आँखों से दीखते हैं। इतना ही नहीं, रत्नवेदिका, रत्नसिंहासन आदि भी आते हैं; इस सम्बन्ध में लिखित प्रमाणै हैं। मुद्राओं के लक्षण अगले अध्याय में हैं।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २६

मुद्रावर्णन

मोदनात् चैव देवानां द्रावणात् पापसंततेः।
तस्मात् मुद्रेति सा ख्याता सर्व-कामाऽर्थसाधिनी।।

मुद्रा देवों को आनन्द देनेवाली तथा पाप-परम्परा को भगा देनेवाली होती है। इसलिए उसे (मुद्-द्रा) मुद्रा ऐसा कहते हैं। मुद्रा सब कामनाओं तथा सब अर्थों की सिद्धि करनेवाली है। हाथ तथा हाथोंकी उंगलियों आदि से करने की विविध आकृतियाँ याने मुद्रा। मुद्रा दिखाने से पापादि असुर-राक्षस कैसे भगाए जाते हैं यह पहले ही कहा जा चुका है।

गायत्री का ध्यान तथा आवाहन, पूजन करने के बाद, शाप विमोचन करने पर, मुद्रा दिखानी चाहिए। चौबीस अक्षरों की मुद्रा तथा उनके देवता का कोष्ठक इसके पूर्व बताया गया है। एक-एक मुद्रा से एक-एक अक्षर के देवता प्रसन्न हाते हैं। तथा उसके कारण गायत्री जप सिद्धिदायक होता है। मुद्रा न दिखाने पर गायत्री सिद्धिदायक तो होती ही नहीं है, बल्कि उन चौबीस अक्षरों के देवताएँ शाप देते हैं। (श्लोक आगे दिया है।)

क्रमशः चौबीस मुद्राओं के नाम– (पाठभेद कोष्ठक में दिए है)

संमुखं (सुमुखं, सन्मुखं) संपुटं चैव विततं विस्तृतं तथा।
द्विमुखं त्रिमुखं चैव चतुः-पंच-मुखं तथा।।१।।
षण्मुखाऽधो मुखे (मुखं) चैव व्यापकांजलिकं तथा।
शकटं यमपाशं च ग्रंथित (ग्रथितं) सन्मुखोन्मुखं (चोन्मुखोन्मुखं)।।२।।
प्रलंबं मुष्टिकं चैव मत्स्यः (मीनः) कूर्मो वराहकम्।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं मुद्गरं पल्लवं तथा।।३।।

यही श्लोक महाराष्ट्र में सर्वत्र प्रचलित हैं, उसी प्रकार वह गुजरात तथा दक्षिण देश में भी प्रचलित हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एता मुद्रा न जानाति गायत्री निष्फला भवेत्।
एता मुद्राः प्रकुर्वीत गायत्री सिद्धिदा भवेत्।।४।।
एता मुद्रा न जानाति तस्य देवी न सिध्यति।
शपन्ति देवताः सर्वा गायत्र्यक्षर संश्रिताः।।५।।

(यह श्लोक सम्भवतः अधिक प्रचार में नहीं है।)

मुद्रा लक्षण तथा स्पष्टीकरण–

१. **संमुखं–** (समुखं, सन्मुखं) संमुखं संहतौ हस्तौ उत्तानौ कुंचितांगुली।। नमस्कार के लिए हाथ जोड़ते हैं उस प्रकार उंगलियों का अग्र भाग जरा झुका कर, एक दूसरे को जोड़े तथा हृदय के पास सामने रखें।

२. **संपुटं–** संपुटं पद्मकोषाभौ करौ अन्योन्य संहतौ। बाया हाथ गड्ढानुमा कर हथेली उर्ध्व दिशा वाली रखकर उसपर उसीप्रकार गड्ढा बनाकर दाहिना हाथ औंधा ढँक कर रखें।

३. **विततं–** विततं संहतौ हस्तौ उत्तानौ आततांगुली।। हथेली का मूल भाग पक्का चिपका कर, हर उंगली को जोड़कर रखते हुए, हाथ नमस्कार की तरह सामने रखें। मूल भाग पक्का जुड़ा हुआ रखकर प्रत्येक जुड़ी हुई सीधी उंगलियाँ अलग न करते हुए उंगलीसहित हथेली बाँई ओर एक दूसरे से अधिकाधिक दूर ले जाइए।

४. **विस्तृतं–** विसृतं संहतौ पाणी मिथो मुक्तांगुली द्वयोः।। वितत मुद्रा में जोड़कर रखी हुई प्रत्येक हाथ की उंगलियाँ एक दूसरे से जहाँ तक सम्भव हो सके दूर फैलाइए।

५. **द्विमुखं–** इस मुद्रा का विस्तृत वर्णन इसके पहले दिए प्रथम परिच्छेद में देखिए।

संमुखाऽऽसक्तयोः पाण्योः कनिष्ठाद्वययोगतः।
शेषांगुलीनां वैकल्ये द्विमुखत्रिमुखादयः।।

(आलोचना– कनिष्ठिकयोर्योगे, अंगुष्ठयोर्योगे च शेषांगुलीना वैकल्ये द्विमुखम्। तर्जन्योः योगे त्रिमुखम्। मध्यमयोर्योगे चतुर्मुखम्। अनामिकयोः योगे पंचमुखम् इत्यर्थः।।)

६. **त्रिमुखं–** द्विमुख मुद्रा स्थिर रखकर तथा दोनों तर्जनियों को एक दूसरे से जोड़कर मध्यमा से दूर ले जाइए।

७. **चतुर्मुखं–** उपर्युक्त मुद्रा स्थिर रखकर दोनों मध्यमाएँ जोड़कर तर्जनी की ओर ले जाइए।

८. **पंचमुखं–** ऊपर की तरह ही अनामिका जोड़े। (जुड़े हुए दो-दो उंगलियों

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से १/१ मुख होता है।)

९. षण्मुखं–

शेषांगुलीनां संयोगे कनिष्ठायोगनाशने।
निर्यक्-संयुज्यमानाग्रौ संयुक्तांगुलिमण्डलौ।।
हस्तौ षण्मुखमित्युक्ता मुद्रा मुद्रा-विशारदेः।।

नमस्कार की तरह सामने हाथ जोड़कर, दोनों कनिष्ठिकाएँ बाँई-दाहिनी ओर यथासम्भव फैलाइए। अन्य उंगलियों के केवल आगे का भाग जोड़कर, हथेली में अच्छा गड्ढा बनाए तथा अग्रभाग जोड़कर अँगूठे तर्जनी को जोड़कर रखे।

१०. अधोमुखं–

आकुंचिताग्रौ संयुक्तौ न्युब्जौ हस्तौ अधोमुखम्।।

अधिक से अधिक पानी हाथ में लेने के लिए अंजलिपुट हम बनाते हैं। वैसे दोनों हाथ रखें और बाद में वे वैसे ही औंधे रखकर एक दूसरे को तर्जनी के पास चिपकाकर रखें। अंगूठे की पीठ एक दूसरे को लगाएँ।

११. व्यापकांजलिक–

उत्तानौ तादृशावेव व्यापकांजलिकौ करौ।।

व्यापक न्यास करने के लिए जैसी अंजलि करते हैं वही व्यापकांजलिक मुद्रा है। अधिक से अधिक पानी अंजलि में लेकर वह नीचे न गिरे इसलिए जैसी अंजलि पक्की रखते हैं, वैसे अंजलि रखें। ऐसी अंजलि बनाकर कोई दोनों हाथ हृदय की ओर से घुमाते हैं, वह गलत है।

१२. शकटं– अधोमुखौ बद्धमुष्टी मुक्ताग्रांगुष्ठकौ करौ। शकटं नाम मुद्रेयम्– अंगूठे खुले रखकर औंधे हाथ की मुठ्ठी आकुंचित करें तथा दाहिनी औंधी मुठ्ठी बाँई मुठ्ठीपर रखें तथा अँगूठे नीचे करें।

१३. ***यमपाशम् अतः परम्।।***
बद्धमुष्टिकयोः पाण्योः उत्ताना वामतर्जनी।।
कुंचिताग्राऽन्यथा युक्ता तर्जन्याऽन्यब्जवक्त्रया।
उत्तानसंधिसंलीन-बद्धांगुलिदलौ करौ।।

(यह वर्णन कुछ अधूरा है।) दोनों हाथों की तर्जनी तथा कनिष्ठिका फैलाकर बीच की दो उंगलियाँ अँगूठे के नीचे दबाकर रखें। बाया चितपट (सीधा) हाथ दाहिनी ओर अग्र करते हुए सामने रखें। दाहिना औंधा रखकर उसकी कनिष्ठिका बाए हाथ की तर्जनी पर थोड़ीसी झुकाकर रखें। और दाहिने हाथ की तर्जनी बाँई कनिष्ठिका पर रखे।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

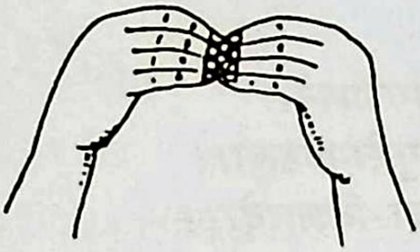

१) सुमुखम्

२) सम्पुटम्

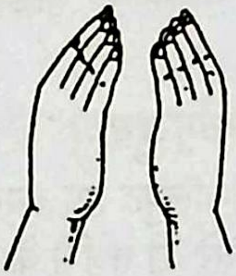

३) विततम्

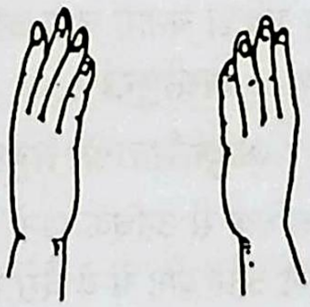

४) विस्तृतम्

५) द्विमुखम्

६) त्रिमुखम्

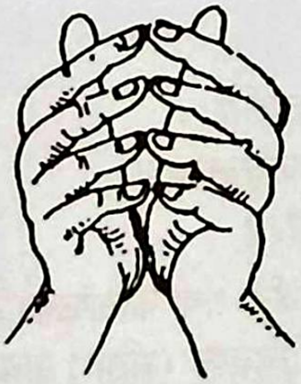

७) चतुर्मुखम्

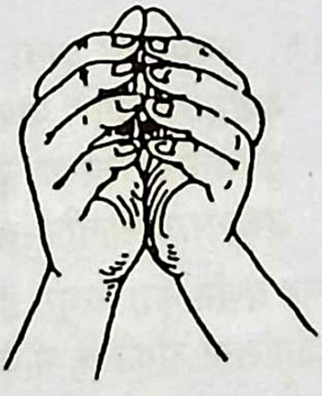

८) पञ्चमुखम्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

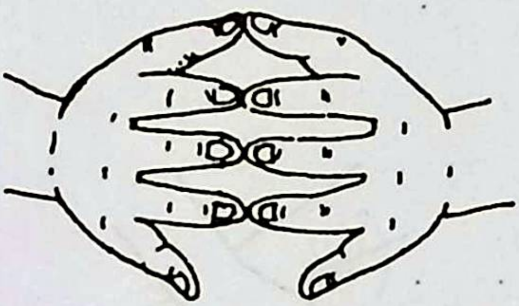

९) षणमुखम्

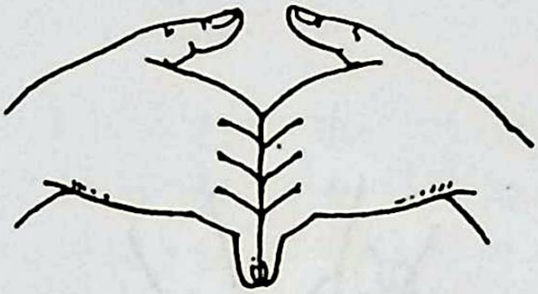

१०) अधोमुखम्

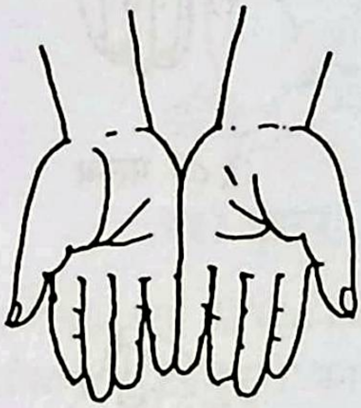

११) व्यापकाञ्जलिम्

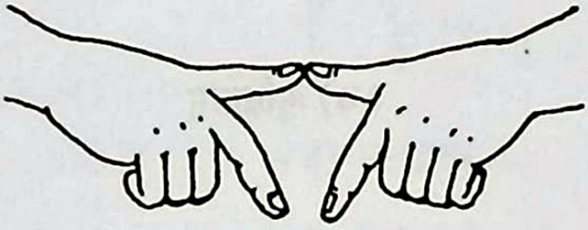

१२) शकटम्

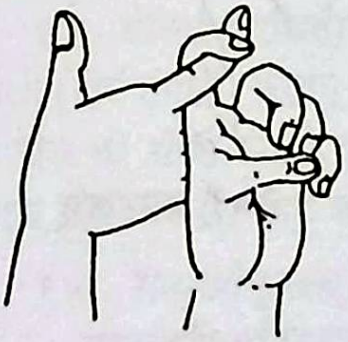

१३) यमपाशम्

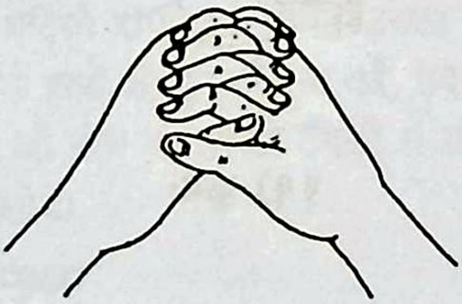

१४) प्रथितम्

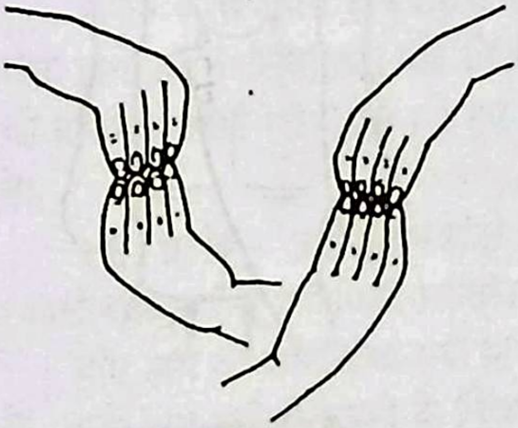

१५) उन्मुखोन्मुखम्

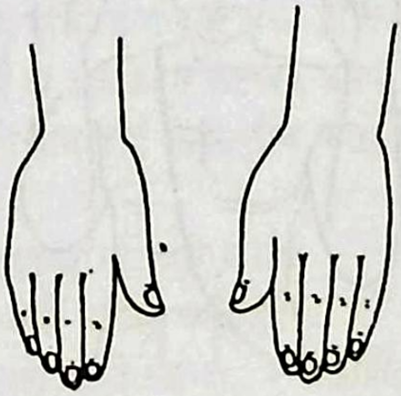

१६) प्रलम्बम्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

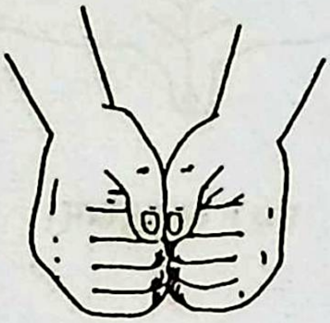

१७) मुष्टिकम्

१८) मत्स्य

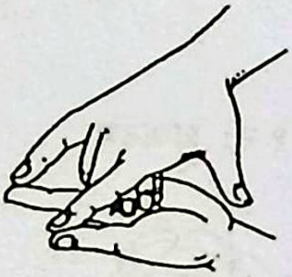

१९) कूर्मः

२०) वराहकम्

२१) सिंहाक्रान्तम्

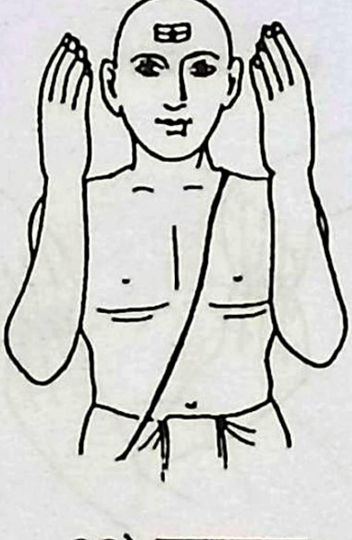

२२) महाक्रान्तम्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

२३) मुद्गरम्

२४) पल्लवम्

बाद में बाए हाथ की बीच की दो उँगलियाँ दाहिने हाथ की औंधी रहनेवाली तर्जनी पर चितपट (सीधी) रखे। उनके अग्र दाहिने अँगूठे से दबाकर रखे। दाहिनी बीच की दो औंधी उंगलियाँ बाँए हाथ की तर्जनी के नीचे दबाकर रखे। छोटे बालकों में यह मुद्रा 'बाघ की आँख' नाम से प्रसिद्ध है।

१४. **ग्रंथितं (ग्रथितं)** 'संमुखौ घटितौ दीर्घांगुष्ठौ ग्रंथित उच्यते' बीच की उँगली (दीर्घ उंगली) फैलाए रखकर दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बन्द करें; तथा बाए हाथ की बीच की सीधी उंगली दाहिने हाथ की बीच की उलटी उँगली से गाँठ (ग्रंथि) लगाए जैसी पक्की पकड़ कर, दोनों खींचें।

१५. ***सन्मुखोन्मुखम् (उन्मुखोन्मुखं)***

उध्र्वांगुलिर्वामहस्तः तादृशा दक्षिणेन तु।

अधोमुखेन संयुक्तः सन्मुखोन्मुखमुच्यते।। (सम्मुख + उन्मुख)

भोजन करते समय अन्न उठाते समय पाँचों उंगलियाँ जैसी होती हैं उस प्रकार दोनों हाथों की उंगलियाँ करें। बाँई उँगलियों के अग्र ऊपर उठाकर उनपर दाहिनी हाथ की ग्रासमुद्रा औंधी रखें। (ऐसे रखे हुए दोनों हाथ कोई ऊपर-नीचे करते हैं, वह गलत हैं।

१६. **प्रलंबं–** *उत्तानोत्तानकोटी च प्रलम्बः कथितः करौ।।*
(आलोचना-उत्तानौ अनामिका-कनिष्ठिकौ करौ प्रलंबः कथितः)

बाँए हाथ की कनिष्ठिका तथा अनामिका सीधी रखकर, शेष उंगलियाँ बन्द कर के, बाया हाथ दाहिनी कुहनी के निकट ले जाएँ; दाहिना हाथ ऊपर उठाकर उसकी कुहंनी बाँए हाथ के सीधे दो उँगलियों पर रखे और ऊपर की हुई दाहिने हाथ की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अनामिका तथा कनिष्ठिका सीधी ऊपर फैलाकर अन्य उंगलियाँ बंद करें। इससे साहुल (साहुल = राजगीरों का एक आला जिससे दीवार की सीध जाँची जाती है।) जैसी साधारण आकृति बनती है।

१७. मुष्टिकम्

मुष्टी चाऽन्योन्यसंयुक्तौ उत्तानौ मुष्टिकौ भवेत्।।

मुष्टि-प्रहार करते समय अँगूठा अन्दर लेकर जैसे मुठ्ठी बाँध लेते हैं, उस प्रकार दोनों हाथों की मुठ्ठी बाँधकर, चितपट एक दूसरी को स्पर्श करके रखे।

१८. मत्स्य– (मीन)

मत्स्यस्तु संमुखीभूतौ मुक्ताऽनामा कनिष्ठिकौ।
ऊर्ध्वसंयुक्तवक्त्रौ तु शेषांगुलिदलौ करौ।।

संमुखी मुद्रा की तरह हाथ करते हुए उँगलियों के अग्र ऊपर करें। सीधी जुड़ी हुई कनिष्ठिकाएँ तथा अनामिका अन्य उँगलियों से दूर ले जाइए। और शेष उँगलियों के केवल आगे का भाग (पेरे) ही एक दूसरे को जोड़कर रखें। अँगूठा, तर्जनी तथा मध्यमा इनमें अन्तर न रहने दें। (यह पानी से ऊपर छलाँग लगानेवाली मछली की मुद्रा हुई। इससे सरल पद्धति मुद्राप्रकाश ग्रंथ के अनुसार अन्यत्र प्राप्त हुई, वह इस प्रकार है–

दक्षपाणेः पृष्ठदेशे वामपाणितलं न्यसेत्।
अंगुष्ठौ चालयेत् सम्यग् मुद्रेयं मत्स्यरुपिणी।।

दाहिने औंधे हाथपर बाया औंधा हाथ रखिए; तथा दोनों अँगूठे अच्छी तरह से ऊपर-नीचे हिलाइए। (यह पानी में तैरनेवाली मछली की मुद्रा होती है।) मुद्राप्रकाश ग्रंथ में कूर्ममुद्रा आगे दी हुई कूर्ममुद्रा पद्धति से बहुत कठिन है।

१९. कूर्म–

अधोमुखः करो वामः तादृशा दक्षिणेन तु।
पृष्ठदेशे समाक्रान्तः कूर्मो नामाऽभिधीयते।।

बाया हाथ अधोमुख (औंधा) फैलाकर, उसपर दाहिना अधोमुख गड्ढा बनाया हाथ रखिए। उसके उंगलियों के अग्र बाए हाथ के नाखुनों के पास टिकाकर रखे। तथा दोनों अँगूठे नीचे कीजिए।

२०. वराह–

ऊर्ध्वमध्यं वामभुजः कक्षायाम् आश्रयेत करम्।।
वराहो नाम मुद्रेयं कथिता मुनिसत्तमैः

(ऊर्ध्वमध्यं यथा स्यात् तथा वामभुजः धृत्वा तस्य कक्षायां दक्षकरं आश्रयेत्)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बड़े नींबू को उंगलियों से उठाकर लेने के लिए जैसे पाँचों उंगलियाँ इकट्ठा आती हैं वैसी बाएँ हाथ की स्थिति बनाकर, वह हाथ कुहनी से कलाई तक सीधा सामने रखिए, उसकी बीच की अँगुली ऊपर सीधी रखें, उसकी अनामिका का अग्र तर्जनी को लगाए और दाहिना हाथ बाँई बगल में रखें। (ऊपर उठाई बीच की उंगली जंगली सूअर के नाकपर के दाँत की तरह दीखती है। अग्रों को जोड़कर रखी तर्जनी तथा अनामिका मिलकर उस सूअर के नाक जैसी होती है तथा चार उंगलियों के बीच का भाग उसके मुँह जैसा दीखता है।

२१. **सिंहाक्रान्तं–**

कण्ठाश्रितौ करौ कर्णसंश्रितौ आयतांगुली।
सिंहाक्रांतं नाममुद्रा महाक्रान्तं च कथ्यते।।

दाहिना हाथ आगे की ओर से गले के निकट से बाँए कान के पास ले जाइए। सीधी फैली हुई चार चार उंगलियों का अग्रभाग कान को लगाइए।

२२. **महाक्रान्तं–**

किंचिदाकुंचिताग्रौ च हस्तौ कृत्वा तथा भवेत्।।

सिंहाक्रान्त मुद्रा में कान को लगाई उंगलियों का अग्रभाग बाहर झुकाइए।

२३. **मुद्गरं–**

ऊर्ध्वं किंचित् गतौ पाणी मुद्गरो वाम तर्जनी।
ग्रस्ता दक्षिण हस्तेन मुद्रा प्रोक्ता मनीषिभिः।।

तर्जनी ऊपर सीधी फैलाकर, अँगूठा अन्दर लेते हुए मुट्ठी बाँधकर बाया हाथ कुहनी से ऊपर सीधा रखें। तथा दाहिने हाथ की कलाई बाँए हाथ की कलाई को लगाकर बाँए की तर्जनी, दाहिने का अँगूठा अन्दर बंद की हुई मुट्ठी में पक्की पकड़कर रखें। दोनों हाथों से ऊपर उठाए मुद्गर जैसी आकृति होती है।

२४. **पल्लवं–**

अधोमुखः स्थितो मूर्ध्नि पल्लवो दक्षिणः करः।।

उंगलियाँ सीधी फैलाए दाहिना हाथ का तलुवा, पीठ की ओर से, चोटी के ऊपर, उंगलियाँ सामने की ओर फैलाकर रखिए। उंगलियाँ मस्तक को न लगाते औंधी एक दूसरे से अलग सीधी रखें।

सूचना– मुद्रा लक्षण के उपर्युक्त श्लोक श्रीशंकराचार्यकृत गा. पु. प. तथा घारेकृत गा. पु. प. से मुद्रण दोष निकालकर लिए गए हैं। गुरुचरित्र ग्रंथ के परिशिष्ट में (कामत प्रति) जो है उसमें तथा इस में महत्त्व का अन्तर नहीं है। अर्थात् यह ध्यान

CC0. In Public Domain. Pratikant Sharma Rajafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में रखिए कि उस परिशिष्ट में मराठी में जो लक्षण दिए हैं, वे उसके श्लोकों के अनुकूल नहीं हैं। तथा उनका आधार क्या है यह भी वहाँ नहीं दिया है।

गायत्री जप के बाद दिखाने की मुद्राएँ–

सुरभिर्ज्ञानशूर्पे च योनिः कूर्मोऽथ पंकजम्।
लिंगं निर्वाणकं चैव जपान्तेऽष्टौ प्रदर्शयेत्।।

सुरभि (धेनु), ज्ञान, शूर्प (सूप), योनि, कूर्म, पद्म (कमल), लिंग (शिवलिंग) तथा निर्माण ये आठ मुद्राएँ गायत्री जप के बाद दिखानी चाहिए। इन्हें विसर्जन मुद्रा कहते हैं।

जिस ग्रंथ में २४ मुद्राओं के लक्षणों के श्लोक प्राप्त हुए, उन में एक में भी इन मुद्राओं के लक्षण नहीं दिए हैं। उपर्युक्त श्लोक अवश्य है। धेनु, योनि, पंकज, ज्ञान तथा लिंग के लक्षण समार्चन चंद्रिका तथा मा. आ. सू. मं. महा. आदि में पूजाविधि के अन्तर्गत प्राप्त हुए। कूर्ममुद्रा उपर्युक्त २४ में है। शूर्प तथा निर्वाण मुद्राएँ पहले कृति में होने से उनकी अन्य वर्णनों से तुलना करते हुए तथा समन्वय कर के, दोष दूर किए हैं। तथा जो लक्षण निश्चित हुए वे आगे दिए हैं।

१. **सुरभि-धेनु–** बाएँ हाथ की बीच की उंगली सीधी रखकर अँगूठे से उसे दबाकर शेष तीन उंगलियाँ सरल फैला रखे। दाहिना हाथ औंधा फैलाकर अँगूठा नीचे मोडकर रखे। दाहिने हाथ की बीच की उंगली का अगला भाग बाँई तर्जनी के अग्र पर औंधा रखें। बाँई मध्यमा दाहिनी मध्यमा पर सीधी रखकर उस पर दाहिनी तर्जनी का अग्र औंधा रखें। बाँई मध्यमा दाहिनी मध्यमा पर सीधी रखकर उस पर दाहिनी तर्जनी का अग्र औंधा रखें। दाहिनी अनामिका बाँई कनिष्ठिका पर तथा कनिष्ठिका बाँई अनामिका पर औंधी रखें। तथा दोनों अँगूठे मध्यमा (दोनों) मूलपर टिकाइए। यह मुद्रा नीचे उँगलियाँ रखकर करें। (गौ के चार थानों जैसी आकृति होती है।)

२. **ज्ञान–** दाहिने अँगूठे के तथा तर्जनी के अग्र जोड़कर रखें तथा शेष तीन उँगलियों के अग्र थोड़ा अन्दर झुकाइए। अंगुष्ठ-तर्जनी इन से बना चक्राकार भाग सीने के मध्यभाग को लगे ऐसा रखिए तथा पालथी लगाकर बैठे बाए घुटने पर बाया हाथ रखें तथा सीधे तनकर बैठें। यही ज्ञानमुद्रा है।

३. **शूर्प (सूप)–** दोनों हाथ अंजली जैसे लेकिन बिलकुल सीधे (समतल) जोड़कर, उनके अँगूठे कलाई की ओर ले जाकर अग्रों को जोड़े। इससे साधारण शूर्पाकृति होती है।

४. **योनि–** दोनों हाथ सीधे रखकर, मध्यमा अँगूठे के नीचे दबाकर रखे। दाहिने की औंधी अनामिका बाँई तर्जनी से पकड़कर रखें, परन्तु अगला भाग उस तर्जनी के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

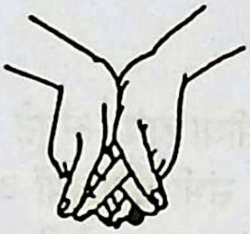

१) सुरभि-धेनु

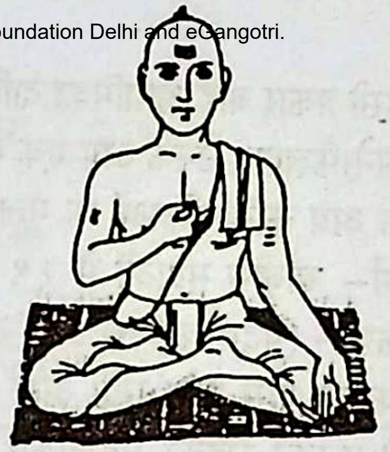

२) ज्ञान

३) शूर्प (सूप)

४) योनि

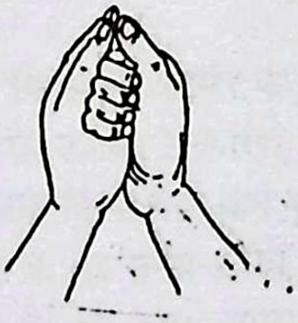

५) कूर्म

६) पंकज

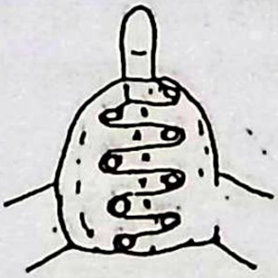

७) लिंग

८) निर्वाण

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

बाहर रखें। उसी प्रकार बाँई अनामिका दाहिनी तर्जनी से पकड़कर रखें। दोनों मध्यमा खोलकर सामने फैलाकर उनके अग्र एक दूसरे को लगाए। कनिष्ठिकाओं को बंद कर के अँगूठों क़े अग्र कनिष्ठिकाओं के मूल में टिकाइए।

५. **कूर्म–** चौबीस मुद्राओं में १९ वीं है ही।

६. **पंकज–** (पद्म-कमळ) ऊपर उंगलियाँ उठाकर सीधा हाथ, अँगूठे अन्दर की ओर झुकाकर पास-पास रखें। अग्रों को ऊपर उठाकर सभी उँगलियाँ अलग-अलग सीधी तनकर रखकर मंडलाकार कीजिए। प्रफुल्लित कमल जैसी आकृति होगी।

७. **लिंग–** दाहिने हाथ का अँगूठा ऊपर तनकर उसे बाँए हाथ के अँगूठे से मूल भाग को पकडिए तथा बाँए हाथ की चारों उँगलियोंपर दाहिने की चारों उँगलियाँ (मं. महार्णव) मुट्ठी जैसी रखें। यह शिवसांनिध्यकारिणी है।

८. **निर्वाण–** उंगलियाँ फैलाकर बाया फैलाया हुआ औंधा हाथ अपने सामने रखें। दाहिने सीधे हाथ की कनिष्ठिका बाँई कनिष्ठिका के बाहर, दाहिनी अनामिका बाँए की कनिष्ठिका तथा अनामिका के बीच की जगह में तथा उसी तरह दाहिनी मध्यमा तथा तर्जनी क्रम से बाँए की उँगलियों में बैठाइए। दाहिनी उँगलियाँ बाँई उँगलियों से पकड़ कर हाथ बाहर की ओर से अन्दर गोल घुमाकर ऊपर कीजिए। दोनों तर्जनियाँ ऊपर फैलाकर उनके अग्र जोड़िए तथा अँगूठे मिटाकर अन्दर रखें। कोई उन जोड़ी हुई तर्जनियों को भ्रूमध्य को लगाते हैं।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २७

गायत्री जप

गायत्र्यास्तु परं नास्ति दिवि चेह च पावनं।
हस्तत्राणप्रदा देवी पततां नरकार्णवे।।१।। (यो. याज्ञ.)
विधियज्ञाः पाकयज्ञाः ये चाऽन्ये बहवो मखाः।
सर्वे ते जपयज्ञश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम्।।२।। (बृ. पारा.)
जकारो जन्मविच्छेदे पकारः पापनाशनः।
तस्मात् जप इति प्रोक्तः जन्मपापनिवारकः।।३।। (आग्नेये.)

जप के लिए गायत्री मंत्र–

सर्व मंत्र प्रयोगेषु प्रणवः प्रथमः स्मृतः।
तेन संपरिपूर्णं यत् पूर्णं तत् कर्म नेतरत्।।
(अग्नि. पु. २१५/२)

किसी भी वेदमंत्र का उच्चार करते समय उसके पहले प्रणव-ओंकार करना ही चाहिए। उसका उच्चारण पहले करने पर ही कर्म पूरा हो सकता है। उसके प्रयोग के बिना किया गया कर्म पूरा होना सम्भवही नहीं है। इसीलिए ही देवपूजा में पुरुष-सूक्त के मंत्र समय-समय पर १/१ कहते हुए प्रत्येक के पहले ओंकार का उच्चारण होता है। देवे कहते समय भी प्रत्येक मंत्र से पहले प्रणव कहते हैं। सन्ध्याभाष्य में भी प्रत्येक मंत्र के पहले ओंकार का प्रयोग किया जाता है। इस से सिद्ध होता है कि गायत्री मंत्र से पहले प्रणव का उच्चारण होना ही चाहिए। उपर्युक्त अग्निपुराण का वचन सन्ध्यावर्णन के अध्याय में ही है। इसीलिए–

प्रणवो भूर्भुवस्वश्च पुनः प्रणवसंयुतां।
अंत्योंकार समायुक्तां मन्यन्ते मुनयः पराम्।। (बृह. पारा.)

इस प्रकार तीन प्रणवयुक्त मंत्र जप के लिए चाहिए।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रणवत्रयसंयुक्तां त्रिबीज (तीन व्याहृति) सहितां जपेत्।
अन्यथा जपमानस्य नैष्फल्यं शौनकोऽब्रवीत्।।

तीन व्याहृतियुक्त तथा तीन प्रणवयुक्त गायत्री मंत्र जप के लिए चाहिए। ऐसा जप न करने पर वह निष्फल हो जाता है; ऐसा शौनक ऋषि कहते हैं।

कलियुग में पराशर स्मृति प्रमुख प्रमाण है। उसमें तथा अन्य कई स्मृतियों में तथा मंत्रमहार्णव में उपर्युक्त कथनानुसार ही वचन हैं। दे. भा. में भी ऐसा ही कहा है। 'प्रणवान्ता गायत्री जपादिभिरुपास्या' ऐसा श्रीमदाचार्य वचन है। प्रारंभ में तथा व्याहृती के पहले तो प्रणव अवश्य चाहिए यह सिद्ध हुआ है।

ओंकारः पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवस्वः तथैव च।
गायत्री प्रणवः चान्ते जप एवं उदाहृतः।।

(याज्ञ-वसिष्ठ. सं.)

इस में गायत्री के पहले प्रणव बताया नहीं है, फिर भी प्रथम दिया हुआ साधारण नियम स्वीकार है ही, इसलिए विरोध नहीं है।

मंत्र-तथा जप– 'मननात् त्राणनात् मंत्रः' (रा. पू. १/१२) मनन करने से त्राण-संरक्षण, उद्धार करता है इसलिए 'मंत्र' ऐसा कहते हैं। 'देवादीनां च साधने' देवादिकों को वश में करने का साधन ऐसा भी इसका अर्थ है। परन्तु मनन-अर्थचिन्तन करने से ही वह सिद्धि-फल देता है। अर्थचिन्तन कैसे करना चाहिए यह जप शब्द से सूचित किया जाता है। 'असकृत् आवृत्तिः जपः जपनम्' बारबार मंत्र की आवृत्ति करना याने जप करना; जकार जन्ममरण का विच्छेदक तथा पकार पापों का संहारक है। पापों का संहार करते हुए, जन्म-मरण दुःखादि का नाश करनेवाला इसलिए भी इसे जप कहते हैं। (श्लोक प्रारंभ में दिया है।) इसीलिए बृहत् पाराशर स्मृति में कहा है कि विधियज्ञ, पाकयज्ञ तथा अन्य अनेक प्रकार के बडे बडे याग, इनकी जपयज्ञ के साथ तुलना भी सम्भव नहीं है, इतना जपयज्ञ श्रेष्ठ है। 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' (भ. गी.) 'जपात् सिद्धिर्जपात् सिद्धिः जपात् सिद्धिः कलौ युगे' उस में भी नरक में जानेवालों को भी सहायता देकर उनका रक्षण करनेवाली गायत्री! जिसकी तरह पावन करनेवाला यहाँ अथवा स्वर्ग में भी दूसरा कोई नहीं है। उसका जप करते रहने से जो चाहिए वह साध्य होगा।

अधिक प्रणव क्यों नहीं लगाना चाहिए?

ब्रह्मचारी तथा गृहस्थ ये यदि अधिक प्रणव का प्रयोग करेंगे तो लौकिक सुखोपभोगवृद्धि तथा वंशवृद्धि नहीं होगी। वानप्रस्थ तथा कुटीचकादि तीन प्रकार के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संन्यासी, इन्हें पंचप्रणवयुक्त अथवा दस एकादश प्रणव युक्त गायत्री का जप करना चाहिए। प्रणव, व्याहृती तथा गायत्री के प्रत्येक पाद से पहले तथा अंत में लगाने पर पंचप्रणवयुक्त होता है तथा सात व्याहृतियों के पहले १/१ और गायत्री के प्रत्येक पाद के पहले १/१ मिलकर १० प्रणव होते हैं तथा अन्त में लगाने पर ११ होते हैं; इतना ही नहीं बल्कि

यो न वाञ्छति संतानं मोक्षं इच्छति केवलम्।
प्रत्योंकारं असौ कुर्यात् अक्षरं मोक्षं आप्नुयात्।। (बृह. पारा.)

जिस किसी द्विज को संतति, सम्पत्ति आदि की इच्छा न होगी, उसे गायत्री के प्रत्येक अक्षर के पहले ओंकार लगाकर जपतत्पर होना चाहिए, जिससे उसे मोक्ष प्राप्ति होगी। इस अर्थ के कई वचन अनेक ग्रंथों में हैं।

एक उदाहरण– एक जोगलेकर नामक ब्राह्मण जिन्हें लडके, लडकियाँ तथा पत्नी थी, मुझ से मिले तथा उन्होंने मुझसे कहा कि 'स्वामी! प्रापंचिक बातों में हर प्रकार से अधोगति, दुर्गति हो रही है जिससे मैं त्रस्त हो गया हूँ, जीवित रहना कठिन हो गया है!' उन्हें पूछा कि क्या किसी से मंत्रोपदेश आदि लेकर कुछ उपासना प्रारम्भ की है?

उत्तर मिला, 'जी हाँ। प्रणव का उपदेश लेकर जप करता हूँ।' 'किसने मंत्र दिया?' उन्होंने एक विधवा स्त्री का नाम बताया। केवल प्रणव का जप परमहंस संन्यासी के अलावा अन्य लोगों को वर्ज्य बताया है, इसकी ज्वलन्त प्रतीति प्राप्त हुई! उन्हें बताया कि केवल प्रणव का जप बन्द करें। त्रिप्रणवयुक्त गायत्री का जप सन्ध्या में अधिक बढाएँ। उन्होंने वैसा किया तथा उनकी परिस्थिति कुछ महीनों में सुधर गई। इससे सबक सीखना चाहिए।

प्रायश्चित्त के लिए कुछ प्रसंगों में पंचप्रणवयुक्त तथा दशप्रणवयुक्त गायत्री का जप गृहस्थों के लिए भी बताया है।

हवन में व्याहृतिरहित प्रणवपूर्वक गायत्री का ही तथा अन्य कर्मों में प्रणव, तीन व्याहृति, प्रणव तथा गायत्री ऐसा दो प्रणवयुक्त मंत्रों का उपयोग करना चाहिए। जप केवल तीन प्रणवयुक्त गायत्री का ही करना चाहिए।

कितना जप? किसी भी मंत्र के जप की संख्या गिनना यद्यपि आवश्यक है फिर भी जहाँ कहीं सन्ध्या के अन्तर्गत जपसंख्या का निर्देश है वह गौणपक्ष के रूप में है, क्योंकि जो सन्ध्या का प्रमुख काल बताया है वह गायत्री जप के सम्बन्ध में ही है।

'कुशासने समासीनः गायत्रीजपं आचरेत्।
आतारकोदयात् सायं अर्धाऽस्तमित भास्करात्।।' (कारिकारत्न)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऐसा कहते हुए श्रीकृष्ण पंडित कृत सन्ध्याभाष्य में (पृ. १३२) (सन्ध्याभाष्य समुच्चय) बहुत विस्तार से सिद्ध किया है कि प्रातःसन्ध्या का तथा सायंसन्ध्या का जो प्रमुख काल बताया हे उस काल में जितना सम्भव हो उतना जप गिनकर करना यह उत्तम पक्ष है आदि; बाद में कहा है कि सायंकाल में 'संकल्पस्तु अर्धास्तमितभास्करात् तारकोदय पर्यन्तं जपं करिष्ये इति। न दशवारमित्यादि प्रकारेण' सायंकाल में संकल्प ही ऐसा कि सूर्यबिम्ब आधा अस्त होने के बाद तारकाएँ उदित होनेतक जप करूँगा। दशसंख्या आदि पद्धति से नहीं। 'शतमष्टोत्तरम् इत्यादि' जो निर्देश है वह 'गौणकाल जपविषयम् इति न कश्चित् दोषः' यही मत उचित है। अन्य अनेक स्मृत्यादि वचनों से यही सिद्ध होता है।

कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्या चाऽभिमंत्रितम्।
आदित्याभिमुखस्तिष्ठन् त्रिरुर्ध्वं अथ तत् क्षिपेत्।।२५।।

इस में अर्घ्यदान का वर्णन करते हुए आगे कहा है कि,

पूर्वसन्ध्यां सनक्षत्रां उपासीत यथाविधि।
गायत्रीं अभ्यसेत् तावत् यावद् आदित्यदर्शनम्।।२६।।

अर्घ्य देने के बाद पूर्वसन्ध्या = प्रातःसन्ध्या, नक्षत्र होनेपर यथाविधि करें; (अर्थात्) नक्षत्र दिखाई देने के बाद से सूर्योदयतक गायत्री का अभ्यास (= जप) करना चाहिए। (असकृत् आवृत्तिः अभ्यासः पुनः पुनः आवृत्ति करना याने अभ्यास) इसके आगे २७ वे श्लोक में उपस्थान का वर्णन है। (पद्म पु. उ. खं. अ. २३३)

इस से यही निश्चित होता है कि सन्ध्या याने गायत्री का जप। शौनक स्मृतिं में यही कहा है।

पूर्वसन्ध्यां जपंस्तिष्ठन् सावित्रीं ऋक्षदर्शनात्।
पश्चिमां तु समासीनः सम्यक् आतारकोदयम्।।

ऋक्ष = नक्षत्र-दर्शन करते हुए खडे रहकर सावित्री का (गायत्री का) जप करते हुए प्रातःसन्ध्या करनी चाहिए और सायंसन्ध्या (पश्चिमासन्ध्या) बैठकर तारकाएँ उदित होनेतक जप करते रहे। 'अर्धास्तमितभास्करात्' आधा सूर्यास्त होने से यह गृहीत है। यह सन्ध्याओं का उत्तमकाल तीन-तीन घटिकाओं का होता है यह 'सन्ध्योपासना' अध्याय में साधार सिद्ध किया है। तीन घटिकाओं में (७२ मिनट) किसी का जप हजार, किसीका पंन्द्रहसौ, तो किसी सात-आठ सौ होगा-होता है। किसी का सत्रहसौ-अठारहसौ भी होता है। इसीलिए बौद्धायन सूत्र में कहा है कि 'सावित्री सहस्रकृत्वः आवर्तयेत्। अपरिमितकृत्वः वा' हजार अथवा अधिक भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

करें। अर्थात् तीन घटिकाओं में यथाविधि होगा उतना करें; परन्तु वह भी गिनकर करें।

मंत्र कैसे कहें– बहुत धीरे अथवा बहुत शीघ्र उच्चारण न करें। कहते समय अर्थ भी ध्यान में आना चाहिए। स्वर का उच्चार बिना गलति के होना चाहिए तथा २४ अक्षरों का उच्चारण किया जाना चाहिए। 'वरेण्यं' का उच्चार 'वरेणियम्' करना चाहिए। तीनों पाद अलग-अलग कहें। जोडकर कहने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है। तोडकर कहने से ब्रह्महत्या का विनाश होगा।

छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
अछिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्या प्रदायिनी।।
व्यस्तपादां तु गायत्रीं यो जपेत् स हरिप्रियः।
जपेत् समस्तपादां यः स भवेत् ब्रह्मराक्षसः।।

(आग्नेये इति मध्वाचार्यभाष्ये)

ऐसे अनेक वचन हैं, परन्तु 'सन्ध्यासु भिन्नपादा चेत् स जपो निष्फलो भवेत्' (कहाँ का इसका उल्लेख नहीं) ऐसा वचन देते हुए तथा

अछिन्नपादा गायत्री ब्रह्महत्यां प्रयच्छति।
छिन्नपादा तु गायत्री ब्रह्महत्यां विनाशयेत्।।

यह वचन देते हुए श्रीकृष्ण पंडित ने पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष कर के निश्चित किया कि 'अविछिन्नपादा गायत्री जप्तव्येति सिद्धम्' न तोड़ते उच्चार करना चाहिए यह सिद्ध हुआ।

निर्णय– तीनों पाद तोड़कर कहना चाहिए इस अर्थ की याज्ञवल्क्य आदि कई वचन हैं, गुरुचरित्र ग्रंथ में भी ऐसा ही कहा है कि तोड़कर न कहने से ब्रह्महत्या का पाप लगता है! जोड़कर कहनेवाला ब्रह्मराक्षस होता है। तैत्तिरीय शाखा के श्रीकृष्ण पंडित कहते हैं कि तोड़कर कहने से जप निष्फल होता है; अतः इस लेखक का मत यही है कि ब्रह्महत्या को स्वीकार करने की अपेक्षा तथा ब्रह्मराक्षस होने की अपेक्षा निष्फलता सह्य है; परन्तु तोड़कर कहने से निष्फलता प्राप्त न होने के कई उदाहरण हैं, इतना ही नहीं बल्कि दैवी संपत्ति की प्राप्ति तथा वृद्धि होने के तथा होते रहने के सानुभव उदाहरण हैं। तीनों पाद बिलकुल थोड़ा रुककर कहना ही श्रेयस्कर है। जप के तीन प्रकार– वैखरी, मध्यमा तथा पश्यन्ती वाचा से जप; इन्हें ही वाचिक, उपांशु तथा मानस जप कहते हैं। मुँह से शब्दों का स्पष्ट उच्चार करना, वह वाचिक, वैखरी वाणी का; ऐसा जप गायत्री का यथासम्भव न करें; क्योंकि उसका उच्चारण दूसरों को सुनाई नहीं देना चाहिए ऐसा सामान्य नियम है। अन्य मंत्रों का भी वाचिक

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

जप कनिष्ठ माना जाता है। मुँह में ही उच्चारण होता है, होंठ तथा जीभ किंचित हिलती है तथा अपने को ही वह सुनाई देता हो, वह उपांशु जप, मध्यमा वाणी से होनेवाला; यह मध्यम; होंठ, कण्ठ, जीभ बिलकुल हिलती नहीं और मन में ही उच्चार किया जाता है वह मानस-मानसिक जप; पश्यन्ती वाणी से होनेवाला; यह उत्तम। इसके दो प्रकार हैं। रूप का ध्यान करते हुए मन में किया जानेवाला; तथा अर्थ का चिन्तन करते हुए मन में किया जानेवाला। अन्य कोई भी विचार मन में न आते हुए पूर्ण एकाग्रता से ऐसा जप होना याने ही 'रुपानुविद्ध सविकल्प समाधि तथा अर्थानुविद्ध सविकल्प समाधि।'

आवश्यक सूचना– मानस (मानसिक) जप करते समय जिनका मन अन्य विषयों की बहुत लेन-देन करता होगा, उन्हें उपांशु जप करना हितकारक है। वह करते समय जो थोड़ी ध्वनि-आवाज अपने को ही सुनाई देती है, उसकी ओर ध्यान देते हुए उदित होते, गहरे लाल रंग के सूर्यबिम्ब का हृदय में ध्यान करते जप करना चाहिए। इससे मन की विषयों के प्रति दौड़धूप धीरे धीरे कम होगी तथा अपने आप, विशेष प्रयत्न न करते, मानस जप होने लगेगा। तब श्रीगायत्री देवी के पंचमुखी रूप का ध्यान करते हुए वह जप करें। इससे रुपानुविद्ध समाधि लगने पर अर्थ का चिन्तन प्रारंभ कर जप शुरु करना चाहिए।

अनुभव– प्रारम्भ में ही मानस जप करनेवाले साधकों के पत्र आए हैं कि मन इतना अनियंत्रित उद्दाम होता है कि लिखते-पढ़ते समय जीवन में कभी भी ऐसा नहीं हुआ था। ऐसा होने के कारणों की मीमांसा करते हुए कारण बताए जा सकते हैं; परन्तु विस्तार भय से यहाँ देना सम्भव नहीं है। क्रमशः धीरे धीरे प्रगति करते जाना सुखदायक तथा हितकारक है।

परावाणी का जप– यह जप की सर्वोत्तम भूमिका है; परन्तु यह जानबूझकर नहीं करना चाहिए। महत् भाग्य से लाखों में क्वचित् किसी एकाध को ही यह अपने आप सुनाई देने लगता है। आगे चलकर तो गायत्री का जप सुनाई न देते हुए केवल प्रणव का ही सुनाई देता है। यह किसी को शायद सत्य प्रतीत नहीं होगा; परन्तु आज ४-११-६१ को एक ६३ वर्ष आयु के ब्राह्मण का पत्र आया है (पंचवटी से); उस में यह अनुभव है। उसे कुछ दिन पहले परावाणी का गायत्री का जप स्पष्ट सुनाई दे रहा था; उस सम्बन्ध में भी पत्र है। गायत्री का अपने आप प्रणव में कैसे रूपान्तर होता है ऐसा प्रश्न शास्त्रीपण्डित के मन में भी आएगा; फिर भी यह अनुभव बिलकुल शास्त्रशुद्ध है तथा इससे बृहत् पाराशरस्मृति में बताए अनुसार 'गायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया प्रणवः पुरुषः स्मृतः' (अ. ३/५) प्रणव पुरुष तथा गायत्री प्रकृति है; इस वचन की

CC0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सत्यता सिद्ध हुई। लययोग में प्रकृति का पुरुष में लय होता है; वही हुआ; इसके आगे एक ही सीढ़ी रह जाती है, वह है निर्विकल्प समाधि; प्रणव का, वाचक का ब्रह्म में लय होनऐ पर वह स्थिति सिद्ध होगी। गायत्री जप से ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है तथा मोक्ष मिलता है वह इसी मार्ग से; परन्तु विधि का पालन तथा निषेध का त्याग करते हुए जपतत्पर होने से ही यह होता है; होगा।

सन्ध्या का काल– सूर्योदय के पहले चार घटिका तथा सूर्यास्त के पहले एक घटिका आचमनादि कर्म का प्रारम्भ करके, प्रातःकाल में तारकाएँ रहते तथा सायंकाल में सूर्य आधा अस्त होने पर गायत्री जप का प्रारम्भ करना उत्तम काल है, यह इस अध्याय में तथा 'संध्योपासना' अध्याय में सिद्ध किया है। उत्तम काल में जप प्रारंभ करना संभव न होने पर क्या करें?

काललोप प्रायश्चित्त– कालातिक्रमदोष प्रायश्चित्त– गौण मध्यम काल, गौण कनिष्ठ काल, अधम काल आदि भेदों के अनुसार प्रायश्चित्त बताना योग्य अथवा एक ने सूर्योदय के पहले जप प्रारंभ किया, दूसरे ने सूर्योदय के साथ, तीसरे ने ९ बजे, चौथे ने १२ बजे आदि भेद के अनुसार अधिकाधिक प्रायश्चित्त बताना उचित? अथवा सूर्योदय के पहले जिसने प्रातःसन्ध्या जप प्रारंभ किया, उन दोनों को (कोई भी आर्त, आपद्ग्रस्त न होनेपर) एक समान प्रायश्चित्त बताना उचित है? कोई भी विचारवान् यही कहेगा कि ऐसा करना अनुचित, अन्यायपूर्ण होगा! दोष के प्रमाण में दण्ड मिलना ही चाहिए; परन्तु छपी पोथियों तथा ग्रंथों आदि सभी में, सब को समान प्रायश्चित्त बताया है! यह शास्त्रवचन विरोधी है। इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न वचनों का सुन्दर समन्वय संसार-रत्नमालाकार ने किया है वह उचित है।

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता

(मनु, धर्मसार, आदि अनेक)

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्त तारका

(लुप्त भास्करा; पा. भे.)

अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता।।

(उत्तम काल में प्रायश्चित्त नहीं हैं।)

तारकाएँ दिखाई नहीं देती तथा सूर्योदय नहीं हुआ है, ऐसे काल में की गई सन्ध्या (गायत्री जप) मध्यम प्रातःसन्ध्या; सूर्योदय के साथ जप प्रारंभ करना वह है अधम प्रातःसन्ध्या; परंन्तु यह निंद्यकाल नहीं हैं; इसलिए गौण मध्यम काल तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गौण कनिष्ठ काल ऐसे नाम रखे गए; क्योंकि ये दोनों प्रकार गौण हैं। इनके लिए ही अनेकों ने १००।१०८; तथा १० जप बताए हैं, परन्तु बौद्धायन का वचन है, कि 'प्राणायमशः वा शतकृत्वः उभयत प्रणवाम्। स सप्तव्याहृतिकां मनसा वा दशकृत्वः।।' प्राणायाम करते हुए १००।१०८ जप करना चाहिए अथवा प्रतिप्रणव सातव्याहृतीयुक्त १० जप करें। इसके पहले दिए 'सावित्रीं सहस्रकृत्वः आवर्तयेत्। अपरिमितकृत्वः।' इस वचन के साथ ही उपर्युक्त बौधायन वचन है। हेतु यह है कि गौण काल में ऐसा जप करने पर प्रायश्चित्त बिलकुल नहीं है।

काललोप भेद से प्रायश्चित्त- (१) ब्रह्मचारी तथा आहिताग्नि (श्रौताग्निहोत्री) को गौणमध्यम काल में (सन्ध्या=) गायत्री जप करने पर भी उन्हें प्रायश्चित्त नहीं है। ऐसा क्यों? गुरुगृह रहकर गुरुसेवा तथा वेदाध्ययन आदि करनेवाला वह ब्रह्मचारी; उसे गुरुसेवा के कारण छूट तथा अग्निहोत्री गृहस्थ को अग्निकार्यविषयक छूट है। (२) आपत्ति में होनेवालों को सूर्योदय के बाद चार घटिकाओं के भीतर तथा सायंकाल में सूर्यास्त के बाद चार घटिकाओं के भीतर कम से कम १० जप करने पर प्रायश्चित्त बिलकुल नहीं है। (३) श्रान्त, थके हुए होंगे उन्हें सूर्योदय के बाद तीन घटिका तथा सूर्यास्त के बाद तीन घटिका तक १० जप करने पर प्रायश्चित्त की आवश्यकता नहीं।

सन्ध्याकाले त्वतिक्रान्ते स्नात्वाऽऽचम्य यथाविधि।
जपेदष्टशतं देवीं ततः सन्ध्यां समाचरेत्।। (जमदग्नि)
प्रातःसन्ध्यां सनक्षत्रां नोपास्ते यः प्रमादतः।
गायत्र्यष्टशतं तस्य प्रायश्चित्तं विशुद्धये।। (कर्मप्रदीपे.)

इसी प्रकार 'सायं सन्ध्या तु सादित्याम्, इति उपलक्षणम् (पृथ्वीचंद्रः) प्रमाद से, आलस्य के कारण उत्तम काल में (सनक्षत्रां-सादित्या) संध्या = जप नहीं किया तो स्नान कर के १०८ गायत्री जप कर के बाद में सन्ध्या करनी चाहिए। अधिक प्राणायाम यथाविधि करना जिन्हें सम्भव नहीं होता उनके लिए यह वचन हैं।

उपर्युक्त कारण न रहने पर उत्तम काल साध्य न हुआ तो 'कालातिक्रमणे चैव त्रिसंध्यमपि सर्वदा चतुर्थार्घ्यं प्रकुर्वीत भानोः व्याहृतिसंपुट्म्' कालातिक्रम दोष परिहार के लिए, तीनों सन्ध्याओं में गायत्री मंत्र के प्रारंभ में तथा अन्त में सप्रणव-सप्तव्याहृती लगाकर सूर्य को एक अर्घ्य देना चाहिए। अर्घ्य के पहले प्राणायाम करना ही पड़ता है। यह वचन अल्पकालातिक्रम के सम्बन्ध में है। मध्यमगौण काल के सम्बन्ध में है। प्रायश्चित्तार्थ 'कालातिक्रम दोष परिहारार्थं प्रायश्चित्तार्घ्यदानं करिष्ये' ऐसा संकल्प करते हुए प्रथम दें तथा बाद में नित्य का अर्घ्यदान करें।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अधिक देर हो जाने पर आगे दिए कथनानुसार प्राणायाम करके बाद में प्रायश्चित्तार्घ्य दीजिए। स्मार्तप्रायश्चित्त कुतूहले, सन्ध्याकल्पे :

प्राणायामत्रयं प्रातः द्विगुणं संगवे स्मृतम्।
मध्याह्ने त्रिगुणं प्रोक्तं अपराह्ने तु षड्गुणम्।।
सायाह्ने द्वादशगुणं सूर्यहत्यां ततो व्रजेत्।

सूर्योदय से छः घटिका तक प्रातःकाल, आगे ६ घटिका संगव, बाद में ६ घटिका मध्याह्न, बाद में ६ घटिका अपराह्न और बाद में ३ घटिका सायंकाल : ऐसे दिनके पाँच भाग हैं। इन में प्रातःकाल में सन्ध्या करने पर ३ प्राणायाम, संभव काल में ६ प्राणायाम, मध्याह्न काल में ९ प्राणायाम, अपराह्न काल में १८ प्राणायाम और सायंकाल में प्रातः सन्ध्या करनेवाले को ३६ प्राणायाम करके, बाद में प्रायश्चित्तार्घ्य दें। इस से अधिक देर हो जाने पर प्रातःसन्ध्या को सूर्यहत्या का पाप लगता है। (जमदग्नि) यमस्मृति में अपराह्न काल में १२ तथा सायंकाल में १५ प्राणायाम बताए हैं। १८ या ३६ करना असंभव शक्ति के बाहर होगा उन्हें यमस्मृति का आधार लेना चाहिए।

परन्तु यह ध्यान में रखें कि

स्नान सन्ध्यातर्पणादिजप होमसुरार्चनम्।
उपवासवता कार्यं सायंसन्ध्याऽऽहुतीर्विना।।

कथन का सार यह है कि प्रातःस्नान से लेकर मध्याह्न सन्ध्या वैश्वदेव तक कर्म होने तक उपवास करना चाहिए।

सायंसन्ध्या में काललोप प्रायश्चित्त-प्रातःसन्ध्या में बताए अनुसार ही, उत्तम काल के बाद की ६ घटिकाओं में ३ प्राणायाम तथा आगे प्रत्येक ६ घटिका के लिए ३।३ प्राणायाम अधिक करें। परन्तु मध्यरात्रि के बाद सायंसन्ध्या कोई नहीं करेगा; अतः ३ या ६ प्राणायाम ही करने पड़ेंगे। प्रायश्चित्तार्घ्य देना ही चाहिए। गौण मध्यमकाल में केवल १ प्रायश्चित्तार्घ्य प्राणायाम के साथ दें।

प्रातःसन्ध्या बिलकुल न होने पर (एक दिन) प्रायश्चित्तार्थ ठण्डे पानी से स्नान करके १००८ गायत्री जप करें। (स्मृति)

एक दिन सन्ध्या बिलकुल न होने पर अहोरात्र निर्जल उपवास कर के दस हजार गायत्री जप करें। दो दिन सन्ध्या न करने पर दुगुना प्रायश्चित्त! तीन दिन न करने पर वह पतित-शूद्रसमान हो जाता है। उसे अन्य द्विजकर्म करने का अधिकार नहीं रहता है। (जमदग्नि) सात दिन क्रम से सन्ध्याविहीन रहने पर उसका फिर से उपनयन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

संस्कार करना चाहिए। (शौनक) इस प्रकार संस्कार रत्नमाला ग्रंथ में सुन्दर समन्वय किया है।

मध्याह्नसन्ध्या का काल–

'अध्यर्धयामात् आ सायं सन्ध्या माध्याह्निकीष्यते' सूर्योदय के बाद डेढ़ प्रहर से लेकर सायंकाल तक मुख्य काल है। एक याम = प्रहर = तीन घंटे। इस से अधिक देर होने पर पहले बताए अनुसार प्रायश्चित्त करना चाहिए। दिन में मध्याह्न सन्ध्या करना सम्भव न होने पर रात्रि के एक प्रहर तक की जा सकती है। अर्थात तब तक उपवास करना चाहिए। 'आ कृष्णेन.' इस सूर्यमंत्र से एक अर्घ्य दें, परन्तु सूर्यमंत्र से उपस्थान न करें, वरुण मंत्रों से सूर्यउपस्थान करें।

ग्यारस के दिन बारस बहुत थोड़ी होगी तो और बारस के दिन उपवास मुक्ति (पारणा) का निश्चय हो तो क्या करना चाहिए? 'उषःकाले द्वयं कुर्यात् प्रातर्माध्याह्निकं तथा' (मत्स्य पु.) प्रातःकाल के तथा माध्याह्न काल के सभी कर्म उषःकाल में भी कर सकते हैं।

इन वचनों में निहित हेतु ध्यान में लाने पर ऐसा कहा जा सकता है कि उदरभरण के कारण जिन्हें मध्याह्न सन्ध्या उचित समय पर करना सम्भव न होने पर उन्हें प्रातःकालीन सन्ध्या-पूजनादी के बाद, वैश्वदेव के पहले मध्याह्न सन्ध्या करने में कोई आपत्ति नहीं है, उस से सन्ध्या न करते भोजन करने का दोष तथा कालातिक्रम दोष नहीं लगेगा।

ध्यान में रखिए- पूर्व में रहा हुआ कर्म पहले कर के बाद में क्रम से कर्म करें (नागदेव) उदाहरणार्थ प्रातःसन्ध्या सायंकाल में करने की बारी आ जाए तो पहले सप्रायश्चित्त प्रातःसन्ध्या, बाद में मध्याह्न सन्ध्या तथा उसके बाद सायंसन्ध्या करनी चाहिए।

अभावे त्वक्षमालायाः कुशग्रंथ्या च पाणिना।
जप एव हि कर्तव्यः एकाग्रमनसा सदा।। (यो, याज्ञ.)

जप के लिए अक्षमाला न होनेपर दर्भग्रंथी से अथवा करमाला से भी जप कीजिए। जप के सम्बन्ध में शेष जानकारी अगले अध्याय में दी गई है।

❖ ❖ ❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २८

मंत्रजापक के पालन के लिए नियम

प्रातर्मध्याह्नयोस्तिष्ठन् गायत्रीजपमारभेत्।
उर्ध्वजानु च सायाह्ने ध्यानालोकनतत्परः।।
प्रातस्तिष्ठन् जपेत् देवीं सायं चैवोपविश्य च।
उपविश्य च मध्याह्ने जपकर्म समारभेत्।।

प्रातःसन्ध्या में तथा प्रातःकाल में जप खड़े रहकर करें।

सायंकाल में घुटने ऊपर कर के बैठकर जप करें तथा मध्याह्न काल में खडे रहकर अथवा बैठकर जप करें।

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाऽधोमुखौ ततः।
मध्ये संमुख हस्ताभ्यां जप एवं उदाहृतः।। (शौनक)
हस्तौ नाभिसमौ कृत्वा प्रातः सन्ध्याजपं चरेत्।
हृत्समौ तु करौ मध्ये सायं मुखसमौ करौ।।

(स्मृति. भा. आ. सू.)

प्रातःकाल में बाई हथेली नाभिपर सीधी रखकर उसपर दाहिनी हथेली रख कर; मध्याह्न में हृदय के पास दोनों मणिबन्ध (कलाई) टिकाकर हाथ सामने रखकर तथा सायंकाल में दोनों हाथ मुख पर औंधे रखकर जप करना चाहिए। ये नियम किसी भी मंत्र के जप के लिए हैं। गोमुखी होगी तो सुबह बाँई हथेली नाभिपर रखकर उसपर गोमुखी में रखा दाहिना हाथ टिकाइए। मध्याह्न-सायंकाल में बाँए के निकट टिकाकर रखिए। इस से जप करते आता है। उर्ध्वजानु-बैठकर दोनों पैरों के तलवे उंगलियोंसहित एक दूसरे को जोड़कर जप करें, बैठकर ऐसा करने से घुटने अपने आप आसन से ऊपर उठ जाते हैं।

प्रयोग तथा अनुभव– सीधा हाथ नाभि के पास टिकाकर सुबह जप करना चाहिए, इतना गुरूचरित्र ग्रंथ पढ़ते समय मालूम हुआ था। पहले ही स्वभाव सचेत और चिकित्सक था, परन्तु शास्त्रविधि का क्या परिणाम होता है यह यथासम्भव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

निष्ठा से करके देखने का प्रयास करने लगा। उसके अनुसार प्रयोग प्रारंभ हुआ। आँखें बन्द कर के जप करने की आदत थी ही। दोनों पैरों के अँगूठे तथा एडियाँ एक दूसरे को टिकाकर जप शुरू हुआ। कुछ दिनों के बाद ऐसा अनुभव आया कि सभी नाडियाँ, नसें नीचे से नाभि की ओर तथा मस्तक से नीचे नाभि की ओर किसी नली में कोई सलाई डालकर वह साफ कर रहा हो, वैसी सफाई हो रही है। कुछ दिनों के बाद इतने धक्के शरीर को लगने लगे कि संतुलन खोकर नीचे गिर पडनें की स्थिति आने लगी। अचानक युक्ति सूझी और पैर के अँगूठे दूर दूर रखकर जप शुरू हुआ और संतुलन खोना बन्द हुआ। यह कुछ दिनों तक टिका रहा तथा फिर से पहले जैसा डोलना चालू हुआ। तब लगा कि पैर दूर रखकर देखें क्या होता है? तब कुछ दिन झोंके खाना बन्द हुआ, परन्तु फिर से वही शुरू हुआ। उस के बाद आँखें खुली रखकर तथा बाद में हाथ नाभि को न लगाते केवल उसके पास रखकर, ऐसे प्रयोग क्रम से किए गए। परन्तु उस प्रत्येक प्रयोग में वैसे ही अनुभव आए। बाद में बैठकर पालथी लगाकर, बाँई एड़ी बाँई जँघा में तथा दाहिनी एड़ी दाहिनी जँघा में लगाकर, पैर के तलवे एक दूसरे को पूरी तरह चिपकाकर (अर्थात् उर्ध्वजानु बैठकर) दोनों हाथ सीधे नाभि पर रखकर आँखें बन्द कर के प्रयोग शुरू हुआ। आश्चर्य की बात यह कि कुंडलिनी जागृति के लक्षण दिखाई देने लगे!

ये जो अनुभव आए, उनकी कार्यकारणमीमांसा (विचारमंथन) शुरू हुई; तब उत्तर मिला कि मनुष्य के पैरों की उँगलियाँ, पैर, हाथ, हाथों की उँगलियाँ तथा आँखें इन में से शरीर में विद्यमान अदृश्य शक्ति बाहर जाते रहती है और उनको गति देनेवाला केन्द्र नाभि के नीचे अन्दर याने मणिपुर चक्र में है। शक्ति बाहर जाने के मार्ग बन्द हो जाने से तथा मानसिक जप की- ध्यान की गति से, वह शक्ति मूल उगमस्थान की ओर (आधुनिक भाषा में जनरेटर या डायनामो की ओर) दौड़ने लगी। वहाँ से उसे विरुद्ध गति मिलकर वह नीचे पैर की ओर तथा ऊपर मस्तक की ओर जाती है तथा उसकी गति के कारण नसें, नाडियाँ, स्नायु आदि को गति मिल कर उनकी पूरी शुद्धि की जाती है तथा आगे उसी गति के कारण धक्के लगते हैं।

कृपादृष्टि, कृपाहस्त (पश्चिमी हस्तांदोलन), पादस्पर्श, तथा पादसेवन इन प्रकारों से शक्ति दी तथा ली जाती है। किसी के मस्तक पर हाथ रखते ही रखनेवाले तथा रखे जानेवाले के भावों के अनुसार, देनेवाले की आध्यात्मिक, मांत्रिक, यौगिक, दैविक आदि शक्तियाँ दूसरों में प्रेषित की जाती हैं। दूसरे के

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नेत्रों की ओर अथवा भ्रूमध्य की ओर विशिष्ट भाव से, अनुकंपा से, प्रेम से देखकर भी ये संक्रमित की जा सकती है। दुष्ट भाव से, द्वेष-मत्सरमय दृष्टि से देखने पर बुरे परिणाम स्थूल-सूक्ष्म शरीर में होते हैं, इतना ही नहीं बल्कि खाद्य-पेय पदार्थों में भी होते हैं। इसी को 'बुरी नजर पड़ना' कहा जाता है। क्रोध से देखने पर अलग परिणाम होते हैं। महेश्वर-शिव ने तृतीय नेत्र से क्रोधित होकर मदन-कामदेव की ओर देखते ही वह भस्म हो गया; परन्तु वे रामविवाह में गए तब पाँचों मुखों के तृतीय नेत्र खुले होकर भी वैसा परिणाम किसी पर नहीं हुआ! पैरों का स्पर्श अथवा हाथों का स्पर्श पीठ की रीढ़ को होते ही शक्ति-संचार-संक्रमण हो सकता है। पादसेवन (पैर दबाना), हाथों से पैर धोना, पैरों पर मस्तक रखना, इनसे भी देनेवाले के भावानुसार संक्रमण हो सकता है, यह विचार-मंथन से सिद्ध हुआ। उसके बाद अनेक संतचरित्रों के अवलोकन से वह निस्सन्देह स्थापित हुआ। ये सारे अनुभव लेते समय जो परमानन्द हुआ, उसे शब्दों में व्यक्त करना असम्भव है। गायत्रीरूप, चिच्छक्ति, सविता की सावित्रीशक्ति 'नः धियः प्रचोदयात्' साधक की बुद्धि में शुद्ध प्रेरणा, स्फूर्ति देती है, इसपर पूरा विश्वास हुआ।

परन्तु इतने से चिकित्सक तथा तत्त्वखोजकर्ता की बुद्धि शान्ति से बैठने की अनुमति नहीं दे रही थी। वह कहने लगी, अन्य लोगों को ऐसे ही अनुभव अल्पप्रमाण में क्यों न हो, आने पर ही सिद्धान्त की स्थापना होगी। अतः सम्पर्क में आनेवाले श्रद्धालु द्विजों को गायत्री का तथा अन्य लोगों को 'हरे राम हरे... हरे हरे' इस बत्तीस अक्षर के मंत्र का (क्योंकि इसी एक मंत्र को गुरु, न्यास आदि की आवश्यकता नहीं है।) जप क्रमशः करने के लिए कहा। तब ऐसा दिखाई दिया कि कम-अधिक काल के बाद उनकी शरीर-शुद्धि तथा नाड़ी-शुद्धि पूर्ववर्णित पद्धति से ही होती है तथा कुंडलिनी जागृति की पात्रता उनमें आती है। बताए अनुसार अनेक पुरुषों, स्त्रियों, ब्राह्मणों, ब्राह्मणेतरों युवा-वृद्धों ने प्रयोग किए। तीन अवस्थाओं को पार करने के बाद भी उनमें उपयुक्त पात्रता आती है- आ गई। ताजा अनुभव- जिस ६९ वर्ष आयु के अविवाहित वृद्ध ने ५०-५५ वर्षों में सन्ध्या नहीं की थी, उन्हें सन्ध्या ही नहीं आती नहीं थी, तथा गायत्री मंत्र भी ठीक से मालूम नही था, उसे शौचाचार याने क्या यह भी पता नहीं था, उसने शौचाचार पालन का प्रारंभ करते हुए गायत्री-पुरश्चरण यथाविधि शुरू किया। रोज चार हजार जप उपर्युक्त पद्धति से वह करने लगा और दो/ढाई महीनों के बाद उसकी कुंडलिनी जागृत तथा क्रियाशील हो गई। अगस्त १९६१ के अन्त में उसने सुषुम्ना में प्रवेश करना प्रारम्भ कर दिया। यह उसने अपने पत्र में लिखे अनुभव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से सिद्ध हुआ है। उसकी कुंडलिनी जागृत होकर, योग्य मार्ग से ऊर्ध्वगमन करने लगी; वह सदाचार सम्पन्न रहकर, नियमों का पालन करते हुए, द्विज गायत्री जपनिष्ठ तथा द्विजेतर नाममंत्रजपनिष्ठ- जपपरायण रहेंगे तो इसी जन्म में मुक्त होंगे। गायत्री जप अध्याय में बिलकुल ताजा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। वह इसकी अगली सीढ़ी का उदाहरण है।

गायत्री मंत्र से तथा स्मृतिपुराणकार ऋषि-महर्षियों ने द्विजों पर तथा मानव जाति पर अनंत उपकार किए हैं। उनसे उऋण होने के लिए देह की मशाल जला कर आरती करने पर भी वह सम्भव नहीं होगा। ऐसा होते हुए अभागी, आत्मघातकी लोक कहते हैं कि सन्ध्या करने में क्या रखा है? तथा यह अनेक नियमों का जाल किसलिए है? परन्तु यह ध्यान में रखें कि यह कृति करके अनुभव लेने का शास्त्र है; वादविवाद, तर्क-चर्चा से निर्णय करने का शब्दशास्त्र नहीं है।

क्रियाशीलस्य सिद्धिः स्यात् न तु वाक्यशतैरपि।
न निवर्तेत तिमिरं कदाचित् दीपवार्तया।।

दीपक के सम्बन्ध में वादविवाद, चर्चा करने से ही रात्रि हो जाने पर अँधेरा नष्ट नहीं होगा!

'केल्याने होत आहे रे। आधी केलेचि पाहिजे।।
यत्न तो देव जाणावा। अंतरीं धरितां बरे।।' (समर्थ रामदास)

अर्थात् संत श्री समर्थ रामदास कहते हैं कि सब कुछ करने से सिद्ध होता है, इसलिए पहले करना ही चाहिए। प्रयत्न को ही परमेश्वर मानना चाहिए। उस परमेश्वर को हृदय में धारण कीजिए।

नियमनिष्ठ विधिनिषेधों का पालन करनेवाले, सदाचारसम्पन्न द्विजों को इसके पूर्व प्रयोग में बताए अनुसार अनुभव आने के लिए उन्हें रोज सूर्योदय से पहले सवा घंटा तो भी पूर्वकथनानुसार खड़े रहकर जप करना चाहिए। शास्त्रों ने तीन घटिका ही समय सूचित किया है।

मध्याह्न काल में पैर जोड़कर, खड़े रहते हुए, हृदय पर हाथ रखकर जप करें तथा सायंकाल में उर्ध्वजानु बैठकर मुखपर औंधा हाथ टेककर जप किया तो भी ऊपर बताए अनुसार ही अनुभव प्राप्त होंगे।

हाथ रखने के स्थान भिन्न क्यों? विशिष्ट काल में विशिष्ट स्थान की अग्नि विशेष क्रियाशील होती है। नाभिस्थान में गार्हपत्याग्नि, हृदयस्थान में दक्षिणाग्नि तथा मुखस्थान में आहवनीयाग्नि का अस्तित्व होता है। यन् मुखं तद् आहवनीयम्

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

(त्रिसुपर्ण); गायत्री भर्गस्वरूप, अग्न्यात्मिका, परमोत्कृष्ट तेजोमयी, दीप्तिमयी है; इसलिए विशिष्ट काल में विशिष्ट स्थान पर हाथ रखकर जप करना चाहिए।

सूचना– अक्षरों का उच्चारण स्पष्ट होना चाहिए। उदाहरण- 'हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे;' इसका उच्चारण 'हरे राम् हरे राम्, राम् राम् हरे हरे' ऐसा करते हैं। 'रे' का स्वर बहुत ऱ्हस्व उच्चारते हैं तथा 'म' अक्षर का उच्चारण 'म्' व्यंजन जैसा करते हैं। इससे संख्यापूर्ति शीघ्र हुई तथा 'मेरा इतना जप हुआ! तुम्हारा इतना ही क्यों? ऐसा अहंकार निर्माण होता है। इस से लाभ न होकर हानि ही होने की संभावना अधिक है! अतः ऱ्हस्व अक्षरों का ऱ्हस्व, दीर्घका दीर्घ तथा पूर्ण अक्षरों का पूर्ण उच्चारण होना चाहिए। रामत्रयोदशाक्षरी मंत्र में तीन बार जय तथा तीन बार राम है। उनका उच्चारण कई लोग जय् तथा राम् ऐसा करते हैं, इससे छः अक्षर कम होते हैं। याने सात अक्षरों का मंत्र ही उच्चारित होता है। व्यंजन याने अक्षर नहीं है; यह गायत्री के २४ अक्षरों के कोष्ठक में दिखाई देगा। उन में र् र् स् र् ये व्यंजन गिने नहीं हैं। गायत्री मंत्र की संथा शुद्ध, स्वरयुक्त कहनेवालों से ही लेनी चाहिए। एक बार श्रवण करने से अथवा पोथी से पढ़कर पाठ करना उचित नहीं है।

गुप्तता- जप गुप्त रीति से करें तथा उसे गुप्त रखें। मैंने इतना जप किया, करता हूँ, आदि किसी निस्वार्थी सुहृद के अलावा किसी से नहीं कहना चाहिए। एक बही में लिखकर रखें। जप प्रकट रूप से करने पर अथवा बताने पर भूत, राक्षस, वेताल, सिद्ध, चारण, गंधर्व आदि उसका हरण करते हैं। इसके अलावा अहंकाररूप कैंसर रोग गुप्तरूप से हो जाता है। लोग अच्छा कहें, प्रशंसा करें ऐसी मान-सम्मान की, प्रतिष्ठा की आकांक्षा हृदय में प्रवेश करती है। जप कम करनेवालों की निंदा आदि करने की रुचि निर्माण होती है। ये सब आकांक्षाएँ, इच्छाएँ ही असल में नाश करनेवाले सभ्य चोर, राक्षस हैं।

गोमुखी- जप के लिए शुद्ध ऊन से बनी अथवा लाल, गुलाबी अथवा पीले कपड़े की, ऊन से या रेशम से अखण्ड बुनावट की, बिन टुकड़े की अखण्ड गोमुखी होनी चाहिए।

गोमुखी से लाभ- गोमुखी में हाथ डालकर माला से जप करते समय मांला उलझती नहीं है। बाया हाथ माला को लगाना नहीं पड़ता है। माला किसी को नहीं दीखती। ठण्ड की, मच्छरों की तकलीफ हाथ को नहीं होती। तथा माला सुरक्षित, छिपाकर रखी जा सकती है।

१८ इंच लंबा तथा ९ इंच चौडा ऐसे कपडे का टुकडा, दुगुना करने पर ९

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इंच चौरस होगी। तल के विरुद्ध बाजू का १/४ भाग काट दीजिए; इस प्रकार गोमुखी तैयार होगी। (आकृति देखें।) रेषा अखण्ड सिलाई सूचित करती है। जप हो जाने पर माला नीचे की झोली जैसे चौकोन में रखें। अन्य दो चौकोन माला रखने के चौकोन पर औंधे रखें। तथा गोमुखी को कोई स्पर्श न कर सके ऐसे तथा शुद्ध स्थान पर उसे रखें ।

अन्य नियम– गीले वस्त्र से हाथ ढँककर किया गया जप निष्फल होता है। तथा देवता प्रसन्न नहीं होते है। (सं.र.भा. स्मृत्यन्तरे) गीले वस्त्र से करना हो तो जल में करें। गीले वस्त्र से भूमि पर जप करने से हाथ ठिठुरते हैं। रुधिराभिसरण में दोष उत्पन्न होता है, ये कारण भी है ही।

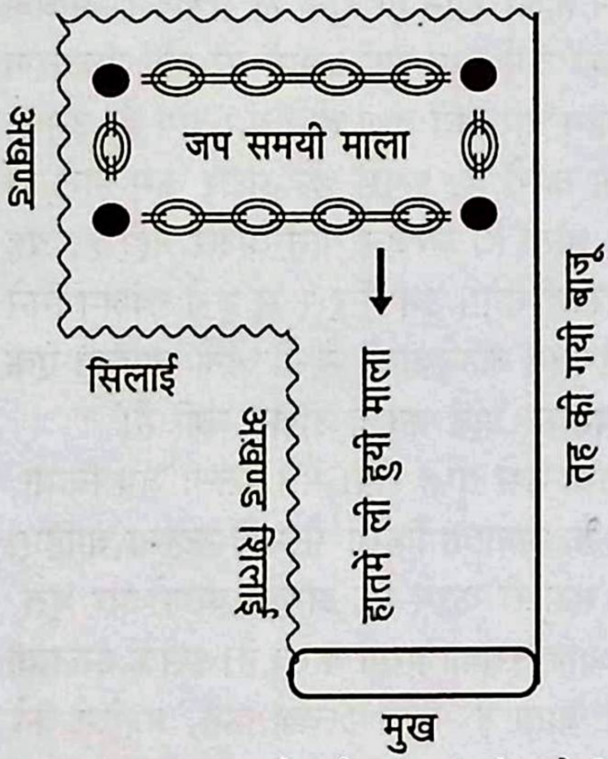

अँधेरे में, अपवित्र स्थान में, रास्ते में, आसन के बिना, जूठे मुँह से, बिस्तर पर, देह या हाथपैर अपवित्र, मलिन होनेपर जप नहीं करना चाहिए। एकान्त, शान्त, पवित्र स्थल में जप करें। ऐसा स्थान आजकल दुर्लभ हो गया है। फिर भी जितना सम्भव हो उतना अच्छा स्थान ढूँढे।

सिर पर कोई वस्त्र न हो। सिर खुला चाहिए। नग्न देह से जप न करें। चोटी को गाँठ लगी हो। जिस कपड़े में शरीर का कोई भाग डालना पड़ता हो अथवा जो कपड़ा शरीर पर डालना पड़ता हो जैसे स्वेटर, शर्ट आदि न पहने। उपवस्त्र पर शाल आदि चादर ओढ़ी जा सकती है, परन्तु उस में खुले धागे (दशा) हों। कपड़े ओ्दि पहन कर किया गया कोई भी धर्मकर्म, भोजन निष्फल होता है। पैर में जूते, खड़ाऊ, मोजे आदि न रखें।

जपादि करते समय त्वचा, नसें, रक्तवाहिनी, स्नायु आदि में सूक्ष्म-अतिसूक्ष्म गति निर्माण होती है। कभी प्रकट भी दिखाई देती है (इसके पूर्व वर्णन किया है।) कंचुक का स्पर्श तथा सूक्ष्म दबाव से गति को विरोध-निरोध किया जाता है तथा उससे अनेक दोष उत्पन्न होते हैं। यह नियम सौभाग्यवती (विवाहित) स्त्रियों के लिए नहीं है।

जप करते समय किसी से बात न करें, स्वगत भाषण भी न करें। दाहिनी बाहु

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपवस्त्र के बाहर रखे तथा जप करनेवाला दाहिना हाथ ढँका हुआ हो। नाभि के नीचे के पेट के भाग को स्पर्श न करें। चलते-फिरते, हँसते, इधर-उधर देखते, पीढ़ा या भित्ति से पीठ टिकाए, अन्य लोगों की बात सुनते जप न करें। पैर फैलाना, टिककर आराम से बैठना, हाथ या पैर एक दूसरे पर कैंची की भाँति रखना, सिर गर्दन आदि हिलाना, दाँत दिखाना, होठ चबाना, शरीर खुजलाना, हाथ से जमीन या वस्त्र कुरेदना, खटमल आदि ढूँढना या पकड़ना, फूँक लगाना, दाँत रगड़ना, ताली बजाना, चोटी खोलना, बालों को सहलाना, नाक साफ करना, खाँसी लाना, खकारना, थूकना, जम्हाई देना, आदि बातें न करें। एक दूसरे को रेशमी-ऊनी वस्त्र पहनकर भी स्पर्श न करें। कुत्ता, बिल्ली, अस्पृश्य को देखना या दिखाई देना, आलस्य, ऊबना, हाथ-पैरों को ऐंठना आदि न करें।

विवश होकर थूँकना, खाँसना, छींकना, जम्हाई देना आदि करना पड़े तो आचमन कर तीन प्राणायाम करें तथा भगवत् स्मरण करें। सूर्य, धेनु, विप्र अथवा संन्यासी के दर्शन करें।

सदा त्याज्य- दिन में नींद लेना, पान खाना, नृत्यगायन करना, कुटिलता, क्रोध, दुष्ठ-कठोर-अश्लील भाषण, परनिन्दा, परदोषचर्चा, चुगली आदिका सदा त्याग करें।

जपमाला के सम्बन्ध में- जप की माला किसी को दीखनी नहीं चाहिए। वह गले में, कलाई में न डाले। जप माला को बाएँ हाथ से कभी स्पर्श न करें। दाहिने हाथ की तर्जनी जप करते समय माला को नहीं लगनी चाहिए। जप करते समय माला को धक्के देना, उसकी खट्खट् जैसी आवाज करना, आदि बातें नहीं होनी चाहिए। जप करते समय गुरु को भी माला दिखानी नहीं चाहिए। उसी प्रकार गुरूजनों के सामने मुद्रा न करें। माला के सम्बन्ध में विशेष जानकारी अगले अध्याय में है।

जपसंख्या गणना- जप करते समय संख्या अवश्य गिननी चाहिए। 'असंख्यम् आसुरम्' न गिनते जप करना आसुरी कर्म है। 'संख्याहीनः जपः व्यर्थः' आदि अनेक वचन हैं। संख्या गिनने से विक्षेप होता है, एकाग्रता में बाधा आती है, ऐसा कुछ लोग कहते हैं तथा वह प्रारम्भ में सत्य भी होता है; फिर भी आदत हो जाने पर वह कार्य हाथ तथा उँगलियाँ यंत्र की तरह बिना गलती के करते हैं; माला कब पूरी हुई यह पता भी नहीं चलता। वह 'शारीरं केवलं कर्म' होने लगता है।

आशंका- माला की कितनी आवृत्तियाँ हुई, यह विक्षेप के बिना कैसे सम्भव है? ऐसा न होने के लिए सरल युक्ति है। जितने शतक जप करना हो उतने तुलसीकाष्ठ मणि अथवा सूखी गन्ध की टिकिया बाँई मुठ्ठी में रखें। एक माला पूरी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

हो जाने पर एक गोली नीचे डाले। यह भी आदत हो जाने पर, बिना समझे अनायास परन्तु बिना गलती के यह कार्य होने लगता है, ऐसा इस लेखक का तथा अनेकों का अनुभव है। जिसने कभी पहले अनेक वर्षों में सन्ध्या नहीं की थी, वह गायत्री पुरश्चरण करने लगा तथा उसे यह नियम बताया तब उसने उपर्युक्त दोनों आशंकाएँ व्यक्त की; परन्तु दो महीनों के बाद उसका पत्र आया कि अब संख्या गिनने में बिलकुल विक्षेप नही होता। वह पत्र मेरे पास है; वह वृद्ध पंचवटी में अनुष्ठान कर रहा है।

गिनने से क्या लाभ? माला जिस उंगली के भाग पर रखकर जप किया जाता है, उस पोरपर मणि क्रम-क्रम से, निश्चित गतिनुसार घर्षण करते रहते हैं। उस घर्षण का परिणाम त्वचा, सूक्ष्म ज्ञानतंतु, अतिसूक्ष्म रक्तवाहिनियों आदि पर होता है तथा वह पीठ के मेरुदण्ड से होता हुआ मस्तिष्क में पहुँच जाता है। बीच की उंगली से मणि ऊपर की ओर ढकेलते समय तथा अँगूठे से क्रमशः खींचते समय भी यही होता है। 'घर्षणात् जायते त्वग्निः' घर्षण से अग्नि (ऊष्णता, तेज) उत्पन्न होता है। अग्नि सद्गतिदायक (अगिगतौ) है। तथा वह पावक-पावन करनेवाला भी है। यह कार्य अत्यंत सूक्ष्म प्रमाण में धीरे धीरे होने के कारण साधारण मनुष्य को परिणाम दिखाई न देने पर भी अतींद्रिय ज्ञानशक्तिसम्पन्न जिन ऋषियों को दिखाई दिया तथा वह अत्यन्त हितकारक प्रतीत हुआ, उन्होंने संख्या की आवश्यकता बताई है। सुशिक्षित समझे जानेवाले आधुनिक समाज के व्यक्ति स्वयं अनुभव न किए ऐसे समाचारपत्रों के छपे समाचारों पर शतप्रतिशत विश्वास रखते हैं; परन्तु मनुष्यमात्र के निस्वार्थी सुहृद के श्रुतिस्मृति पुराणों में दिए गए वचनों पर विश्वास नहीं करते हैं। कुछ लोग तो वादविवाद के लिए प्रवृत्त होकर प्रत्यक्ष प्रमाण की माँग करते हैं। यह दुर्भाग्य का, अधःपतन का लक्षण है, ऐसा यदि कोई कहे तो क्या वह गलत होगा? 'तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ' (भ.गी.) यह भगवद्वचन सैंकडों बार पढ़नेवाले तथा कंठस्थ करनेवाले और ज्ञानेश्वरजी का इन पंक्तियों पर भाष्य पढ़नेवाले, ऐसे सुशिक्षितों में यह प्रवृत्ति प्रबल हो गई है। ऐसी दुष्प्रवृत्ति का ही परिणाम आधुनिक हिन्दू धर्म की तथा हिन्दुओं की सभी को दुःसह लगनेवाली दुर्दशा है!

'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः'

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : २९

जप की माला

अभावे त्वक्षमालायाः कुशग्रंथ्या च पाणिना।
जप एव तु कर्तव्यः एकाग्रमनसा सदा।। (यो. याज्ञ.)
गायत्रीं अक्षमालायां सायं प्रातश्च यो जपेत्।।१९४।।
चतुर्णां अपि वेदानां फलं प्राप्नोत्यसंशयम् (प.पु.सृ.खं. ४३)
त्रिसंध्यं यः जपेत् नित्यं गायत्रीं हायनं (१ वर्ष) द्विजः।।१९५।।

इससे सिद्ध होता है कि जप के लिए अक्षमाला यह मुख्य साधन है। जप की संख्या गिनना आवश्यक होने से उसका जो प्रमुख साधन है उसे 'अक्षमाला' कहते हैं। तथा इसके कारण आगे चलकर अन्य जपमालाओं को भी अक्षमाला ऐसा ही कहा जाने लगा।

प्राकृतिक (शरीरस्थ) अक्षमाला- सुषुप्ना नाड़ी में रहनेवाले छः चक्रों के दलोंपर होनेवाले अ से क्ष तक के ५० सबिंदु (अं, आं, इं, ईं हं, क्षं) अक्षरों पर ध्यान केंद्रित करते हुए अनुलोमविलोम (अर्थात् सीधे-उलटे) क्रम से, अर्थात अं से क्षं तक तथा क्षं से अं तक गिनने से सौ संख्या होती है। मोक्षप्राप्ति के लिए सौ मणियों की माला होनी चाहिए ऐसा ही कहा है। अ से क्ष तक के वर्णों की होनेवाली माला इसलिए इसे 'अ-क्ष-माला' ऐसा यथार्थ नाम दिया गया।

तीनों सन्ध्याओं में गायत्री का जप अक्षमाला से जो द्विज एक वर्ष तक करेंगे, उन्हें चारों वेदों का संपूर्ण फल मिलेगा इसमें सन्देह नहीं है। पद्म पुराण में ऊपर दिए वचन में जो कहा है वह कृत्रिम मणियों की अक्षमाला के सम्बन्ध में न होकर शरीरस्थ अक्षमाला के सम्बन्ध में कहा है; तथा जप याने १०/१०८ न होकर पूर्व कथनानुसार उत्तम काल में किए गए सविधि जप के सम्बन्ध में है, ऐसा मानना आवश्यक है। उस अक्षमाला का प्रभाव ऐसा किस कारण से है? चक्र के प्रत्येक दल के ऊपर होनेवाले अक्षरों को गिनने के लिए उन चक्रों को तथा दलों को ध्यान से देखना आवश्यक है। उससे तथा गायत्री के प्रभाव से षट्चक्रों की तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उनके दलों की जागृति होती है। चक्रों की जागृति होने से तथा विशिष्ट दलों पर ध्यान रखने से प्राप्त होनेवाले कई अद्भुत लाभ जैसे सिद्धि, आरोग्य, वैराग्य, तथा ज्ञान आदिकी सहज प्राप्ति होती है; अर्थात्, चारों वेदों में बताए हुए विविध कर्म तथा यज्ञयागादि से जो जो प्राप्त होना सम्भव है, वह ऐसे जप से केवल एक वर्ष में प्राप्त होना असम्भव नहीं है। शरीरशुद्धि, सत्त्वगुण की वृद्धि, आरोग्य आदि न्यूनाधिक मिलने में कुछ लोगों को अधिक समय भी लग सकता है। 'षट्चक्रदर्शन' श्री. बा. वैद्य, इस्लामुर) के द्वारा लिखा मराठी ग्रंथ तथा लेडबीटर द्वारा लिखा अँग्रेजी ग्रंथ 'The Chakras' अवश्य पढ़े। साथ ही कल्याण मासिक के शक्ति-विशेषांक तथा योगांक में सचित्र काफी सामग्री दी है। लगभग २०/२१ उपनिषदों में योग तथा चक्रादि का वर्णन दिया गया है। इसलिए यहाँ अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

इस अक्षमाला से १ घंटा प्रतिदिन जप करने से जो लाभ एक वर्ष में होगा, उतना लाभ मणियों की माला से १२ वर्षों तक प्रतिदिन उतना ही जप करने से मिलेगा ऐसा नहीं। इसमें माला, गोमुखी नहीं चाहिए। एकाग्रता शीघ्र साध्य होती है। इस माला में ळं यह मेरुमणि है; उसे गिनना नहीं चाहिए। इस माला से अन्य मंत्रों का जाप भी शीघ्र सिद्धिदायक होगा, इतना ही नहीं बल्कि 'अरिः मूलनिकृंतनः' ऐसा जिस अरिमंत्र का प्रभाव, वे अरिमंत्र भी सिद्ध होते हैं! तब फिर अन्य सिद्ध, साध्य तथा सुसिद्ध जाति के मंत्र शीघ्र सिद्ध होंगे इसमें क्या आश्चर्य है! (शारदा ति. ज्ञानार्णव)

इस माला से सौ संख्या (अनुलोम-विलोम पद्धति से) होती है। अक्षमाला उपनिषदों में माला संस्कार में इसी पद्धति से मणियों पर न्यास बताए हैं। परन्तु छपे ग्रंथों में उस न्यास के बाद अष्टोत्तरशत ऐसा जो उल्लेख है (निर्णयसागर पु.) वह गलत है। जिन्हें१०८ अथवा १००८ जप करना होगा, उन्हें १०० अथवा १००० हो जाने पर कं, चं, टं, तं, पं, यं, शं, ळं इन आठ बीजों से गिनकर संख्यापूर्ति करनी चाहिए। इन आठ अक्षरों को मिलाकर 'वर्गाष्टक' कहते हैं। इस शरीरस्थ अक्षमाला को 'मातृका वर्णमाला' ऐसा भी कहते हैं।

(सारसंग्रह, ज्ञानार्णव, आदि.)

मणियों की माला- प्रवाल (मूँगा), मौक्तिक (सच्चे मोती), स्फटिक (मणि), शंख (शंखाकृति छोटी छोटी कौडियाँ), रजत (चाँदी के मणि), अष्टापद (सुवर्ण के मणि), चंदन, पुत्रजीविक (पुत्रवंती के मणि), अब्ज (कमलबीज), रुद्राक्ष, इन दस प्रकारोंका उल्लेख अक्षमाला. उ. में है। हिरा-माणिक आदि रत्नों के मणियों की तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दर्भ को गाँठ लगाकर की गई माला का उल्लेख (रा. चं.) है। तुलसीकाष्ठ माला प्रसिद्ध ही है।

फलभेद- शंखों की माला लक्ष्मीदायक, स्फटिक की भोगप्रद, रुद्राक्ष की सर्वसिद्धिप्रद, पुत्रवंती की पुत्र, पशुधान्यसमृद्धिकारक, मोतियों की मोक्षदायक तथा सर्व सम्पत्तिसमृद्धिकारक, कुश-दर्भग्रंथी की पापविनाशक, चाँदी तथा सुवर्ण की कामनापूर्तिकारक, कमलबीज की गोपालकृष्ण को अतिप्रिय, तुलसीकाष्ठमणि की सभी को सर्वकर्म में श्रेष्ठ यथेष्ट सिद्धिदायक तथा रुद्राक्ष की शंकर को अत्यंत प्रिय, प्रवाल की गणेश, मंगलग्रह आदि को अति प्रिय, तथा चन्दन के काष्ठ की माला आल्हाददायक है।

करमाला- उंगलियों के भागों पर (पोर) होनेवाली माला यह दस मणियोंकी ही हो सकती है। इसमें दो।तीन प्रकार हैं।

(१) शिवमाला- अनामिका के बीच के भाग से प्रदक्षिणाक्रम से तर्जनी के मूल तक दस पोर (पर्व) होते हैं। मध्यमा मूलपर्व तथा मध्यपर्व मिलकर करमाला का मेरुमणि होता है। मेरु का उल्लंघन न हो यह नियम सब प्रकार की मणियों की माला को लागू होता है। इसलिए उलटे क्रम से अनामिका मध्यपर्व तक गिनने पर दो माला होती है। ऐसे मालाओं की गिनती बाए हाथ की करमाला से उलटी-सीधी करने पर चारसौ तक जप आसानी से गिना जाता है। (२) इस पर्व पर न गिनते हुए इस पर्व के नीचे की रेखा पर से गिनना, एक और अलग प्रकार है।

(३) शक्तिमाला- मध्य के मूलपर्व से प्रदक्षिणक्रम से तर्जनी मूल पर्वतक दस पर्व होते हैं। मध्यमा मध्यपर्व तथा अनामिका मध्यपर्व का मिलकर मेरु होता है। माला को मेरु अवश्य चाहिए।

माला भेद से फलप्रमाण भेद– 'अंगुलीगणनादेकं' अर्थात् पर्व से गिनने पर एक फल; रेषाओं से ८ गुना; पुत्रवंती से १० गुना, शंख से १०० गुना, चंदन से १०० गुना, मूँगे से १००० गुना, रत्नमणि से १०,००० गुना, स्फटिक से १०,००० गुना, मोतियों से लाख गुना, पद्माक्षों से दशलक्ष गुना, चाँदी से दशलक्ष गुना, सुवर्ण से कोटि गुना, कुशग्रंथी से शतकोटि गुना, रुद्राक्ष से अनंत गुना फल मिलता है। तुलसीकाष्ठमाला से सब को सब कार्य में इच्छित फल मिलता है। तथा वह चिरकाल टिकता है।

माला कितने मणियों की हो? सर्वसाधारण जप के लिए १०८, ५४ अथवा २७ मणियों की होनी चाहिए। मोक्षार्थी को १००, ५०, २५ की; धनार्थी को १२०, ६०, ३० की; पुष्टिकामी को १०८, ५४, २७ मणियों की माला हो।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माला कैसे गाँठना चाहिए? जप करने की माला के मणि एक-दूसरे से बिलकुल अलग रहने चाहिए, क्योंकि एक मणि खींचते समय उंगली का स्पर्श अगले या पिछले मणि को नहीं होना चाहिए, ऐसा नियम है; इसलिए प्रत्येक मणि के आगे-पीछे उसी धागे की या धातु के तार की ऐसी गाँठ होनी चाहिए कि, वह मणि ऊपर-नीचे उस धागे पर न घिसे या पीछे हटे। मणि घिसने से उनके छिद्र बड़े हो जाते हैं तथा धागा या तार छीज कर जल्दी टूट जाते हैं। माला पिरोने का बिलकुल अलग प्रकार अक्षमाला उपनिषद में दिया है; परन्तु वह बहुत खर्चीला होने के साथ उससे माला बहुत वजनदार हो जाएगी। तथा आजकल के लोगों को वे मणि जल्दी खींचना सम्भव नहीं होगा। इसलिए उसे यहाँ नहीं दिया है। माला गूँथने पर जप प्रारंभ करने के पहले उसपर शास्त्रोक्त संस्कार करना चाहिए। एक के द्वारा प्रयुक्त माला दूसरे को जप के लिए नहीं लेनी चाहिए। मणियों को गूँथते समय एक मणि का पुच्छ दूसरे के पुच्छ की ओर तथा मुख मुख की ओर रहना चाहिए। छिद्र का आकार एक ओर से बड़ा-चौड़ा होता है तथा दूसरी ओर से थोड़ा छोटा होता है। बड़े आकार का छिद्र मुख तथा छोटा होता है उसे पुच्छ कहते हैं। 'गाँठना' इस शब्द से गाँठ लगाते पिरोना अर्थ स्पष्ट होता है।

माला संस्कार– विशिष्ट पद्धति से तथा विशिष्ट मंत्रों से माला को अभिमंत्रित करना याने माला-संस्कार करना। उनके नियम– जिस देवता के मंत्र से अथवा मंत्रों से माला अभिमंत्रित की होगी, उस देवता के अथवा उस देवता की शक्ति के मंत्रों के अलावा अन्य मंत्रों का जाप उस माला पर नहीं करना चाहिए। उदाहरण– शिवमंत्रों से अभिमंत्रित माला भवानी, चण्डी आदि शिवशक्ति मंत्र के जाप को ली जा सकती है, वैसे ही शिव अथवा शक्ति जापके परिवार के देवों का मंत्रजप उस पर किया जा सकता है।

अपवाद- अक्षमालोपनिषद में दिए विधि के अनुसार सुसंस्कृत की हुई सौ मणियों की माला किसी भी मंत्र के जप के लिए चल सकती है। धर्मसिंधु में दिया विधि शिवमंत्र से युक्त है। वह गायत्री जप माला के लिए भी चलेगा, क्योंकि गायत्री ब्रह्मविष्णुशिवात्मिका, ब्रह्माणी, रुद्राणी, वैष्णवी शक्तिमयी है। धर्मसिंधु में दिए विधि की अपेक्षा उपनिषद में दी गई विधि अधिक सरल है। उसमें स्वरयुक्त वेदमंत्र नहीं है।

जिसे संस्कृत वचन शुद्ध रीति से पढ़ने आता है ऐसा कोई भी द्विज वह संस्कार कर सकेगा। इसके अलावा उस विधि से संस्कारित की हुई माला की महिमा कितनी अगाध है यह उन मंत्रों में निहित अर्थ जान लेने से सहज मालूम होगा। वह विधि देखनेपर तथा अ. आ. इ. आदि मातृकाओं के स्वरूप का वर्णन देखनेपर, तब भिन्न

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भिन्न देवों के नामों में तथा उनके एकाक्षरी बीज मंत्र में निहित रहस्य तथा प्रभाव ज्ञात होगा।

विशेष सूचना– माला संस्कार में 'अष्टगंध' चाहिए। वर्तमान काल में बाजार में जो अष्टगंध मिलता है वह सच्चा अष्टगंध तो होता ही नहीं है, परन्तु गन्ध के रूप में उसे ललाट पर न लगाए तथा देवपूजा में उसका उपयोग न करें तो पावित्र्यसंरक्षण होगा। अष्टगंध में वैष्णव अष्टगंध, शैव अष्टगंध तथा शक्ति अष्टगंध ऐसे तीन प्रकार हैं। वे मंत्रमहार्णव में दिए हुए ही नीचे दिए हैं। उसमें कुछ लोग गोरोचन मिलाते हैं। यह शुद्ध मिलना अत्यन्त कठिन है। कठिनाई से मिला भी तो उसकी कीमत ६०/७० रुपये तोला होती है। अन्य वनौषधि भी बिलकुल सस्ती नहीं है। इससे यह स्पष्ट होगा कि बाजार में मिलनेवाले अष्टगंध में जो सुगंधि होती है, वह सुवासिक तेलों की होती है। इन तीनों अष्टगंधों में तेल मिश्रित एक भी पदार्थ नहीं है। तेल देवपूजा में अभ्यंगस्नान के अतिरिक्त अन्यत्र निषिद्ध है।

विष्णु का अष्टगंध– चंदनाऽगुरुहीबेर कुष्ठ-कुंकुम-सेव्यका, जटामांसी मुरमिति

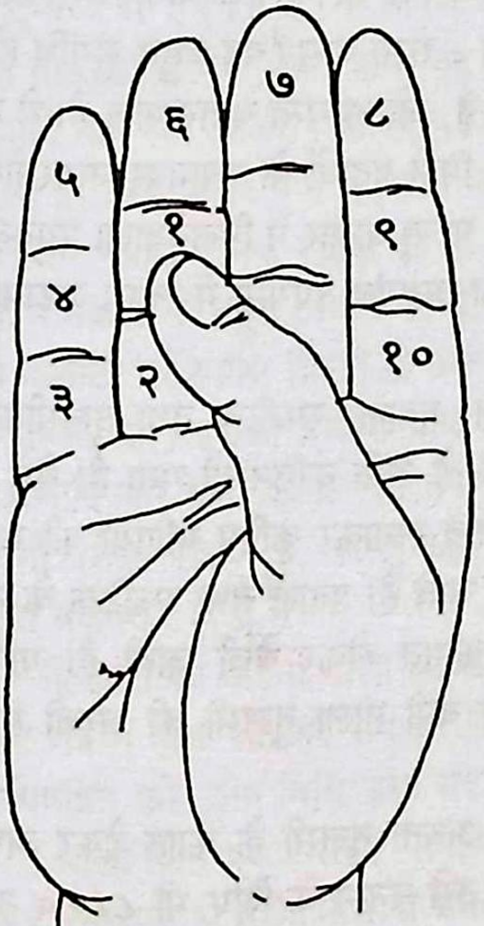

चित्र-संख्या १

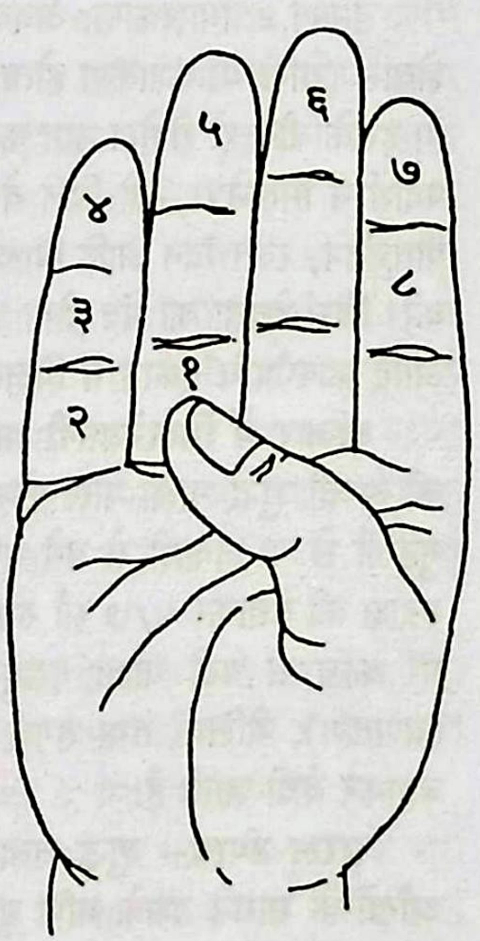

चित्र-संख्या २

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विष्णोर्गंधाष्टकं स्मृतम्। चन्दन, अगुरु (अगुरु = शीशम की लकडी, काष्ठ; हीबेर =(सुगंधी द्रव्य); कुष्ठ= कोष्ठ (तीखा होता है;) एक वनस्पति; कुंकुम = केशर; सेव्यका = (आँवला, वाळा); जटामांसी; मुर = (मुरा) तालपर्णी; ये समभाग लेकर उनके मिश्रण से बननेवाले गंध को विष्णु का अष्टगंध कहते हैं। १ तोले में १/८ केशर होना चाहिए। उसकी कीमत कम से कम १। रुपया १९६० इ. में होगी! इस से समझ लीजिए कि बाजार में मिलनेवाला अष्टगंध कितना असली-नकली होना है।

शक्ति का अष्टगंध– यह तो और भी अधिक मँहगा होगा, क्योंकि इसमें गोरोचन है। उस पर सरकारी महसूल या चुंगी प्रति तोला रु. ३० है। 'चन्दनाऽगुरु-कर्पूर-चोर-कुंकुम-रोचनाः। जटामांसी कपियुता शक्तेर्गधाष्टकं स्मृतं।' (कर्पूर = कपूर; चोर = शंखिनी , चोरवल्ली; रोचना = गोरोचन; कपि = शूकशिंबी (कँवाच)

शिव का अष्टगंध–

चन्दनाऽगुरुकर्पूर तमाल जल कुंकुमम्।
कुशीतं कुष्ठ संयुक्तं शैवं गंधाष्टकं स्मृतम्।।

तमाल = तमालकाष्ठ; अथवा तमालपत्र; जल = जलनीली = पानीपर रहनेवाला शेवाल (वेलि या कणकण होता है); कुशील = रोसा घास (यह बहुत सुगंधि होती है। इसके बीज से रोशेल नाम का तेल बनता है, जो अत्यन्त वातनाशक है। ये सब पदार्थ न मिलनेपर, जो मिले वे लीजिए। न मिले पदार्थों के स्थानपर नागरमोथा, पीतचंदन, रक्तचंदन आदि बिल्वकाष्ठ डाले। परन्तु बाजार में मिलनेवाला प्रयुक्त न करें। जिस देवता का मंत्र होगा उस देवता का अष्टगंध उपयोग में लाए। जटामांसी आदि काष्ठौषधि दूकान में मिलती है।

बाजार में मिलनेवाली माला– रुद्राक्ष, प्रवाल, स्फटिक तथा तुलसीकाष्ठ की सच्ची शुद्ध माला मोल लेना महाराष्ट्र में तो अति कठिन हो गया है। बेरों की गुठली से या लकड़ी से बने मणियों पर लाख लगाकर कृत्रिम मणियों की माला रुद्राक्ष की बताकर ५/७ सौ रुपये ऐंठ लिए जाते हैं। प्रवाल तथा स्फटिक के नाम पर काँच से बनी माला दसगुना अधिक कीमत लेकर बेची जाती है। घाणेरी (तणतण), वेलियों तथा तगरी के काष्ठ से बनी माला तुलसी की सच्ची माला बताकर बेची जाती है।

सरल उपाय– शुद्ध चन्दन के काष्ठ अथवा तुलसी के काष्ठ देकर अपनी आँखों के सामने उसके मणि बना लीजिए। उसे बनाने के लिए भी ८/१० आने प्रतिमाला लगेंगे। माला का प्रत्येक मणि समान आकार का होना चाहिए। पुनवंती की

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

माला सच्ची तथा सस्ती मिलती है; परन्तु उस के कुछ मणियों के छिद्र बहुत बडे होते हैं। ३ मालाएँ लेने पर उससे एक माला अच्छी तैयार होती है। चाँदी की अथवा सोने की बिना लाख की मणियों की माला तैयार करवाएँ। सच्चे स्फटिक गयाक्षेत्र में मिलते हैं। परन्तु मालाएँ ७५/१०० रुपयों तक मिल सकती है। सच्चे प्रवाल जवाहिरे से लेकर उनसे माला बनाए। जपमाला में भिन्न जाति के मणि न हों। (उपर्युक्त कीमतें १९६० ई. के काल की हैं।)

रुद्राक्ष— रुद्राक्ष जाबालोपनिषद् में रुद्राक्ष का वर्णन है। उसमें श्वेत, रक्त, पीत तथा कृष्ण ऐसे चार वर्णों के रुद्राक्षों का वर्णन है। यह उल्लेख १९३२ ईसवी के पूर्व देखा था, इसलिए १९३३ ई. में काशी क्षेत्र में रुद्राक्ष मालाओं के सभी दूकानों में ढूँढा, तब उत्तर मिला कि 'सफेद रुद्राक्ष! यह नाम तो हमने पहली बार आप के मुख से सुना! कभी किसी ने देखे भी नहीं हैं।' १९४४ ई. के लगभग पता चला कि धौम महाबलेश्वर में श्रीमान् कानिटकर के बगीचे में रुद्राक्ष वृक्ष है। उसके दो/तीन सौ मणि मँगवाए। वह पुलिंदा खोलेकर देखा तो वे सफेद चतुर्मुखी रुद्राक्ष (ब्रह्मा) थे उनके स्वाभाविक ही मुख थे तथा वे छिद्र मणि के मध्य तक थे। परन्तु महाराष्ट्र के दुर्भाग्य से १९४८ ई. के भीषण आग की लहर में वह परम पवित्र, परम् दुर्लभ वृक्ष तोड़ डाला गया; फिर कभी वह फिर से पनपा या नहीं इसकी भी खोज-खबर किसीने नहीं ली। आजरा (कोल्हापुर जिला) गाँव के निकट रुद्राक्ष वृक्ष होने की खबर मिली है। उसी प्रकार पुणे में स्थित फर्ग्युसन कॉलेज के बगीचे में वह है ऐसा पता चला है। भद्राक्ष नामक रुद्राक्ष की ही एक अलग जाति है। वे विहित न होने पर भी कृत्रिम नकली से बहुत अच्छे! सच्चे रुद्राक्ष तथा मालाएँ काशी में मिलती हैं। सुनार की कसौटी पर रुद्राक्ष घिसने से उसपर साधारण सोने जैसी पीली रेषा निकलती है (रुद्रा-जा. उ.) इसकी प्रचीति प्राप्त हुई है। श्वेत-रक्त आदि चार प्रकार के रुद्राक्ष ब्राह्मणादि चार वर्णों को क्रमशः उपयोग में लाने चाहिए। (रुद्रा. जा. उप.) स्फटिक के भी परीक्षा-लक्षण हैं, परन्तु कहाँ तक विस्तार करें। स्फटिकमाला जप के लिए बहुत बजनदार होती है।

द्विजेतरों को अपनी माला का संस्कार अपने जाप के नाममंत्र से करना चाहिए। वैसा मंत्र न होगा तो 'हरे राम हरे राम' इस बत्तीस अक्षर के मंत्र से प्रत्येक मणि अभिमंत्रित करें। शेष विधि उसी मंत्र से करें। स्त्रियों के लिए यही नियम है।

माला किस प्रकार रखें? अनामिका के बीच के पर्व पर माला मेरुमणि के पास पकड़े। मध्यमा से मणि नीचे से ढकेल कर अँगूठे के भाग से क्रम से खींचे, नख का स्पर्श न करें। मेरुमणि तक आने पर मेरुमणि को अँगूठे से प्रदक्षिणा करें और

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अँगूठा तथा बीच की उँगली इनसे माला धीरे से उलटी घुमाकर, अन्य उंगलियों पर न जाने देते हुए, तर्जनी न लगाते, अनामिका के बीच के भाग पर पहले जैसी रखें तथा जो मणि अन्त में आया था, उसी से फिर से प्रारम्भ करें।

प्रमाद तथा उसके दुष्परिणाम– माला को धक्के देने से कार्यसिद्धि नही होती। वह नीचे पटकने से दुःख प्राप्ति; आवाज होने पर रोग, हाथ से नीचे गिरने पर जापक का नाश, अथवा बड़ा संकट! जाप करते समय टूटने पर मृत्यु आने की संभावना; झोंका देने से बुद्धि चंचल होती है; मणि फूटने पर व्याधि होती है; खट्खट् आवाज होने पर कलह झगड़े उत्पन्न होते हैं; जिस उंगली पर रखी होगी उससे दूसरी पर चली जाए तो विद्वेष उत्पन्न होता है। नीच मनुष्यों का या अपवित्र पदार्थ का स्पर्श माला को होने पर पंचगव्य से स्नान कराते हुए, उसे शुद्ध बनाकर, बाद में उसका उपयोग करें; तब तक करमाला से जाप करें।

प्रायश्चित्त– जाप करते समय मणि फूट गया, नीचे गिर गया, माला हाथ से नीचे गिर पड़ी तो; और कभी भी अपवित्र व्यक्ति, पदार्थ इनका स्पर्श होने पर, द्विजों को गायत्री का १०८ जप तथा अन्य लोगों को नाममंत्र का एक हजार जप प्रायश्चित्त के लिए करना चाहिए।

जप करते समय विघ्न– जप करते समय कई लोगों को नींद आने लगती है तथा माला नीचे गिर पड़ती है। जाप में, ध्यान में प्रमुख चार विघ्न हैं। लय, विक्षेप, कषाय तथा रसास्वाद, लय याने निद्रा जैसी स्थिति; यह विघ्न आ रहा है ऐसा प्रतीत होते ही उठकर आसन पर खड़े होना चाहिए। अथवा आँखों को पानी लगाए अथवा भगवद्गीता का कोई श्लोक या अन्य ऐसा कुछ जोर से कहना चाहिए; 'हरे राम, हरे राम' यह मंत्र जोर से बोलिए, याने विघ्न भाग जाता है। विक्षेप याने अन्य विचार मन में आना। यह विघ्न आते ही आँखें खोलकर उपास्य देवता का चित्र अथवा किसी संत के चित्र की आँखों की ओर एक-टक देखते रहें। अन्य विघ्नों का वर्णन परमामृत ग्रंथ में देखें।

मंत्र पुरश्चरण के विशेष नियम– कुछ द्विजों की सूचना मिलने से यह जानकारी दी जा रही है। प्रारम्भ में पुण्याहवाचन आदि विधि करें; याने सोहर या सूतक का दोष अर्थात् जननाशौच और मृताशौच पुरश्चरण समाप्ति तक नहीं रहेगा। पहले दिन जितना जाप किया होगा उतना रोज होना ही चाहिए। कम-अधिक न हो। अधिक कर ने पर पुरश्चरण संख्या में उसे न गिनें। सीमोल्लंघन, नदी-तालाब तैर कर पार जाना निषिद्ध है। त्रिकाल स्नान, उस देवता की त्रिकाल पूजा; कम से कम दो बार करनी चाहिए। क्षौर, बाल निकालना, डाढ़ी करना न करें। जाप बैठकर या खड़े रहकर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

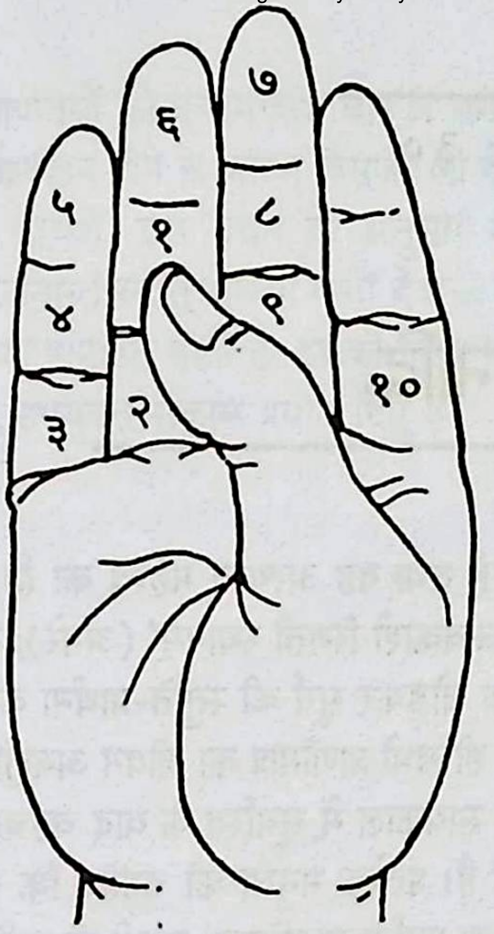

चित्र-संख्या १

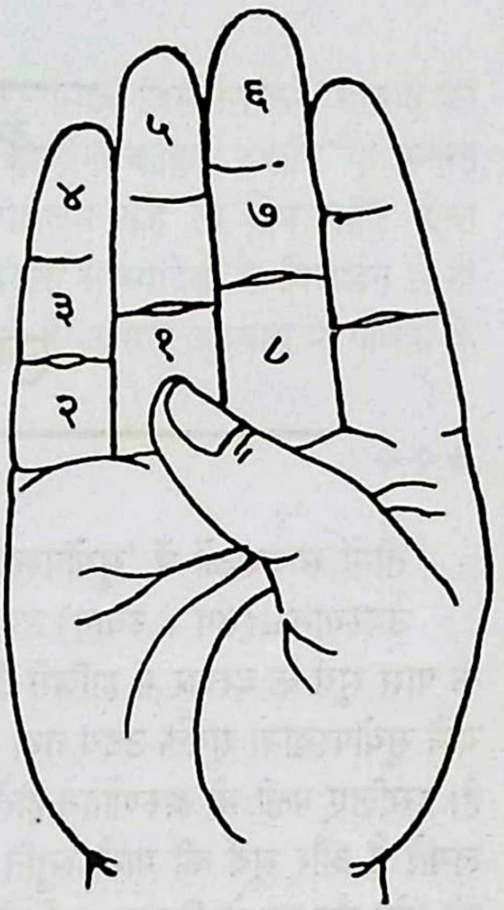

चित्र-संख्या २

आसन पर ही करें।

आहार– मधुकरी अथवा घर का होगा तो हविष्यान्न; दुग्ध-फलाहार; इन में से जो सम्भव हो। पुरश्चरण यह एक तपस्या है और तपस्या के काल में गृहस्थ को भी मधुकरी माँगने में कोई आपत्ति नहीं है। भोजन एक बार ही करें। अर्थात् मधुकरी अपने खुद के लिए ही हो। बेचने या आश्रितों के पोषण के लिए न हो। वैसे ही मधुकरी में से बचा अन्न देकर बर्तन मँजवा लेना, आदि बातें निंद्य हैं। ये बातें होती हैं, यह 'चक्षुर्वै सत्यं' है। इसीलिए इसका विशेष उल्लेख करना पड़ा। गायत्री पुरश्चरण किए बिना द्विजों को अन्य मंत्रों का पुरश्चरण नहीं करना चाहिए। गायत्री पुरश्चरण २४ लाख का होता हैं। उसके पहले मंत्र शुद्ध्यर्थं, प्रायश्चित्त के रूप में पंचप्रणवयुक्त गायत्री का १५ हजार अथवा दशप्रणवयुक्त गायत्री का पाँच हजार जप आदि करना पड़ता है; उसके लिए आनन्दाश्रम द्वारा प्रकाशित 'गायत्री पुरश्चरण पद्धति' ग्रंथ देखें। अन्य सभी नियम इसके पहले दिए ही जा चुके हैं। त्रिकाल सन्ध्या, वैश्वदेव (यथाधिकार) आदि करना ही चाहिए। प्रातःसन्ध्या करने पर, सूर्योदय के बाद पुरश्चरण का जाप प्रारम्भ करें। अधिक से अधिक मर्यादा अपराह्न काल समाप्तितक। अन्य मंत्रों का रात्रि में भी जाप किया जा सकता है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३०

उपस्थानादि

तीनों सन्ध्याओं में 'सूर्योपस्थान' कर्म है तथा वह अत्यन्त महत्त्व का है।

उपस्थान=(उप + स्थान) उपस्थिति। 'अवकाशे स्थितौ स्थानम्' (अमरे); सूर्य के पास सूर्य के दरबार में हाजिरी देकर, हाथ जोड़कर सूर्य की स्तुति-प्रार्थना करना याने सूर्योपस्थान। सूर्यके उदय तथा अस्त पर ही सभी प्राणीमात्र का जीवन अवलंबित है। इसलिए पक्षी भी अरुणोदय होते ही तथा सायंकाल में सूर्यास्त के बाद चहचहाने लगते हैं और सूर्य की मानो स्तुति ही करते हैं। प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि सूर्य की ओर मुँह कर के त्रिकाल सूर्य की स्तुति तथा प्रार्थना यथाधिकार करनी ही चाहिए।

ऋग्वेदीय तथा तैत्तिरीय सन्ध्या में उपस्थान, गायत्री मंत्र के बाद है; तथा शुक्ल यजुर्वेदीय सन्ध्या में अर्घ्यप्रदान प्रदक्षिणा के बाद में है। उन शाखाओं के मंत्र, प्रयोग में सार्थ दिए हैं। सायंसन्ध्या में भी 'सूर्योपस्थाने विनियोगः' ऐसा ही कहना चाहिए; यह इसके पहले श्रुति के आधार से सिद्ध किया ही है।

विधि– प्रातःकाल में पूर्व में सूर्य की ओर मुँह करते हुए तथा सायंकाल में पश्चिम की ओर मुँह करके, खड़े रहकर, हाथ जोड़कर उपस्थान मंत्र के अर्थ की ओर ध्यान देते हुए कहें। मध्याह्नकाल में सब वैसा ही करें, फिर भी सूर्य की ओर मुँह कर के दोनों बाहु तथा हाथ जोड़कर उपस्थान करें। खड़े रहने के विविध प्रकार अर्घ्यदान अध्याय में दिए हैं।

श्रेष्ठ अधिकारी (बड़ेबाबू) कचहरी में आने पर उठकर, हाथ जोड़ते हुए अथवा अन्य प्रकार से उनका आदर-सत्कार किया जाता है, क्योंकि 'जो अन्न देता है, उसको अपना शरीर बेचना पड़ता है।' (जो अन्न देतो उदरासी, शरीर विकावे लागे त्यासी।' (दासबोध) इतना ही नहीं तो बुद्धि भी बेचनी पड़ती है; परन्तु संपूर्ण जगत् को अन्न, पानी, जीवनशक्ति देनेवाले के सामने हाथ जोड़कर उसकी स्तुति-प्रार्थना करना जिनको अच्छा नहीं लगता यह उनका तथा धर्म और देशका दुर्भाग्य है! इसके सिवा और क्या कहें?

दिग्-दिग्-देवता वन्दन– उपस्थान के बाद पूर्वादि सभी दिशाओं को तथा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

दिशापतियों को प्रणाम करें। बाद में सन्ध्याप्रार्थना, गायत्री विसर्जन करें। गायत्री का ही आवाहन होने के कारण विसर्जन भी गायत्री का ही होना चाहिए। तथापि 'या सन्ध्या सैव गायत्री' इस वचन के अनुसार सन्ध्या विसर्जन कहें तो दोष नहीं। 'देवी विसर्जनान्तं स्यात् सन्ध्या कर्म' देवी = गायत्री अथवा सन्ध्यादेवी के विसर्जन से ही सन्ध्या समाप्ति होती है। इसकी विधि प्रयोग में दी है। अगले अध्याय में गायत्री के कुछ उपयुक्त सकाम प्रयोग दिए हैं।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३१

गायत्री के सकाम प्रयोग

सर्व-कामदुघा देवी गायत्री स्वर्गमोक्षदा।
गायत्र्या नास्ति चाऽप्राप्यं त्रिषु लोकेषु किंचन।।

मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे किसी कामना की सिद्धि के लिए कोई कर्म न करें यह सत्य होने पर भी मोक्ष यही एकमात्र पुरुषार्थ न होकर धर्म, अर्थ तथा काम भी शास्त्रसम्मत पुरुषार्थ ही हैं। बहुजन समाज सकाम ही होता है तथा वह अस्वाभाविक वा निंद्य नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि 'धर्माऽविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ' (भ. गी.) धर्म-अविरोधी काम, कामना यह भगवान की एक विभूति है। लोग सकाम कर्म अधिक आस्था से करते हैं। उसके नियमों का पालन पूरी शक्ति लगाकर करते हैं। इस से इन्द्रियनिग्रह का तथा शम का सहज अभ्यास होता है। वाणी से सकाम कर्म की निन्दा करनेवाले, परन्तु चित्त से कामनाओं का जाल बुननेवाले तथा मनोरथों की उत्तुंग मीनार खड़ी करनेवालों की अपेक्षा कामनासिद्धि के लिए शास्त्रविहित कर्म यथाविधि करनेवाले बहुत अच्छे हैं।

न बुद्धिभेदं जनयेत् अज्ञानां कर्मसंगिनाम्।
जोषयेत् सर्वकर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन्।।

(भ. गी.)

ऐसा जो ज्ञानियों, जीवनमुक्तों से कहा है वह इसी हेतु से है। जैसे 'सगुणी भजतां पाविजे निर्गुणा' अर्थात् सगुणोपासना से ही निर्गुणोपासना की उपलब्धि होती है। इसी प्रकार सकाम कर्म करते करते ही निष्कामता प्राप्त हो सकती है। अनेक हेतुओं की सिद्धि के लिए श्रुति-स्मृति-पुराणादि सद्ग्रंथों में अनेक मंत्रों के सकाम प्रयोग वर्णित किए हैं। उसी तरह गायत्री मंत्र के भी सकाम प्रयोग सूचित किए हैं।

सकाम में प्रकार– प्रमुख तीन हैं– (१) पापों का प्रायश्चित्त हो। (२) ऐहिक कामनाओं की प्राप्ति तथा (३) उपद्रवशान्ति के लिए। चौथा प्रकार जारण-मारणादि अभिचार कर्म करने के लिए, ग्रंथों में बताया है। परन्तु वे प्रयोग यहाँ देने की इच्छा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं है तथा देना उचित भी नहीं है। वर्तमान तमोगुण के साम्राज्य में उसे प्रकट करना याने पिशाच के हाथ में जलती मशाल देने जैसा है।

प्रायश्चित्तार्थ बनाए कुछ प्रयोग पहले देना ठीक होगा।पापक्षालन के लिए संकल्पपूर्वक किया गया शास्त्रोक्त कर्म प्रायश्चित्त कहलाता है। सन्ध्या संकल्प में भी पाप-क्षालन यह एक हेतु है ही। 'पापानां कर्मणां फलं दुःखम्।' इसलिए जिस प्रमाण में पापक्षय होगा उस प्रमाण में भावी दुःख कम होंगे। सभी पापों का नाश करने पर सुख-दुःखादि द्वंद्वातीत तथा मोहातीत होना सम्भव है। (भ. गी.)

प्रायश्चित्तार्थ प्रयोग– पहला प्रकार :

१. उपपातक– जान बूझकर किया हो तो एक हजार गायत्रीजप करके काले तिल से गायत्री मंत्र से एक हजार हवन यथाविधि करें।

२. गोहत्या, मातृहत्या, पितृहत्या, ब्राह्मणहत्या, गुरु-विप्र-स्त्रीगमन, सुवर्णचोरी, मद्यपान इन में से कोई भी महापातक किया हो या हुआ हो तो गायत्री का एक लाख जप संकल्पपूर्वक कर के १० हजार तिल का हवन करें। इस अनुष्ठान की विधि लोकबस्ती से बिलकुल दूर बँधी झोपड़ी में अकेले रहकर करें। गायत्री मंत्र कहते, नदी में सौ बार डुबकी लगाकर रोज स्नान करें। तथा पानी में डूब कर गायत्री-जप करें। इस प्रकार रोज सौ अथवा अधिक जप माध्याह्न तक करें तथा गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित करके थोड़ा जल ग्रहण करें। ऐसा सौ बार करें तथा एक लाख जप उपर्युक्त पद्धति से कर के हवन करें। क्षुद्र पातकों के लिए सौ जप करें।

प्रकार २–

१. **दीर्घायुष्य–** घी घोलकर बनाया भात (चरु) अथवा केवल घी, दूर्वा तथा काले तिल इन प्रत्येक द्रव्यों का तीन-तीन हजार हवन करें। दूर्वा कुछ बड़ी होनी चाहिए। तीन दूर्वा की एक आहुती तथा उन को घी में डुबा रखें। हवन का प्रत्येक द्रव्य घी में भीगा होना चाहिए। ऐसा साधारण नियम है।

२. **ब्रह्मतेज–** ढाक के फूलों का एक लाख हवन।

३. **गोधन प्राप्ति–** रक्तचन्दन का भूसा तथा भूमिस्पर्श न हुआ गोमय, इनके कम से कम नींबू इतने बड़े गोले बनाकर एक हजार हवन।

४. **अपमृत्युहरण–** केवल दुग्धाहार लेकर सन्ध्या करते हुए सूर्योदय होनेपर फिर से स्नान करके, मध्याह्न काल की समाप्तितक जप करें। इस प्रकार एक लाख का अनुष्ठान करें। मध्याह्नकाल १८ घटिका के बाद समाप्त होता है।

५. **शौर्यवीर्यबलप्राप्ति–** घी में डुबोए लाल चावल का एक लाख होम।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

६. **विविध असाध्य रोग निवारण–** एक दिन पंचगव्याहार, एक दिन निर्जल उपवास तथा एक दिन एकभुक्त-हविष्यान्न, ऐसा त्रिरात्र व्रत कर के एक लाख जप करें। (मध्याह्नकाल समाप्तितक)

७. **भौतिक रोग निवारण, तथा अभिचार शान्ति–** अभिचार याने जारण-मारण प्रयोग, चेटक आदि; शनिवार को सूर्योदय होते ही स्नान करके, पीपल के पेड़ के नीचे बैठकर मध्याह्नकाल तक जप करें। ऐसा प्रति शनवार करें।

८. **सर्वव्याधिनाश–** गुळवेल (अर्थात् गुडुची या गुरुच. एक मोटी औषधियुक्त वेलि) के टुकड़े कर के गाय के घी में डुबोकर सात दिन रोज २०० हवन करें।

९. **ज्वर शान्ति–** दूध में भिगोए आम्रपत्रों को घी में डुबोकर एक हजार हवन; पत्ते अछिद्र, स्वच्छ तथा न पके हुए, (डंठल के साथ) होने चाहिए।

१०. **तपेदिक** (क्षयरोग) दूध में भिगोए मधुर वेखंड (वचा) वनस्पति डंठल के टुकडों का हवन; सात दिन रोज २००; उससे पूरा न होने पर तीन सप्ताह तक करें।

११. **कुष्ठ–** शंखपुष्पी के फूलों को घी में डुबोकर हवन, रोज २००, इस प्रकार २१ दिन; (ये फूल पौष, माघ महीने में ही मिलते हैं। छोटे होते हैं, इसलिए एक आहुति में कम से कम तीन लें।)

१२. **मिरगी** (फेफरे) अघाड्या के बीज, रोज २०० इस प्रकार २१ दिन; बीच की दो उंगलियाँ तथा अँगूठा, इन में जितनी उठा सके उतने की आहुति दें। इसे मृगीमुद्रा भी कहते हैं। कनिष्ठिका तथा तर्जनी अलग हो। घी में घोलकर हवन करें।

१३. **उन्माद–** पिशाच की बाधा उन्माद रोग होता है। भूतोन्माद, देवतोन्माद आदि के लक्षण 'माधवनिदान' ग्रंथ में देखें। पीपल, उंबर (गूलर), वट, पिंपरी, शमी, रुई इन्हें दुग्ध तरु कहते हैं। इनके प्रत्येक एक हजार समिधा का हवन, घी में डुबोकर करें। बाद में गायत्री मंत्र से एक हजार बार सूर्य तर्पण करें।

१४. **असाध्य प्रमेह–** गूलर की समिधा घी में अथवा घी तथा मध में डुबोकर एक सप्ताह तो भी रोज २०० हवन।

१५. **प्रमेह–** शहद तथा गन्ने के रस इनका रोज २०० हवन।

१६. **सुपुत्र प्राप्ति–** पायस का १२०० हवन; शेष पायस ऋतुस्नात ब्राह्मण सुवासिनी को भोजन में परोसें। (पकाते समय घी तथा शक्कर डालकर दूध में बना भात याने पायस)

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१७. **अपमृत्युनिवारण–** दूर्वा तथा त्रिमधु (दूध, घी, शहद सम प्रमाण में)–इन दो द्रव्यों का सात दिन रोज प्रत्येक का १०० हवन अथवा चरु, शमीसमिधा, पायस, घृत–इन चार द्रव्यों का प्रत्येक १०० इस प्रमाण में सात दिन हवन। अथवा सात दिन रोज वटवृक्ष की सौ समिधा का हवन कर उसके बाद पायस का रोज १०० हवन।

१८. **मरणभीतिनाश–** केवल दुग्धाहार लेकर सूर्योदय से अपराह्न काल की समाप्तितक; दिन के ४/५ भाग की समाप्ति तक सात दिन जाप करें।

१९. **निर्मल बुद्धि–** ब्राह्मी का रस १०८ बार गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित कर के पीए।

२०. **अभीष्ट प्राप्ति–** पानी में डूबे रहते गायत्री जप गिनकर करें। इस प्रकार रोज १०० जप एक महीना करें।

२१. **वृष्टि के लिए–** पायस का अथवा पायसमिश्रित वेत के पत्तों का सात दिन रोज १०० हवन।

२२. **वृष्टि बन्द होने के लिए–** जलाशय में भस्म की १०० आहुति दें।

२३. **विद्याप्राप्ति के लिए–** ऐं बीज; लक्ष्मी के लिए श्रीं बीज, सर्वकामप्राप्ति के लिए ऱ्हीं बीज आदि-अन्त में लगाकर तथा आयु-वृद्धि के लिए ओं हौं जूँ सः 'गायत्री मंत्र' तथा उसके अन्त में सः जूँ हौं ओम् इस प्रकार रोज सूर्योदय के समय से जप करें।

इसके अलावा अनेक प्रयोग हैं। उस में एक पैर पर खड़े रहकर, बाहु ऊपर सीधा रखकर, खड़े रहकर करने के भी अनेक प्रयोग हैं। तथा उन में ऋषित्व, अमोघ वाणी, त्रिकालदर्शित्व, अणिमादि सिद्धि, आदि फल प्राप्त होते हैं। परन्तु वर्तमान काल में ब्राह्मणों से वैसा तप सहा नहीं जाएगा, इसलिए यहाँ नहीं दिया गया है। देवी भागवत स्कंध-११ अध्याय-२४ में उसका वर्णन है।

उपर्युक्त सकाम प्रयोग, गायत्री पुरश्चरण कर के बाद में करें, ऐसा सर्वसाधारण नियम है; फिर भी पुरश्चरण न किए हुए लोगों को भी, इस काल में अनुभव आते हैं। यह देखा तथा सुना है। परन्तु यह ध्यान में रखें कि इन प्रयोगों का फल मिलने के लिए उत्तम नीतिमत्ता, श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त सदाचार तथा नियमित सन्ध्योपासना करना, यह मूल पूँजी का होना आवश्यक है।

सूचना– उपर्युक्त सकाम प्रयोग करनेवालों को विशिष्ट अनुष्ठान करने के पहले सन्ध्या करनी ही चाहिए। समिधा २/३ दिन से अधिक पुरानी होनेपर उस हवन का फल नहीं मिलेगा, क्योंकि उसका रस ही फलदायक होता है।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

प्रकार ३–

१. बिजली गिरना, भूकंपादि उत्पात होना, आदि की संभावना होने पर जंगली वेत की समिधा से सात दिन सूर्योदय से सूर्यास्त तक अखण्ड हवन करें।

२. गृह-ग्राम आदि में होनेवाली देवता, भूत, पिशाच आदि का उपद्रव बन्द होने के लिए चाँदी, तांबा, मिट्टी अथवा दुग्धतरुकाष्ठ के पात्र में रखे पंचगव्य में डुबोकर दुग्धतरु समिधा का गायत्री मंत्र से एक हजार बार हवन करें, बाद में पात्र में बचा हुआ पंचगव्य एक हजार गायत्री मंत्र से अभिमंत्रित करें; बाद में गायत्री स्मरण करते हुए वह पंचगव्य दर्भकूर्च से गृह-ग्रामादि में अभिसिंचित करें। बाद में बलिदान करते समय इष्टदेव सविता का ध्यान करें। इससे देवतादि उसे वश में होंगे तथा गृहग्रामादि में अपना अनिष्ट प्रभाव डाल नहीं सकेंगे।

भूत-पिशाच बाधा निवारण– सौ बार अभिमंत्रित किया पानी पीने के लिए दें अथवा सौ बार अभिमंत्रित किया भस्म ललाट पर तथा मस्तक पर धारण करें, याने उपद्रव नष्ट हो जाते हैं।

सूचना– उपर्युक्त जानकारी प्रमुख रूप से देवी-भागवत में है; इसी प्रकार कुछ थोड़ी शारदातिलक तथा अग्निपुराण में है।

कोटि जप करने से कोई भी कामना पूरी होती है।

(व्यासस्मृति)

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३२

गायत्री की आरती तथा स्तोत्र

।।श्री गायत्री माता की आरती।।

वेदजननि जय जय! ॐ! वेदजननि जय जय
गायत्री सावित्री! आदिशक्ति जय जय।।ॐ।।
पंचवदन दशभुज माँ, रक्त - श्वेत - कृष्णा।
सर्वाम्नायस्वरूपा, हारिणि भवतृष्णा।।१।।ॐ।।
बालारूपिणी प्रातर्, मध्याह्ने युवती।
सायंकाले वृद्धा, नित्य नवा भवती।।२।।ॐ।।
हंसवाहिनी गरुडवाहिनी, वृषभवाहिनी तू।
ऋग्यजुसामगायनी, त्रिलोकगामिनी तू।।३।।ॐ।।
इच्छा - ज्ञान - क्रियात्मक, शक्तिरूपिणी तू।
इडा पिंगला नाड़ी, मध्य सुषुम्ना तू।।४।।ॐ।।
तेजोमय कुंडलिनी, मूलाधारस्था।
सहस्रदलगा देवी, भगवती जगदम्बा।।५।।ॐ।।
श्रद्धा - मेधा - प्रज्ञा, बुद्धिदायिनी तू।
विद्या - धन - प्रतिष्ठा, धर्मवर्धिनी तू।।६।।ॐ।।
जो कोई तुमको ध्यावै, विमल बुद्धि पावै।
पाप भस्म हो तिनका, सर्व सिद्धि आवै।।७।।ॐ।।
माँ गायत्री-आरती, जो मन से गावै।
विद्या - विजय संपदा, ब्रह्मतेज पावै।।८।।ॐ।।

— आचार्य किशोर व्यास

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गायत्री जयकार-स्तोत्र

ब्रह्मदेवमुख-विनिर्गता जय। निर्दोषा त्रिगुणातीता जय।।१।।
जय कौमारी गायत्री जय। जय जय युवती सावित्री जय।।२।।
सरस्वती जय जय वृद्धा जय। प्रणवरूपिणी सन्ध्या जय जय।।३।।
भेदावस्थाऽतीता जय जय। ब्रह्मरूपिणी देवी जयजय।।४।।
जप गायत्री ब्रह्माणी जय। जय सावित्री रुद्राणी जय।।५।।
जयति वैष्णवी सरस्वती जय। कालाऽतीता आदिशक्ति जय।।६।।
सृष्टि-स्थिति-लय कारिणी जय जय। विश्वभरणपोषणकारिणी जय।।७।।
संतत-परानन्द-दायिनि जय। योगक्षेमवाहिनी जय जय।।८।।
जय जापकभय-वारिणी तारिणि। जयत्यविद्याक्लेश-निवारिणि।।९।।
ब्रह्माऽमर-वंदित-सन्ध्या जय। जगद्-व्यापिनी जगदंबा जय।।१०।।
पाप-ताप-रुज-हारिणि जयजय। भोगैश्वर्य-दायिनी जयजय।।११।।
मातर्मम हृद्गततिमिरं हर। ज्ञान-भानु-कर-निकरं विस्तर।।१२।।
प्रज्ञानन्देन-ग्रथितं। श्रुतिसारं स्मृति-पुराण गदितम्।।१३।।
नित्यं पठेद् द्विजः शतवारं। भक्त्या युत-यम-नियमाऽऽचारम्।।१४।।
तं गायत्री-मंत्र-जप-परं। नयेदेत्र सा संसृति पारम्।।१५।।
प्रज्ञानान्दस्वामिविरचितं गायत्री जयकार स्तोत्रं संपूर्णम्

अस्त्येकं परमं गुह्यं गायत्री कवचं तथा।

श्री गायत्री - कवचम्

(यह द्विजों के सिवा अन्य कोई न कहें।)

नारद उवाच—

स्वामिन् सर्व-जगन्नाथ संशयोऽस्ति मम प्रभो।
चतुःषष्ठिकलाऽभिज्ञ, पातकाद् योगविद्वर—।।१।।
मुच्यते केन पुण्येन, ब्रह्मरूपः कथं भवेत्।
देहश्च देवतारूपो मंत्ररूपो विशेषतः।।२।।
कर्म तच्छ्रोतुमिच्छामि न्यासं च विधिपूर्वकम्।
ऋषिश्छन्दोऽधिदैवं च ध्यानं च विधिवत् प्रभो।।३।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नारायण उवाच—

पठनाद् धारणान्मर्त्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते।।४।।
सर्वान् कामान् अवाप्नोति देवीरूपश्च जायते।
गायत्रीकवचस्याऽस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः।।५।।
ऋषयः, ऋग्यजुः सामाऽथर्वच्छन्दांसि नारद।
ब्रह्मरूपा देवतोक्ता गायत्री परमा कला।।६।।
'तत्' बीजं, भर्ग इत्येषा शक्तिरुक्ता मनीषिभिः।
कीलकं च धियः प्रोक्तं, मोक्षार्थे विनियोजयेत्।।७।।

न्यास-तत्सवितुश्च हृदये वरेण्यं शिरसि न्यसेत्।
भर्गो देवस्य शिखायां कवचे धीमहीति च।।८।।
धियो योनस्तया नेत्रे त्वस्त्राय च प्रचोदयात्।।९।।

अथ ध्यानम्

मुक्ता विद्रुम-हेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुकलानिबद्धमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।।
गायत्रीं वरदाऽभयाऽङ्कुश-कशा-शूलं कपालं गुणं।
शंखं चक्रमथाऽरविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।१०।।
गायत्री पूर्वतः पातु सावित्री पातु दक्षिणे।
ब्रह्मसन्ध्या तु मे पश्चाद् उत्तरायां सरस्वती।।११।।
पार्वती मे दिशं रक्षेत् पावकीं जलशायिनी।
यातुधानीं दिशं रक्षेद् यातुधान-भयंकरी।।१२।।
पावमानीं दिशं रक्षेद् पवमान-विलासिनी।
दिशं रौद्रीं च मे पातु रुद्राणी रुद्ररूपिणी।।१३।।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेद् अधस्ताद् वैष्णवी तथा।
एवं दश दिशो रक्षेत् सर्वांगं भुवनेश्वरी।।१४।।

षट्न्यास

तत् पदं पातु मे पादौ, जंघे मे सवितुः पदम्।
वरेण्यं कटिदेशे तु, नाभिं भर्गस्तथैव च।।१५।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवस्य मे तु हृदयं, धीमहीति च गल्लयोः।
धियः पदं च मे नेत्रे, यः पदं मे ललाटकम्।।१६।।
नः पदं पातु मे मूर्ध्नि शिखायां मे प्रचोदयात्।
अक्षरन्यास-ततः पदं पातु मूर्धानम् सकारः पातु भालकम्।।१७।।
चक्षुषी तु विकारार्णः तुकारस्तु कपोलयोः।
नासापुटे र्वकारार्णो रेकारस्तु मुखे तथा।।१८।।
णिकार ऊर्ध्वमोष्ठं तु यंकारस्त्वधरोष्ठकम्।
आस्यमध्ये भकारार्णो र्गोकारश्चुबुके तथा।।१९।।
देकारः कण्ठदेशे तु वकारः स्कंध देशकम्।
स्यकारो दक्षिणं हस्तं धीकारो वामहस्तकम्।।२०।।
मकारो हृदयं रक्षेद् हिकार उदरे तथा।
धिकारो नाभिदेशे तु योकारस्तु कटिं तथा।।२१।।
गुह्यं रक्षतु योकार ऊरु द्वौ नः पदाक्षरम्।
प्रकारो जानुनी रक्षेत् चोकारो जंघदेशकम्।।२२।।
दकारोऽगुल्यदेशे तु याकारः पदयुग्मकम्।
तकार व्यंजनं चैव सर्वांङ्गं मे सदाऽवतु।।२३।।
इदं तु कवचं दिव्यं बाधाशत विनाशनम्।
चतुःषष्टिकला-विद्यादायकं मोक्षकारकम्।।२४।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः परंब्रह्माऽधिगच्छति।
पठनाच्छ्रवणाद्वाऽपि गोसहस्र-फलं लभेत्।।२५।।

श्री गायत्री हृदयम् (यह द्विजेतर न कहें।)

नारद उवाच–

भगवन् देवदेवेश भूतभव्यजगत्प्रभो।
कवचं तु श्रुतं दिव्यं गायत्री मंत्रविग्रहम्।।१।।
अधुना श्रोतुमिच्छामि गायत्री हृदयं परं-।
यद्धारणाद् भवेत् पुण्यं गायत्री-जपतोऽखिलम्।।२।।

नारायण उवाच–

देव्याश्च हृदयं प्रोक्तं नारदाऽथर्वणे स्फुटम्।
तदेवाऽहं प्रवक्ष्यामि रहस्याऽतिरहस्यकम्।।३।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

विराड्रूपां महादेवीं गायत्रीं वेदमातरं।
ध्यात्वा तस्यास्तथाऽङ्गेषु ध्यायेद् एताश्च देवताः।।४।।
पिण्डब्रह्माण्डयोरैक्याद् भावयेत् स्वतनौ तथा।
देवीरूपे निजे देहे तन्मयत्वाय साधकः।।५।।
नाऽदेवोऽभ्यर्चयेद् देवं इति वेदविदो विदुः।
ततोऽभेदाय काये स्वे भावयेद् देवता इमाः।।६।।
अथ तत् संप्रवक्ष्यामि तन्मयस्त्वन्मयोभवेत्।
गायत्री हृदयस्थाऽस्याऽप्यहमेव ऋषिः स्मृतः।।७।।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं देवता परमेश्वरी।
पूर्वोक्तेन प्रकारेण[१] कुर्याद् अंगानि षट्क्रमात्[२]।।
आसने विजये देशे ध्यायेद् एकाग्रमानसः।।८।।
(१. गायत्री कवच में निर्देशित; २. षडंगन्यास;)

अथ अर्थन्यास :- द्यौर्मूर्ध्नि दैवतम्। दंतपंक्तावश्विनौ। उभे संध्ये चोष्ठौ। मुखं अग्निः। जिह्वा सरस्वती। ग्रीवायां तु बृहस्पतिः। स्तनयोर्वसवोऽष्टौ। बाव्होर्मरुतः। हृदये पर्जन्यः। आकाशं उदरम्। नाभौ अन्तरिक्षं। कट्योः इन्द्राग्नी। जघने विज्ञानघनः प्रजापतिः। कैलास-मलये उरू। विश्वेदेवाः जान्वोः। जंघायां कौशिकः। गुह्यं अयने। गुल्फे पितरः। पादौ पृथ्वी। वनस्पतयोऽङ्गुलीषु। ऋषयो रोमाणि। नखानि मुहूर्तानि। अस्थिषु ग्रहाः। असृङ्मांसं ऋतवः। संवत्सरा वै निमिषम्। अहोरात्रौ आदित्यश्चन्द्रमाः। प्रवरां दिव्यां। गायत्रीं सहस्रनेत्रां शरणमहं प्रपद्ये। ओं तत्सवितुर्वरेण्याय नमः। ओं तत् पूर्वजाय नमः। ओं तत् प्रातरादित्य-प्रतिष्ठायै नमः।।

फलश्रुति– प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। सायंप्रातरधीयानोऽपापो भवति। सर्वतीर्थेषु स्नातो भवति। सर्वैः देवैः ज्ञातो भवति। अवाच्यवचनात्पूतो भवति। असाध्यसाधनात् पूतो भवति। दुष्प्रतिग्रहशतसहस्रात् पूतो भवति। पंक्तिदूषणात्पूतो भवति। अनृतवचनात्पूतो भवति। अथ अब्रह्मचारी ब्रह्मचारी भवति। अनेन हृदयेन अधीतेन ऋतुसहस्रेण इष्टं भवति। अष्टौ ब्राह्मणान् सम्यग् ग्राहयेत्। तस्य सिद्धिर्भवति। य इदं नित्यमधीयानो ब्राह्मणः प्रातः शुचिः सर्वपापैः प्रमुच्यते। (इति) ब्रह्मलोके महीयते। इत्याह भगवान् नारायणः।

।।इति श्री देवी भागवत महापुराणप्रोक्तं गायत्रीहृदयं संपूर्णम्।।

सूचना– फलश्रुति में जिन पापों का निर्देश किया गया है वे जान बूझकर किये गए हैं, ऐसा मानना उचित नहीं है। जानबूझकर किए पापों के क्षय के लिए संकल्पपूर्वक प्रायश्चित्त ही करना चाहिए। गलती से, क्रोध के आवेग में, जो पाप हो जाते हैं, उनका नाश इससे होगा।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गायत्री स्तोत्रम्

नारद उवाच–

भक्तानुकंपिन् सर्वज्ञ हृदयं पापनाशनम्।
गायत्र्याः कथितं तस्याद् गायत्र्याः स्तोत्रमीरय।।१।।

नारायण उवाच–

आदिशक्ते जगन्मातर्भक्तानुग्रहकारिणि।
सर्वत्र व्यापिकेऽनन्ते श्रीसन्ध्ये ते नमोऽस्तु ते।।२।।
त्वमेव सन्ध्या गायत्री सावित्री च सरस्वती।
ब्राह्मी रौद्री वैष्णवी च रक्ता श्वेता सितेतरा।।३।।
प्रातर्बाला च मध्याह्ने यौवनस्था भवेत्पुनः।
वृद्धा सायं भगवती चिंत्यते मुनिभिः सदा।।४।।
हंसस्था च वृषारूढा तथा गरुडवाहिनी।
ऋग्वेदाध्यायिनी भूमौ दृश्यते या तपस्विभिः।।५।।
यजुर्वेदं पठन्ती च अन्तरिक्षे विराजते।
सा सामगाऽपि स्वर्गेषु भ्राम्यमाणा तथा भुवि।।६।।
रुद्रलोकं गता त्वं हि विष्णुलोक निवासिनी।
त्वमेव ब्रह्मणो लोकेऽमर्त्याऽनुग्रह-कारिणी।।७।।
सप्तर्षि-प्रीति जननी माया बहुवरप्रदा।
शिवयोः करनेत्रोत्था ह्यश्रुस्वेदसमुभ्दवा।।८।।
आनन्दजननी दुर्गा दशधा परिपठ्यते।
वरेण्या वरदा चैव वरिष्ठा वरवर्णिनी।।९।।
गरिष्ठा च वराहा च वरारोहा च सप्तमी।
नीलगंगा तथा सन्ध्या सर्वदा भोगमोक्षदा।।१०।।
भागीरथी मर्त्यलोके पाताले भोगवत्यपि।
त्रिलोक वाहिनी देवी स्थानत्रयनिवासिनी।।११।।
भूलोकस्था त्वमेवाऽसि धरित्री लोकधारिणी।
भुवो लोके वायुशक्तिः स्वर्लोके तेजसां निधिः।।१२।।
महर्लोके महासिद्धिर्जनलोके जनन्यपि।
तपस्विनी तपोलोके सत्यलोके तु सत्यवाक्।।१३।।
कमला विष्णुलोके च गायत्री ब्रह्मलोकगा।
रुद्रलोके स्थिता गौरी हरार्धांगनिवासिनी।।१४।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अहमो महतश्चैव प्रकृतिस्त्वं हि गीयसे।
साम्यावस्था स्थिता त्वं हि शबल ब्रह्मरूपिणी।।१५।।
ततः परा पराशक्तिः परमा त्वं हि गीयसे।
इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्त्रिशक्तिदा।।१६।।
गंगा च यमुना चैव विपाशा च सरस्वती।
शरयूर्वेदिका सिंधुर्नर्मदैरावती तथा।।१७।।
गोदावरी शतद्रुश्च कावेरी देवलोकगा।
कौशिकी चंद्रभागा च वितस्ता च सरस्वती।।१८।।
गंडकी, तपिनी, तोया, गोमती, वेत्रवत्यपि।
इडा च पिंगला चैव सुषुम्ना च तृतीयका।।१९।।
गांधारी हस्तिजिव्हा च पूषाऽपूषा तथैव च।
अलम्बुसा कुहूश्चैव शंखिनी प्राणवाहिनी।।२०।।
नाडी च त्वं शरीरस्था गीयसे प्राक्तनैर्बुधैः।
हृत्पद्मस्था प्राणशक्तिः कण्ठस्था स्वप्ननायिका।।२१।।
तालुस्था त्वं सदाधारा बिन्दुस्था बिन्दुमालिनी।
मूले तु कुंडली शक्तिर्व्यापिनी केशमूलगा।।२२।।
शिखामध्यासना त्वं हि शिखाग्रे तु मनोन्मनी।
किमन्यद् बहुनोक्तेन यत् किंचित् जगतीत्रये।।२३।।
तत्सर्वं त्वं महादेवि श्रिये संध्ये नमोऽस्तु ते।
इतीदं कीर्तितं स्तोत्रं संध्याया बहुपुण्यदम्।।२४।।
महापापप्रशमनं महासिद्धिप्रदायकम्।
य इदं कीर्तयेत् स्तोत्रं सन्ध्याकाले समाहितः।।२५।।
अपुत्रः प्राप्नुयात् पुत्रं धनार्थी धनमाप्नुयात्।
सर्वतीर्थ-तपो-दान-यज्ञ-योग-फलं लभेत्।।२६।।
भोगान् भुक्त्वा चिरं कालं अन्ते मोक्षमवाप्नुयात्।
तपस्विभिः कृतं स्तोत्रं स्नानकाले तु यः पठेत्।।२७।।
यत्र कुत्र जले मग्नः सन्ध्यामज्जनजं फलम्।
लभते नात्र संदेहः सत्यं सत्यं च नारद।।२८।।
शृणुयाद् वाऽपि तद् भक्त्या स तु पापात् प्रमुच्यते।
पीयूषसदृशं वाक्यं सन्ध्योक्तं नारदेरितम्।।२९।।
इति श्री देवी भागवते नारायणप्रोक्तं सन्ध्यास्तोत्रं संपूर्णम्।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूचना– 'गंगा च यमुना' से लेकर 'वेत्रवत्यपि' तक पुण्य नदियों के नाम हैं। इडा-पिंगला आदि १० नाडियों के नाम हैं। (दे. भा.) 'अलंबुषा' पाठ है परन्तु 'कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् तथा योगशिखोपनिषद् में' 'अलंबुसा' पाठ है। तथा वही अनेक उपनिषदों में है। इन नाड़ियों के स्थान तथा कार्य के संबंध में उपर्युक्त दो उपनिषदों को देखिए। कुंडली = कुंडलिकी; वह मूलाधार से मस्तक के बालों के मूलतक जा सकती है।

गौतम महामुनिकृत गायत्रीस्तोत्रम्।

गौतम उवाच–

नमो देवि महाविद्ये वेदमातः परात्परे।
व्याहृत्यादिमहामंत्ररूपे प्रणवरूपिणि।।१।।
साम्यावस्थात्मिके मातर्नमो ह्रींकाररूपिणि।
स्वाहास्वधास्वरूपे त्वां नमामि सकलार्थदाम्।।२।।
भक्तकल्पलतां देवीं अवस्थात्रयसाक्षिणीं।
तुर्यातीतस्वरूपां च सच्चिदानन्दरूपिणीम्।।३।।
सर्ववेदांतसंवेद्यां सूर्यमण्डलवासिनीं।
प्रातर्बालां रक्तवर्णां मध्याह्ने युवतीं पराम्।।४।।
सायाह्ने कृष्णवर्णां त्वां वृद्धां नित्यं नमाम्यहम्।
सर्वभूतारणे देवि क्षमस्व परमेश्वरि।।५।।
इति स्तुता वेदमाता प्रत्यक्षं दर्शनं ददौ।
पूर्णपात्रं ददौ तस्मै येन स्यात् सर्वपोषणम्।।६।।
उवाच मुनिमंबा सा यं यं कामं त्वमिच्छसि।
तस्य पूर्तिकरं पात्रं मया दत्तं भविष्यति।।७।।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे देवी गायत्री परमा कला।।
इति श्री देवीभागवत महापुराणे गौतमकृत-गायत्री स्तोत्रं संपूर्णम्।।

(दे. भा. १२/९;) यह पूरा अध्याय अवश्य देखें। गायत्री द्वारा दिए गए पूर्णपात्र से गौतममुनि ने लाखों ऋषिमुनियों के पालन-पोषण आदि का सारा कार्य अनेक वर्षों तक किया। परन्तु वे ऋषि-मुनि कृतघ्न, ईर्ष्यालु बने! आदि कथा दी गई है।

सूर्य-स्तोत्र अगले अध्याय में है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३३

सूर्य-स्तोत्र

सूर्याष्टकम्

श्रीगणेशाय नमः। सांब उवाच–

आदिदेव नमस्तुभ्यं प्रसीद मम भास्कर।
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तुते।।१।।
सप्ताश्वरथमारूढं प्रचण्डं कश्यपात्मजम्।
श्वेतपद्मधरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।२।।
लोहितं रथमारूढं सर्व-लोकपितामहं।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।३।।
त्रैगुण्यं च महाशूरं ब्रह्मविष्णुमहेश्वरं।
महापाप हरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।४।।
बृंहितं तेजःपुंजं च वायुराकाशमेव च।
प्रभुस्त्वं सर्व लोकानां तं सूर्य प्रणमाम्यहम्।।५।।
बन्धूकपुष्प-संकाशं हारकुंडलभूषितम्।
एकचक्रधरं देवं तं सूर्य प्रणमाम्यहम्।।६।।
तं सूर्यं विश्वकर्तारं महातेजःप्रदीपनम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।७।।
तं सूर्यं जगतां नाथं ज्ञानविज्ञानमोक्षदम्।
महापापहरं देवं तं सूर्यं प्रणमाम्यहम्।।८।।

इति श्री सूर्याष्टकस्तोत्रं संपूर्णम्।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

सूर्यकवचस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः। याज्ञवल्क्य उवाच।
शृणुष्व मुनिशार्दूल सूर्यस्य कवचं शुभम्।
शरीरारोग्यदं दिव्यं सर्वसौभाग्यदायकम्।।१।।
देदीप्यमानमुकुटं स्फुरन् मकरकुंडलम्।
ध्यात्वा सहस्रकिरणं स्तोत्रमेतदुदीर्यते।।२।।
शिरो मे भास्करः पातु, ललाटं मेऽमितद्युतिः।
नेत्रे दिनमणिः पातु श्रवणे वासरेश्वरः।।३।।
घ्राणं घर्मघृणिः पातु वदनं वेदवाहनः।
जिव्हां मे मानदः पातु कंठं मे सुरवन्दितः।।४।।
स्कंधौ प्रभाकरः पातु वक्षः पातु जनप्रियः।
पातु पादौ द्वादशात्मा सर्वांगं सकलेश्वरः।।५।।
सूर्यरक्षात्मकं स्तोत्रं लिखित्वा भूर्जपत्रके।
दधाति यः करे तस्य वशगाः सर्वसिद्धयः।।६।।
सुस्नातो यो जपेत् सम्यग् योऽधीते स्वस्थमानसः।
स रोगमुक्तो दीर्घायुः सुखं पुष्टिं च विंदति।।७।।

इति श्री याज्ञवल्क्य विरचितं सूर्यकवचस्तोत्रं संपूर्णम्।।

श्री सूर्यस्तोत्रम्

(इसमें सूर्यउपनिषद का सारांश दिया है।)

सुरक्त-वारिज-स्थितं। द्विपंचवाहवाहनम्।
वराऽभयाऽम्बुजद्वय। धरं स्मरामि भास्करम्।।१।।
त्रिलोक-जन्म-दायकं। हि कालचक्र-नायकं।
चराऽचराऽऽत्मरूपिणं। भजामि तं प्रभाकरम्।।२।।
स सूर्य एव सर्वलोक। कर्म-कारणं श्रुतं।
रविर्हि यज्ञ-वृष्टि-धान्य। कारको नमामि तम्।।३।।
रवेर्जनी [१] रवेः स्थिती। रवौ लयो भवत्यहो!।
अशेष-वेद-कारणं। नमामि तं विभाकरम्।।४।।
रविर्मही-जलाऽनलाऽ। निलादि-भूत-कारणं।
रविर्हि नेत्रसंस्थितो। नमामि तं दिवाकरम्।।५।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

रविर्हि पंच-पंचकं[3]। विधिहरिर्हरः श्रुतः।
समस्त-देवतात्मको। नमामि तं अहस्करम्।।६।।
परं च शाश्वतं पदं। गताऽऽगतिर्यतो नहि।
सवितृ-मण्डल-स्थितं। गुरोर्गुरुं नमामि तम्।।७।।
रविः सुरेन्द्रपूजितो। रविर्मुनीन्द्र-संस्तुतः।
रविर्मनीषिभिः स्मृतो। नमामि तं नमामि तम्।।८।।
रवेः कृपाप्रसादतो। ममाऽऽशुचित्तदर्पणः।
भवेत्सुनिर्मलः सदा। चिदात्मसौख्यदायकः।।९।।
प्रज्ञानानन्द-स्वामि-विरचितं सूर्यस्तोत्रं संपूर्णम्।

(१. सात घोडों का रथ; २. उत्पत्ति, जन्म; ३. पंचपंचक-२५ तत्त्व;)

इसके अतिरिक्त वाल्मीकि रामायण में दिया 'आदित्यहृदय' कुछ साधकों ने अपने साधन में अन्तर्भूत कर लिया है।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३४

ऋषि-छंद-देवतादि-निर्णय

देवता ऋषिपूर्वकम्।।३७।।
छंदोभिर्विनियोगैश्च मंत्रब्राह्मणसंयुतं।
एतद्धीनं न कुर्वीत कुर्यात् चेत् स्यात् तदाऽऽसुरम्।।३८।।

जो मंत्र सन्ध्या जप होमादि कर्म में प्रयोग में लाए जाते हैं, उनके ऋषि, छन्द, देवता, विनियोग तथा ब्राह्मण (मंत्रों का स्थान तथा उनका अर्थ)–इन पाँच बातों का ज्ञान होना ही चाहिए। और ऋषि छंद देवता तथा विनियोग का उच्चारण करना चाहिए; इस अर्थ के वचन स्मृति-पुराणों आदि में अनेक हैं। इसके अतिरिक्त कलियुग में प्रमुख प्रमाणभूत जो पाराशरस्मृति है, उस में भी मंत्र का स्थान तथा अर्थ याने ब्राह्मण ऐसा स्पष्ट कहा है। उपर्युक्त बृहत् पाराशरस्मृति श्लोक में यही कहा है। और कहा है कि इन पाँचों से रहित कोई कर्म न करें। यदि कर्म किया तो वह आसुरी होगा।

देवता-ऋषि-विनियोगादि के लक्षण (बृ. पारा. स्मृ.)
यस्मिन् मंत्रे च यो देवः तेन देवेन चिह्नितम्।
मंत्रं तद्दैवतं विद्यात् सेति तत्र तु देवता।।३९।।
येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता तु येन वै।
मंत्रेण, तस्य स प्रोक्तो मुनेर्भावस्तदात्मकः।।४१।।
यत्र कर्मणि चारब्धे जप होमार्चनादिकम्।
क्रियते येन मंत्रेण नियोगः तस्य स स्मृतः।।४३।।
अस्य मंत्रस्य चाऽर्थोऽयं अयं मंत्रोऽत्र वर्तते।
तत्तस्य ब्राह्मणं ज्ञेयं मंत्रस्येति श्रुतिक्रमः।।४४।।
एतद्धि पंचकं ज्ञात्वा क्रियते कर्म यद्द्विजैः।
तदनंतफलं तेषां भवेद् वेदनिदर्शनात्।।४५।।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

एकांशेनाऽपि यन्यूनं कुर्यात् कर्म द्विजोऽमतिः।
नासौ तस्य फलं विन्देत् क्लेशमात्रं तु तस्य तत्।।
प्रपद्यते स्थाणुगर्तं स्वयं वापि प्रलीयते।।४७।।

भावार्थ– मंत्र में जिस देवता का वर्णन होगा वह उस मंत्र का देवता; वह उस देवता का मंत्र, जिस ऋषि को वह मंत्र दृष्टिगोचर हुआ, प्राप्त हुआ (अथवा उसने जिस किसी से वह कहा) और जिसने उसका अनुष्ठान कर के सिद्धि प्राप्त की, वह उस मंत्र का ऋषि, वह मंत्र उस ऋषि का; यह लक्षण अच्छी प्रकार से ध्यान में रखें। किसी कर्म में जप, होम, पूजादि जो जिस मंत्र से करना होगा उस कर्म का निर्देश याने उस मंत्र के नियोग का निर्देश। इस मंत्र का यह अर्थ और यह मंत्र किस वेद, आरण्यक, परिशिष्ट आदि में किस जगह है, इसका जो ज्ञान उसे 'ब्राह्मण' कहते हैं। छंद– छन्द शास्त्र में जिन अनेक छन्दों का उल्लेख है (उदा. अनुष्टुभ) उन में से जिस छन्द में विशिष्ट मंत्र होगा वह उस मंत्र का छन्द, जैसे मराठी में 'वृत्त' होते हैं।

छन्द, ऋषि, देवता, विनियोग तथा ब्राह्मण-ये पाँच बातें मालूम करते हुए जो कर्म किया जाता है, वह अनंत फलदायक होता है। उसके फल का विनाश नहीं होता ; परन्तु इन पाँचों में से एक भी कम होगा तो भी वह कर्म नष्ट होता है तथा सम्भवतः उस कर्ता को भी नष्ट करता है। (श्लोक अन्यत्र दिए हैं।)

ऋग्वेदी सन्ध्या के तीन भाष्यों में तथा तैत्तिरीय सन्ध्या के तीन भाष्यों में मंत्रों के स्थान के स्पष्ट निर्देश होते हुए भी पोथियों में किसीने वे नहीं दिए हैं। सन्ध्या के मराठी ग्रंथों में अर्थ दिए हैं, फिर भी एक में भी स्थान का निर्देश नहीं है। माध्यन्दिन–आन्हिक सूत्रावली में स्थान का उल्लेख होते हुए भी, उस शाखा के सार्थ ग्रंथों में वे नहीं हैं। परन्तु म. म. विद्याधर शर्मा गौड़ वेदाचार्य आदि काशीस्थित पंडितत्रयी के द्वारा सम्पादित गीता प्रेस के ग्रंथ में स्थान का निर्देश है, इतना ही नहीं बल्कि ऋषि-छंद-देवता का निर्णय भी साधार प्रस्तुत किया है, इस से क्या सिद्ध होता है? अधिक आस्था रखनेवाला कौन है?

(तैत्तिरीय) कृष्ण यजुर्वेद का सर्वानुक्रम सूत्र नहीं है। और उस वेद के अनेक मंत्र अन्य सभी की सन्ध्या में हैं; इस से ऋष्यादि के निर्देश में इतनी विविधता दिखाई देती है कि उसे देखकर आस्तिकों के मन में भी तिरस्कार उत्पन्न होता है! तब फिर अन्य व्यक्तियों का विश्वास उड़ जाए तो क्या आश्चर्य है? यह विचित्रिता देखकर घृणा का भाव ही जागृत होता है; परन्तु जिस ऋग्वेद का सर्वानुक्रम सूत्र है तथा जिस में ऋग्वेद के सभी मंत्रों के ऋष्यादि के निर्देश हैं; उनके कुछ मंत्रों की ऐसी ही दुर्दशा की गई कि उसे देखकर चिढ़ निर्माण होती है। एक उदाहरण देखिए–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'ऋतं च सत्यं' यह मंत्र ऋग्वेद का (ऋ. सं. अ. ८ अ. ७ तथा ४८) है। इसका सर्वानुक्रम सूत्र– 'ऋतंच माधुश्चन्द्रसोऽघमर्षणो भाववृत्तमानुष्टुभं तु' ऐसा है। 'ऋतंच' मंत्र का ऋषि मधुच्छन्द ऋषि का पुत्र अघमर्षण, भाववृत्तं दैवतं तथा अनुष्टुप छन्द है; परन्तु निर्णयसागर पोथी में 'भाववृत्तिः', कही भाववृत्त, कहीं भावमृषः, भावभृतं, भावभृतः ऐसे, निर्देश हैं! कही 'रात्र्यजायत' के स्थान पर 'रात्रिरजायत' पाठ है! परन्तु ऋक्संहिता में 'रात्र्यजायत' ऐसा है। ऐसे अनेक चमत्कार अद्भुत पाठभेद सन्ध्या की छपी पोथियों तथा ग्रंथों में दिखाई दिए हैं। जगदीश्वर मुद्रणालय से छपे शुक्ल यजुर्वेद की सन्ध्या की पोथी में– ग्रंथ में ऋषि-छंद-देवता का निर्देश प्रणव के अलावा अन्य किसी का नहीं है। उस वेद का सर्वानुक्रम सूत्र है। सन्ध्या जैसे द्विजों के प्राण होनेवाले विषय में इतनी अनास्था है!

सन्ध्या में प्रथम, प्राणायाम करते समय प्रणव के (ओंकार) ऋष्यादि का निर्देश करना पड़ता है। यह एकाक्षर-मंत्र तैत्तिरीय नारायण उपनिषद में है। वहाँ 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म' अग्निर्देवता। ब्रह्म इत्यार्षम्। गायत्रं छंदं, परमात्मस्वरूपम्। सायुज्यं विनियोगम्। (नारा. उ. १४/३३) (तै. आ. १०/३३) ॐ यह एक अक्षर ब्रह्म है। गीता में यही कहा है। 'तस्य वाचकः प्रणवः' (पा. यो.) प्रणव = ॐ, यह उस परमात्मा का, परब्रह्म का नाम है। 'ओंकारः परमं ब्रह्म' (याज्ञ. स्मृ.) पहले वस्तु होती है अथवा अस्तित्व में आती है तथा बाद में उसे नाम दिया जाता है। नाम देनेवाला उस वस्तु से कोई अलग होता है। परब्रह्म ने स्वयं ही अपना नाम ॐ रखा, ऐसा क्या कहा जा सकता है? परब्रह्म निष्क्रिय, निर्गुण, निराकार है; नाम देना आदि कुछ भी क्या वह कर सकता है? परन्तु देखिए कैसी विचित्र बात हुई– 'ब्रह्म इति आर्षम्' इसमें ओंकार के ऋषि का निर्देश है। कुछ निबंध ग्रंथकारों ने व्याकरण शास्त्र का विशेष विचार न करते हुए 'ब्रह्म' यह पद ही ऋषि का नाम मान लिया; बाद में 'ब्रह्म' का परब्रह्म हुआ तथा कहीं 'परंब्रह्म' हुआ तो कहीं 'परब्रह्म ऋषिः' कही 'परंब्रह्म ऋषिः' ऐसा निर्देश होने लगा। और स्मृतिवचनों की ओर देखने की इच्छा भी किसी को नहीं हुई। सं. र. माला, निर्णयसागर पोथी जगदीश्वर मुद्रणालय पोथी आदि लिखनेवाले शास्त्री पंडित के मन में सम्भवतः सन्देह निर्माण हुआ होगा, इसलिए उन्होंने 'रामाय स्वस्ति-रावणाय स्वस्ति' न्याय से सब को स्वीकार करते हुए एकबार 'परंब्रह्म ऋषिः' अथवा 'परब्रह्म ऋषिः' लिखा तथा एक जगह 'ब्रह्मा ऋषिः' लिखा तथा सन्ध्या की किताबें लिखनेवाले लेखकों ने उसी को चुपचाप स्वीकार कर लिया।

१९०० ईसवी में कुलोपाध्यायजी ने जो सन्ध्या सिखाई थी वह मैं कभी नहीं भूला, इसलिए पोथी देखने की बारी कभी नहीं आई तथा उसकी त्रुटि भी कभी देखने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में नहीं आई। मैंने जो लिखा वह 'परब्रह्म ऋषिः' ही था। १९४३ ई. में आश्रमांतर हुआ। उसमें श्रीसद्गुरुमहाराज से मिले प्रणव के विज्ञान में 'प्रजापतिः ऋषिः' यह प्राप्त हुआ। प्रजापति = ब्रह्मदेव; उन्हें काशीनिवासी परंपरागत दुग्धाहारी मठ के स्वामी से यह जानकारी मिली थी।

इस ग्रंथ के लेखन के लिए ग्रंथावलोकन प्रारंभ हुआ, तब उपर्युक्त बड़ी त्रुटियाँ-ब्रह्मघोटाला सामने आया। याज्ञवल्क्य स्मृति में, 'ब्रह्मार्षं च स्वयंभुवः' ऐसा मिला। इसका स्पष्ट अर्थ स्वयंभू ब्रह्मा ऋषि ऐसा ही होता है; परन्तु ब्रह्मार्षं = ब्रह्म + आर्ष ऐसा पाठक समझेंगे, इसलिए फिर से प्रयत्न शुरु हुए। 'मदन पारिजात' में संवर्त स्मृति वचन बिलकुल स्पष्ट प्राप्त हुआ कि 'ओंकारस्य ऋषिर्ब्रह्मा' ओंकार का ऋषि ब्रह्मा (अग्नि पु. २१५/३२) 'प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा' 'ब्रह्मार्षं तत्र विज्ञेयम्' (बृ. पारा. स्मृ.)

ओंकारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा।
कण्ठं भित्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगलिकावुभौ।।

यह प्रसिद्ध वचन उपनिषद्भाष्य में प्राप्त हुआ।

ओंकारोऽथ व्याहृतयः गायत्री सशिरास्तथा।
आदित्यरक्षणार्थं तु सायं प्रातर्दिने दिने।
सृष्टाः स्वयंभुवा पूर्वं ब्रह्मणस्तन्मुखं श्रुतम्।

ओंकार, व्याहृती, गायत्री तथा गायत्री शिरोमंत्र की उत्पत्ति स्वयंभू ने की। (स्वयंभू-ब्रह्मदेव) सांगली नगर से मँगाए ऋक्सर्वानुक्रमसूत्र के परिच्छेद में 'गृह्यपरिशिष्ट' (अ. १, खंड ८) में 'प्रणवस्य ब्रह्मा, परमात्मा, दैवी गायत्री' यह आधार मिला। काशीस्थित पण्डितों के लिखे ग्रंथ की भूमिका में 'ब्रह्मा ऋषिः' साधार सिद्ध किया हुआ मिला; परन्तु प्रयोग में 'ब्रह्म ऋषिः' प्राप्त हुआ, इसलिए गीताप्रेस व्यवस्थापक को पत्र से पूछा। उनका उत्तर १८, जुलाई १९६१ ई. को मिला, जिसमें कहा गया कि 'ब्रह्मा च असौ ऋषिश्च' इस विग्रह के अनुसार संधि 'ब्रह्म ऋषिः' ऐसा हो सकता है। उसके लिए पाणिनी सूत्र का आधार भी दिया है।

ऐसा ठोस आधार मिल गया, फिर भी व्याकरण का मूल में ही अल्प-ज्ञान है और २५ वर्षों के अन्तराल से वह भी मलिन हुआ! इसलिए 'ब्रह्म इत्यार्षम्' इस श्रुति का सन्तोषजनक निश्चय नहीं हो सका। इसलिए मुंबई के एक सदाचारसम्पन्न, प्रतिष्ठापराङ्मुख, दुरभिमानरहित, तैत्तिरीय, व्याकरणाचार्य, वेदान्ताचार्य, आदि परीक्षाओं में उत्तीर्ण शास्त्री से पत्र लिखकर पूछा कि 'ब्रह्मा+इत्यार्षम्' और 'ब्रह्म +इत्यार्षम्' इनकी संधि कैसे लिखी जाएगी? उनके ६।९।६१ ई. के पत्रोत्तर में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

लिखकर स्पष्टीकरण आया कि पुल्लिंगी ब्रह्मन् शब्द का रूप होनेपर 'ब्रह्म इत्यार्षम्' यह सही है तथा नपुंसक विवक्षा होनेपर 'ब्रह्मा' लिखे जाने पर 'ब्रह्मा इत्यार्षम्' यह सही है।

इस पत्र से तैत्तिरीय श्रुति का पूरा स्पष्टीकरण मिला। 'ब्रह्मन्' पुल्लिंगी ब्रह्मदेव, प्रजापति, स्वयंभू; ब्रह्म = परंब्रह्म यह नपुंसक लिंगी ब्रह्मन् शब्द का रूप है। 'परंब्रह्म ऋषिः' ऐसा कहना होता तो श्रुति ने 'ब्रह्मा इत्यार्षम्' ऐसा कहा होता! परन्तु इसका भी विपरीत अर्थ लिया जाता! प्रणव का, ओंकार का ऋषि कौन इस संबंध में किसी को कोई आशंका-कुशंका लेने का कोई कारण ही नहीं रहा। ये सब प्रमाण देखने पर भी जो कोई दुरभिमानी 'परंब्रह्म ऋषिः' अथवा 'परब्रह्म ऋषिः' ही कहते रहेंगे, वे आगे दी गई उक्ति के वर्ग के सिद्ध होंगे। 'तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।' अर्थात वे कापुरुष कहलाएँगे। प्रणव देवता– तैत्तिरीय श्रुति वचन से 'अग्नि' देवता ऐसा लगा तो भी 'देवोग्निः परमात्मा' (अग्नि पुराण) तथा अन्य स्मृति ग्रंथों में तथा सन्ध्या भाष्य में अग्नि = परमात्मा, ऐसा ही अर्थ लिया गया है।

छंद– 'गायत्रं' याने गायत्री, छंद ऐसा कहा है फिर भी 'दैव्येकम्' इस सूत्र के अनुसार दैवी गायत्री छंद ऐसा अनेकों ने स्पष्ट किया है। तथा गृह्य परिशिष्ट में भी 'दैवी गायत्री' ही है। 'देवी गायत्री छन्दः' ऐसा पाठ कुछ पोथियों में तथा ग्रंथों में प्राप्त होता है, वह त्याज्य है।

विनियोग– कहीं 'सर्वकर्मसु, सन्ध्या' अध्याय में 'आदिकर्मणि' श्रुति ने 'सायुज्यम्' कहा है। सभी वचन यही सूचित करते हैं कि जिस कर्म का उपयोग करना होगा, उसका विनियोग में उच्चार करना चाहिए। प्राणायामे, अर्घ्यदाने, जपे (आदि) विनियोगः।

प्रणव के बाद सात व्याहृतियों का उपयोग करना पड़ता है। उस सम्बन्ध में दो प्रकार दिखाई देते हैं।

'व्याहृतीनां च सर्वासां आर्ष चैव प्रजापतिः। (संवर्तस्मृति)'
'व्याहृतीनां च सर्वासामृषिरेव प्रजापतिः। (अग्नि. पु.)'

प्रणव वर्णन में योगी याज्ञ० स्मृति के वचन में कहा है कि व्याहृति को ब्रह्मदेव ने, स्वयंभू ने निर्माण किया।

अव्याहृतमिदं ह्यासीत् सदेवासुरमानुषम्।
संक्षेपायाऽसृजत् ब्रह्मा सप्ते मा व्याहृतीः पुरा।।

(बृ. पारा. स्मृति.)

एक दो स्मृतियों में तथा अग्निपुराण में एक पाठभेद में व्याहृती के सात ऋषि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

कहे हैं; परन्तु 'कलौ पाराशरस्मृतिः' प्रमुख प्रमाण इसलिए प्रजापति= (ब्रह्मदेव) ऋषि ही अधिक ग्राह्य; इसके अलावा स्वीकार करने से विस्तार भी नहीं होता, छंद तथा देवता इस में मतभेद नहीं है।

बाद में 'त्रिपदा गायत्री मंत्र' आता है। इसके ऋषि-छंद देवता वर्णन में कहीं भी विभिन्नता नहीं दिखाई दी। गायत्री छंद, विश्वामित्र ऋषि तथा सविता देवता।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न विचारकों के सम्मुख उपस्थित होगा कि यह विश्वामित्र कौन है? कौशिक विश्वामित्र या अन्य कोई विश्वामित्र? वसिष्ठ ऋषि के सौ पुत्रों को मारनेवाला तथा अन्त में 'धिग् बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं बलं।' आदि कहनेवाला कौशिक विश्वामित्र यदि गायत्री का ऋषि होगा तो उस विश्वामित्र के पहले, अत्यन्त प्राचीन ऋषि अत्रि, मरीचि, वसिष्ठ आदि ब्रह्मदेव के मानसपुत्र गायत्री की उपासना करते थे या नहीं? और ब्रह्मादयोऽपिसन्ध्यायां तां ध्यायन्ति जपन्ति च (देवी भाग.) ब्रह्मदेवादि भी गायत्री की उपासना करते हैं यह वचन क्या असत्य है?

समाधान– इस आशंका को स्थान न मिले इसलिए मनु आदि ने विश्वामित्र शब्द का अर्थ स्पष्ट किया है।

'त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादं अदूदुहत।'
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः

(मनु २/५७; श्रीकृष्ण पंडित भाष्येऽपि)

परमेष्ठी प्रजापति ने (ब्रह्मदेव ने) 'तत॰' आदि सावित्री = गायत्री ऋचा का एक एक पाद तीन वेदों का मानो (निचोड़) दूध निकाल कर तैयार किया। योगी याज्ञवल्क्य स्मृति में 'ओंकारोऽथ व्याहृतयो गायत्री सशिरास्तथा।' 'सृष्टा स्वयंभुवा पूर्वम्–'

स्वयंभू ब्रह्मदेव ने गायत्री की उत्पत्ति की। 'विश्वस्य मित्रं द्विजराज पूज्यो मुनिर्नियोगस्तु जपादिकेषु' (बृ. पारा.) 'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः' आदिवचनों से सिद्ध होता है कि यह विश्वामित्र याने ब्रह्मदेव, जो संपूर्ण विश्व का-जगत् का मित्र है तथा सभी द्विजश्रेष्ठों को पूज्य है। सर्वेषामेव वेदानां गुह्योपनिषदां तथा। सारभूता तु गायत्री निर्गता ब्रह्मणो मुखात्।। (छांदो-परि.) अर्थात् यहाँ 'विश्वामित्र' न कहते 'प्रजापति' कहने से नहीं चलेगा क्योंकि श्रुति-स्मृति-पुराण तथा सर्वानुक्रम सूत्र में 'विश्वामित्र' शब्द ही है; केवल उस शब्द का अर्थ प्रजापति है, यह जानना आवश्यक है। प्रयोग में 'विश्वामित्र = प्रजापति' ऐसा आगे निर्देश है।

शिरोमंत्र– 'आपो ज्योती' मंत्र को गायत्री शिरोमंत्र कहते हैं। इसके पूर्व दिए योगी याज्ञवल्क्य वचन में स्पष्ट ही कहा है कि यह ब्रह्मदेव ने निर्माण किया। अग्नि पुराण में–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऋषिः प्रजापतिस्तस्य छन्दोहीनं यजुर्यतः।
ब्रह्माग्निवायुसूर्याश्च देवताः संप्रकीर्तिताः।।

ऐसा कहा है। धर्मसिंधु, सं. र. माला, भा. आ. सू., आदि में 'यजुः' छंद ही दिया है। इसलिए प्रजापति ऋषिः, ब्रह्मा, अग्नि, वायु तथा सूर्य (आदित्य) देवता तथा यजुः छंद यह निश्चित हुआ।

प्रथम मार्जन के मंत्र– 'आपो हिष्ठा' आदि तीन मंत्र हैं। इनके संबंध में अधिक विवाद नहीं है। तथा ऋक्सर्वानुक्रम सूत्र है। सं. र. माला ग्रंथ में इसके ऋषिदेवता अलग दिए हैं। परन्तु वे निर्देश ऋक्सर्वानुक्रम सूत्र विरोधी होने से उपेक्षणीय हैं।

मंत्राचमन– इस में प्रातः, मध्याह्न तथा सायं सन्ध्या में क्रम से 'सूर्यश्च॰' 'आपः पुनन्तु॰' तथा 'अग्निश्च॰' ये मंत्र हैं। तथा ये सभी तैत्तिरीय आरण्यक तथा नारायणोपनिषद् के हैं। वह आरण्यक-उपनिषद् नारायण ने कहा है। तथा उसमें उनके ऋष्यादि का निर्देश नहीं है। इसलिए नारायण मानना ही अधिक उचित है। इसके अलावा संवर्त स्मृति का बहुत बड़ा आधार इसे है। इसमें 'आपः पुनन्तु' तथा 'अग्निश्च'–इनका 'नारायण' कहा है। 'सूर्यश्च॰' का 'अग्नि' बता कर 'केचन नारायण इति मन्यंते' ऐसा कहा है। कोई 'यज्ञिक्यो देवता उपनिषद् ऋषयः' कोई 'ब्रह्मा', धर्मसिंधु में एक जगह 'याज्ञवल्क्य उपनिषद् ऋषिः' तथा एक जगह 'नारायण' तथा 'आपः पुनन्तु' का नारायण तथा याज्ञवल्क्य आदि भेद हैं। गृह्य परिशिष्ट के वचनों में ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णु का उल्लेख हैं। उपर्युक्त सभी कारणों से तीनों मंत्रों के नारायण ऋषि लेना ही उचित है।

'सूर्यश्च॰' इस मंत्र का नारायण ऋषिः। 'सूर्यमन्यु मन्युपतयो रात्रिश्च देवताः। प्रकृतिश्छन्दः' यह निश्चित हुआ। 'आपः पुनन्तु॰' इस में दो मंत्र हैं तथा सं. र. मा. 'इति द्वयोः' ऐसा ही कहा है। वे लेखक तैत्तिरीय हैं। गृह्य परिशिष्ट में 'विष्णुः आपः अष्टिः' ऐसा निर्देश है। परन्तु संवर्तस्मृति में 'नारायण आपोऽनुष्टुप्' ऐसा स्पष्ट निर्देश है। इस में प्रथम में 'आपः पुनन्तु॰' इस में ३३ तथा 'यदुच्छिष्टं.' में ३२ अक्षर हैं। दोनों को एक ही मानकर 'अष्टि' कहा प्रतीत होता है। अष्टि छन्द में ६४ अक्षर हैं। एक अधिक होने पर भी छन्द वही रहता है। अधिक से अधिक उसे 'भुरिक्' यह उपपद लगता है (अग्नि. पु.); संवर्त स्मृति में 'आपो देवता' ऐसा कहा; वह केवल प्रथम पाद की देवता का निर्देश है। जिस प्रकार 'सूर्यश्च॰' मंत्र में जिन देवताओं की प्रार्थनाएँ हैं, वे सभी अनेकों ने ली हैं। तथा 'अग्निश्च॰' की भी सभी प्रार्थनाएँ लिए हैं। अर्थात् 'लिंगोक्त' देवता लिए हैं। उसी 'आपः पुनन्तु॰' में से भी लिंगोक्त देवता लेना आवश्यक है; वे आपः, पृथिवी, ब्रह्मणस्पति तथा ब्रह्म ये चार हैं। इसीलिए इस

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.
मंत्र का ऋषि नारायण, अनुष्टुप् छंद तथा आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मच देवताः' यह निश्चित हुआ।

'अग्निश्च ०' नारायण ऋषिः। अग्निमन्युमन्युपतयोऽहश्च देवताः'। प्रकृतिश्छन्दः यह निश्चित हुआ। काशीस्थित महामहोपाध्याय वेदाचार्य ने इस मंत्र के यही ऋषि देवता छन्द दिए हैं।

दूसरा मार्जन– इस में 'आपो हि ष्ठा॰' आदि नौ मंत्रों का सूक्त है। तथा 'ससृषी॰' मंत्र है। उपर्युक्त सूक्त के छन्द-ऋषि-देवता वर्णन में बहुत मतभेद नहीं है। उस में पंचमी वर्धमाना, तथा 'सप्तमी प्रतिष्ठा' ऐसा निर्देश सर्वानुक्रमसूत्रानुसार है, परन्तु वर्धमाना तथा प्रतिष्ठा ये स्वतंत्र छन्द के ही नाम हैं, ऐसा कुछ लोक कहेंगे। परन्तु ये गायत्री के ही प्रकार हैं। उनके लक्षण प्रारंभ के अध्याय में ऋषि, छंद, देवता विवेचन में दिए हैं। प्रयोग में वर्धमाना (गायत्री) तथा प्रतिष्ठा (गायत्री) ऐसा स्पष्ट किया है। 'ससृषीः' इस मंत्र के ऋष्यादि तीनों सन्ध्या भाष्य में अथवा पोथियों में अथवा सन्ध्या के ग्रंथ में किसीने नही दिए हैं। गृह्य परिशिष्टादि के ऋष्यादि वर्णन में वे नहीं मिले हैं। यह गृह्य परिशिष्ट का मंत्र है। इस में कुल तीस अक्षर हैं। ३२ अक्षरों का अनुष्टुप छन्द होता है। २ अक्षर कम रहनेवाला यह अनुष्टुप छन्द हुआ। 'द्वाभ्यां विराट स्वरा जौ' इस पिंगल सूत्र के अनुसार यह निश्चित हुआ। ब्रह्मर्षि सातवलेकर से लिखित रूप में ज्ञात हुआ है कि इसका शतान्तिः ऋषिः तथा यह अथर्व॰ ६।२३।१ मंत्र है। देवता आपः मंत्रार्थ से स्पष्ट है; इसलिए शन्ताति ऋषिः। आपो देवताः। स्वराडनुष्टुप छन्दः। यह निश्चित हुआ।

अघमर्षण– 'ऋतंच॰' आदि तीन मंत्र हैं। ऋक्सर्वानुक्रम सूत्र स्पष्ट होने के कारण उसके अनुसार ऋष्यादि दिए हैं। इस संबंध में इस मंत्र के देवता के वर्णन में हुए घोटाले के सन्दर्भ में पहले ही निर्देश किया गया है।

अर्घ्यदान– मध्याह्न सन्ध्या में 'हंसः शुचिषद्॰' यह मंत्र है। उसका सर्वानुक्रमसूत्र तथा विवरण दो स्थानों पर प्राप्त हुआ। एक स्थान पर त्रिष्टुप छंद है तथा एक स्थान पर जगती है। इस मंत्र में ४७ अक्षर हैं। त्रिष्टुप छंद ४४ अक्षरों का तथा जगती ४८ अक्षरों का; इसलिए जगती छंद लेना ही शास्त्रशुद्ध है। 'वामदेवः सूर्योजगती' यह सूत्रविवरण ही शुद्ध है। पोथियों में 'गौतमो वामदेवः' है, वह लेना उचित नहीं है।

उपस्थान– 'मित्रो जनान्' इस सूक्त का 'गाथिनो विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता' ऐसा अनेकों ने दिया है। परन्तु ऋक्सर्वानुक्रम-सूत्र विवरण में 'विश्वामित्रो मित्रस्त्रिष्टुप अन्त्याश्चतस्रो गायत्र्यः' ऐसा निर्देश है। मित्र याने सूर्य, सविता यह साधारण अर्थ हुआ फिर भी उसके विशेष अर्थ में बहुत अन्तर है। सविता =

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उत्पत्यादि करनेवाला और मित्र = मित्र की तरह हित करनेवाला; मंत्र में सविता शब्द न होकर 'मित्र' शब्द ही है। जो सविता है, वह संहार भी करता है। वह मित्र की तरह व्यवहार करेगा ही, ऐसा नहीं है। दोष घटित होने पर वह सजा देगा ही; परन्तु मित्र दोषों की ओर न देखते हुए सुख देता है। हित करता है। 'मित्र' के स्थान पर 'सूर्य' 'भानु' कहना भी गलत है।

'त्र्यंबकं॰' 'मैत्रावरुणिर्वसिष्ठ ऋषिः' ऐसा ही पोथी-पुस्तकों में दिखाई देता है, परन्तु सर्वानुक्रम-सूत्र में केवल 'वसिष्ठ' ही है। वसिष्ठ ब्रह्मदेव के मानसपुत्र हैं। मैत्रावरुणि = मित्र तथा वरुण से जिसका जन्म हुआ, वह वसिष्ठ; मूल वसिष्ठ का राजा के शाप से नाश होने पर मित्र तथा वरुण से फिर से वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई। दोनों व्यक्ति एक ही होने पर भी दोनों में हजारों वर्षों का कालभेद है। इसलिए तथा सूत्र में 'वसिष्ठ' ही है इसलिए 'वसिष्ठ ऋषिः' ही कहना चाहिए। 'त्र्यंबकं' का उच्चार 'त्रियंबक' करते हैं, वही शुद्ध है।

'चित्रं देवानां' 'कुत्सः सूर्यस्त्रिष्टुप्' ऐसा सूत्र विवरण होकर 'आंगिरसः कुत्सः' ऐसा पाठ मिलता है। कुत्स ऋषिः ही लेना उचित है।

'नमो ब्रह्मणे' गृह्य परिशिष्ट के वचन में 'जगती' छंद ऐसा निर्देश मिला; परन्तु वह लेखक का प्रमाद मानना पड़ेगा क्योंकि इस मंत्र में ११/११ अक्षरों के चार चरण स्पष्ट हैं। 'त्रिष्टुभो रुद्राः पादः' इस छंद के प्रत्येक पाद में ११ अक्षर होते हैं। 'जगत्या आदित्याः पादः', 'जगती' के प्रत्येक पाद में १२ अक्षर होते हैं। ऐसा अग्नि पुराण के 'छन्द सार' अध्याय में स्पष्ट कहा है। 'जगती' को ४८ अक्षर चाहिए; परन्तु इस में ४४ अक्षर हैं; अतः यह शुद्ध त्रिष्टुप छंद है। पिंगल सूत्र के आधार से यही सुनिश्चित हुआ। 'गणानां त्वा॰' मंत्र का 'शौनको गृत्समदो गणपतिर्जगती' याने जगती छंद है। अक्षर ४८ हैं; गिनकर देखें।

'तच्छंयोः' इस मंत्र के स्थान का निर्देश एक भी सन्ध्याभाष्य में नहीं है। पुणे निवासी एक दशग्रंथी वैदिक की ओर से यह लिखित सूचना मिली कि 'मूलमपिचन ज्ञायते तन्मार्गणमावश्यक मिति मन्ये' (भाद्र. शु. ५।१८८२) इसका मूल स्थान मालूम नहीं है। इसकी खोज करनी पड़ेगी। ब्रह्मर्षि सातवलेकर से स्थान का पता चला, जो प्रयोग में दिया है।

'आयातु वरदा॰' इसके ऋष्यादि पोथी-पुस्तकों में नहीं दिए गए हैं। तथा स्वर भी उस मंत्र को नहीं दिए हैं। परन्तु खंडराजदीक्षितकृत भाष्य में तो स्वर के साथ छपा है। यह मंत्र तैत्तिरीय आरण्यक का है। ऋष्यादि एक ग्रंथ मिल गया। प्रयोग में दोनों का निर्देश किया है। 'उत्तम शिखरे॰' इसके भी ऋष्यादि दिए हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

ऋग्वेदी सन्ध्या के अन्य मंत्रों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद नहीं दिखाई दिए। उनके ऋष्यादि ऋक्सर्वानुक्रमसूत्रानुसार ही प्रयोग में दिए हैं।

ऋक्प्रतिशाख्य ग्रंथ उव्वटभाष्यसारसहित अचानक हाथ में आ गया। छंदादि निर्णय करने में उससे बहुत सहायता मिली। पटल १६ तथा १७ इस में बहुत उपयुक्त जानकारी मिली। इस ग्रंथ का अध्ययन करनेवाले अत्यल्प हैं। 'पिंगल-छन्दःसूत्रम्' हलायुधवृत्ति तथा कादम्बिनी टीका सहित काशी से विशेषरूप से आमंत्रित की, उसका भी काफी लाभ हुआ।

शुक्ल यजुर्वेदीय माध्यंदिन सन्ध्या के मंत्रों के ऋषि-देवता-छंद :

इस वेद के सर्वानुक्रमसूत्र होकर भी बहुत विविधता उत्पन्न हो गई है। इस संध्या में भी तैत्तिरीयों के काफी मंत्र हैं तथा कुछ थोड़े ऋग्वेद के हैं। यजुःसर्वानुक्रम सूत्र के परिच्छेद गीता प्रेस के ग्रंथ में मिले, जिससे निर्णय करना सुलभ हुआ। 'अपवित्रः' वामदेव ऋषिः। विष्णुर्देवता अनुष्टुप् छन्दः। अन्य जगह में मिले। गीता प्रेस ग्रंथ में उल्लेख नहीं हैं।

सूचना– 'पृथ्वीति॰' प्रणव व्याहृती, गायत्री, गायत्री शिर, 'सूर्यश्च॰' 'आपः पुनन्तु॰' 'अग्निश्च॰' 'ऋतंच॰' 'आकृष्णेन॰' 'अपोहिष्ठा॰' मंत्र के ऋष्यादि का निर्णय इसके पूर्व दिया है वैसाही यहाँ करें।

१- 'द्रुपदादिव॰' यह मंत्र थोड़े अलग रूप में तैत्तिरीय सन्ध्या में भी है। अक्षरसंख्या समान ही है। उसके यजुःसर्वानुक्रमसूत्र- 'द्रुपदादिवानुष्टुपवापी' है। अनुष्टुप छंद 'आपो देवताः' इतना ही उसमें है। भा. आ. सू. में 'कोकिल राजपुत्रः' ऐसा स्पष्ट निर्देश है। परन्तु बृहत्पाराशर स्मृति में 'कोकिलो राजपुत्रः' ऐसा स्पष्ट निर्देश है। इसलिए 'कोकिलो राजपुत्रः' अथवा 'राजपुत्रः कोकिल ऋषिः। आपो देवता' अनुष्टुप् छन्दः। यह निश्चित हुआ। (बृ. पारा. २।५०)

२- 'सुमित्रिया॰' यह एक ही (१३+१८) = ३१ अक्षरों का मंत्र वा. यजु. ६।२२ का उत्तरार्ध, ३५।१२, ३६।२३, तथा ३८।२३ इतने स्थानों पर है। यह एक ही मंत्र होकर मा. आ. सूत्रावली में 'सुमित्रिया दुर्मित्रिया इति द्वयोः' ऐसा कहा है। उसे कहीं आधार नहीं है। शुक्लयजुः सर्वानुक्रम सूत्र में ६।२२ उत्तरार्ध तथा–६।१३ इन दोनों मंत्रों के सम्बन्ध में निर्देश है कि, 'सुमित्रिया न आपः, हविष्मती लिंगोक्त देवता अनुष्टुप्' लिंगोक्त देवता 'आपः' है। सूत्र में ऋषि के सम्बन्ध में निर्देश नहीं है; परन्तु 'यजुःसर्वानुक्रमसूत्रम्' ग्रंथ में प्रथम अध्याय के प्रारंभ में ही सूत्र है कि 'इषेत्वा' इस प्रथम मंत्र से 'खं ब्रह्म' इस अ. ४० के अन्तिम मंत्र तक जहाँ सूत्र में ऋषि का निर्देश नहीं है वहाँ 'विवस्वान्' ऋषि मानना चाहिए। इसलिए निश्चित हुआ कि 'सुमित्रिया॰'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस मंत्र का विवस्वान ऋषिः। 'आपो देवताः तथा १ अक्षर होनेवाला अनुष्टुप्', याने निचृदनुष्टुप् छन्दः।

३- 'उद्वयं॰' प्रस्कण्वः सूर्योऽनुष्टुप् ऐसा निर्देश मा. सू. तथा गीता प्रेस ग्रंथ में है तथा वह सही है। 'उदुत्यं॰' भा. आ. सू. तथा पाठकशास्त्री ग्रंथ में अनुष्टुप् छन्द दिया है; परन्तु 'यजुःसर्वानुक्रमसूत्र उदुत्यं प्रस्कण्वः सौरी गायत्री' ऐसा है। उदुत्यमिती प्रस्कण्वो गायत्रं सूर्यदेवता' (बृ. पारा. स्मृ. अ. २) इसके तीसरे पाद में एक अक्षर कम है; परन्तु 'इत्यादि पूरणः' इस सूत्र के अनुसार जैसे 'त्र्यंबकं यजा महे' इस में उच्चार 'त्रियंबकं' 'घृणिः सूर्य आदित्य' इस में 'सूर्य' का उच्चार सूरिय करना चाहिए (सं. र. भा. देखे) वैसे ही इस मंत्र के 'सूर्यम्' का उच्चार 'सूरियम्' किया याने गीता प्रेस ग्रंथ में 'निचृद्गायत्री' कहा है वैसा कहने का कारण नहीं है; लेकिन उसे अनुष्टुप् छंद कहना उचित नहीं होगा; उस मे ८।८ अक्षरों के चार चरण चाहिए। इस में तीन ही चरण हैं तथा अक्षर २३ हैं। गायत्री छन्द कहना उचित लगे तो निचृद् (एक अक्षर कम रहनेवाला) 'गायत्री' कहें। प्रयोग में सूत्रानुसार ही वर्णन दिया है। बृहत् पाराशर स्मृति में भी 'गायत्री' ही कहा है।

४- तच्चक्षुर्देवहितं- इसका मा. आ. सू. उष्णिक् छंद दिया है। पाठकशास्त्री पोथी में वही है। गृह्य परिशिष्ट में 'पुरउष्णिक्' दिया है। उष्णिक् छंद में २८ अक्षर चाहिए। पुरउष्णिक् का लक्षण अग्निपुराण में 'सूर्यवसु-वस्वर्णैः' त्रिपाद् भवेत् (श्लोक ६) १२, ८, ८ अक्षरों के तीन चरणोंका पुरउष्णिक् छंद होता है। यही ऋक्प्रातिशाख्य तथा पिंगल सूत्र में है। इस मंत्र में ६७ अक्षर हैं। ६८ अक्षरों का अत्यष्टिः छंद होता है। यजुःसर्वानुक्रम सूत्रभाष्यकार अनंतदेव ने ऊहापोह करके यही सिद्ध किया है कि पुर-उष्णिक् छंद हो ही नहीं सकता; क्योंकि उसमें २८ अक्षर होते हैं। (अर्थात् उन्होंने पुरउष्णिक् का लक्षण नहीं दिया है।) यहाँ 'एकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्' व्यूह-'व्यूहेनाऽत्याष्टिर्वा' व्यूह याने एक अक्षर की पूर्ति करना। मा. आ. सू. में केवल उष्णिक् दिया है, उसका कोई आधार नहीं है। इसलिए 'दध्यङाथर्वण ऋषिः (सूर्योदेवता) अत्यष्टिच्छन्दः।'

५- आवाहन मंत्र- 'तेजोसि... मसि' यह एक तथा 'धामनामासि... यजनमसि' यह दूसरा मंत्र है। इसका यजुःसर्वानुक्रम सूत्र- 'तेजोसि धामाज्यं, परमेष्ठिप्राजापत्यो दर्शपूर्णमास मंत्राणां ऋषिर्देवा प्राजापत्याः' ऐसा है। इस में छंद का निर्देश नहीं है। मा. आ. सू. में यह एक ही मंत्र है ऐसा छापा है तथा कहा है और पाद अथवा मंत्रार्ध भी नहीं बताए हैं। पाठकशास्त्री ग्रंथ में 'तेजोसि... धामनामासि। प्रियं देवानां... यजनमसि।। ऐसे १६।१६ अक्षरों के दो भाग किए हैं। तथा उसे एक ही मंत्र कहा

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

है। यद्यपि यह स्वीकार करें फिर भी ३२ अक्षर ही हैं। जगती छंद में ४८ अक्षर; १२।१२ अक्षरों के चार चरण चाहिए; ऐसा होने पर भी मा. आ. सू. तथा पाठकशास्त्री ग्रंथ में 'जगती' छंद कहा है; वह अशास्त्रीय है। प्रथम मंत्र में ११ अक्षर हैं; ११ अक्षरों का आसुरी पंक्ति छंद होता है। दूसरे में २१ अक्षर हैं; २१ अक्षरों का ऋगुष्णिक् छंद होता है ऐसा ऋक्प्रातिशाख्य से सिद्ध हुआ है। पिंगल सूत्र से भी यही निश्चित होता है। उपर्युक्त सूत्र में 'आज्यं' कहा है, इसलिए मा. आ. सू.के कथनानुसार आज्यं देवता मानने में कोई आपत्ति नहीं है; इसलिए 'तेजोसि धामनामासि' इन दो मंत्रों का ऋषिः परमेष्ठी प्रजापतिः। आज्यं देवता। प्रथमस्य आसुरी पंक्तिः। द्वितीयस्य ऋगुष्णिक् छन्दः' यही निश्चित हुआ। (ऋक्प्रातिशाख्य पटल १६ देखिए।)

६- गायत्र्युपस्थानम्- 'गायत्र्यस्येकपदी सावदोम्' इतना ही मंत्र मा. आ. सू. में दिया है। परन्तु वह कहाँ का है यह नहीं बताया है। यह मंत्र शुक्ल-यजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद (५।१४।७) का है। उस में 'सावदोमा प्रापत्' ऐसा है; याने 'आ प्रापत्' ये तीन अक्षर छूट गए हैं। ऐसा घोटाला न हो, इसी लिए मंत्र के मूल स्थान का ज्ञान स्मृतियों ने आवश्यक के रूप में बताया है। इस मंत्र में ५० अक्षर हैं; तीन कम करने पर ४७ होते हैं। ऐसा होने पर भी मा. आ. सू. में इसे 'गायत्री छंद' कहा है। ४८ अक्षरों का जगती छंद होता है। (गायत्री के अक्षर २४ हैं।) दो अधिक होने पर उसे स्वराट् यह उपपद लगता है। अक्षर १ कम होने पर 'निचृद' उपपद लगता है। यह मंत्र बृहदारण्यक में जितना दिया है उतना ही लेना उचित है। इसलिए 'गायत्र्यसि मंत्रस्य विवस्वान् ऋषिः। स्वराड्जगती छंदः। परमात्मा देवता। गायत्र्युपस्थाने विनियोगः। ऐसा निश्चित हुआ। तीन अक्षर कम लेने का ही जिनका हठ होगा, उन्हें 'निचृद जगती छन्दः।' ऐसा तो भी कहना चाहिए। वेदमूर्ति मुलेशास्त्री, नगर निवासी, इनके पास की पुरानी पोथियों में उपनिषद् जैसा ही है। (पत्र– ३०।११।६१;)

प्रदक्षिणा मंत्र- 'विश्वतश्चक्षुः' मा. आ. सू. का विश्वकर्मा भौवन ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। त्रिष्ठुप् छंदः' ऐसा निर्देश है। परन्तु यजुः सर्वानुक्रमसूत्रानुसार 'भौवन ऋषिः। विश्वकर्मा देवता। त्रिष्टुप् छन्दः। सूर्य प्रदक्षिणायां विनियोगः।' ऐसा लेना ही उचित होगा।

जपनिवेदन- 'देवा गातुविद०' मा. आ. सू. में विराट् छंद कहा है, परन्तु किस छन्द का विराट् यह नहीं बताया है। इस मंत्र में ३० अक्षर हैं; ३२ अक्षरों का अनुष्टप छंद; इस में दो अक्षर कम हैं, इसलिए विराडनुष्टुप् छन्द कहना अनिवार्य है। 'मनसस्पतिर्ऋषिः। वातो देवता। विराडनुष्टुप् छन्दः। जप निवेदने विनियोगः।' यह निश्चित हुआ। (दो कम या अधिक होंगे तो) 'द्वाभ्यां विराट् स्वराजौ' पिंगल सूत्र।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

गायत्री विसर्जनम्- 'उत्तम शिखरे॰' मा. आ. सू. उत्तमे... शिखरे देवि भूम्यां पर्वत मस्तके। ब्राह्मणोभ्यो विनिर्मुक्ता... सुखम्' ऐसा मंत्र दिया है। पाठकशास्त्रीजी के ग्रंथ में 'उत्तम शिखरे जाता भूम्यां पर्वतमूर्धनि आदि। शेष ठीक है। इन्होंने मंत्र कहाँ से लिया, यह नहीं दिया है। गीता प्रेस ग्रंथ में मंत्र का स्थान दिया है, वह सही है। परन्तु 'उत्तमे शिखरे देवी' ऐसा पाठ है। यह मंत्र तै. आ. प्र. १० अ. ३०; में दिया है तथा वहाँ वह 'उत्तमे शिखरे जाते भूम्यां पर्वतमूर्धनि। ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छदेवि यथासुखम्' ऐसा है। नारायणोपनिषद् में भी ऐसा ही है। इसलिए यही लेना उचित है। सन्ध्या भाष्यकारों ने (ऋग्वेदी तथा तैत्तिरीय) यही लिया है।

ऋषि देवता छंद- पाठकशास्त्रीजी के ग्रंथ में दिया ही नहीं है। मा. आ. सू. 'कश्यप ऋषिः' गीता प्रेस 'वामदेव ऋषिः' कहा है। तैत्तिरीय नारायणोपनिषद में यह है। वहाँ ऋष्यादि का निर्देश नही है। 'स्मृतिमुक्ताफल' ग्रंथ में भी कर्मकाण्ड विभाग में 'वामदेव' ऋषि ही है, इसलिए 'वामदेव ऋषिः। सन्ध्या- गायत्री देवता। अनुष्टुप् छन्दः सन्ध्या-गायत्री-विसर्जने विनियोगः।' यह निश्चित हुआ।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३५

❖

तैत्तिरीय सन्ध्या के मंत्र, ऋषि तथा देवता

तैत्तिरीयों को भी अन्य लोगों की तरह ही मंत्र के ऋषि, छंद, देवता तथा विनियोग का उच्चार करना चाहिए, यह पहले साधार सिद्ध किया ही है तथा श्रीमद् जगद्गुरू श्रीमच्छंकराचार्य मठ शृंगेरी का प्रमाणपत्र ही इस ग्रंथ में छापा है। उस में से एक ही महत्त्व का वचन देना पर्याप्त होगा-

'आपस्तंबगृह्यसूत्रभाष्ये सुदर्शनकृते पूर्वोदाहृत छांदोग्यब्राह्मणवाक्यमेवोदाहृत्य ऋष्यादिस्मरणमावश्यकमिति प्रतिपादितम्। वक्तव्यं छंद आदौ तु ततश्चर्षिः प्रकीर्तितः देवता- विनियोगश्च तैत्तिरीयक पाठकैरिति स्मृतौ तैत्तिरीयैरपि अवश्यं ऋष्यादिस्मरणं विहितमस्ति.'

संस्कार रत्नमाला ग्रंथ में तैत्तिरीय सन्ध्या के सभी मंत्रों के छंदर्ष्यादि दिए हैं; परन्तु उन में से कई निर्देश स्मृतिविरोधी तथा ऋक्सर्वानुक्रम और यजुःसर्वानुक्रम तथा पुराणवचनों के विरुद्ध होने से वे पूर्णतः स्वीकार्य नहीं हैं। प्रमाद दूर करते हुए जहाँ ग्रहण करने योग्य लगे वहाँ उनके आधार लिए हैं। जिन मंत्रों के ऋष्यादि का निर्णय इस अध्याय में पहले किया गया है उसकी पुनरुक्ति करने की आवश्यकता नहीं है।

आवाहन- मंत्र : 'आयातु वरदा॰ इत्यनुवाकस्थमंत्राणां वामदेव ऋषिः प्रातः (मध्याह्न-सायं) सन्ध्या देवता। प्रथमद्वितीययोरनुष्टुप्। 'सर्ववर्णे॰' इसका द्विपदा गायत्री छंद सं. र. मा. में दिया है, परन्तु वह प्रमाद है। ८।८ अक्षरों के दो चरण इस में हैं। 'द्विपाद द्वादशवस्वर्णे॰' (अग्नि.पु.) १२।८ अक्षरों के दो चरणों के छंद का नाम द्विपाद गायत्री (पिंगल सू॰) है। यह लक्षण यहाँ नहीं है; इसलिए यहाँ द्विपादनुष्टुप छन्द कहना अनिवार्य है। ८।८ अक्षरों के चार पादों का अनुष्टुप होता है, यहाँ दो ही पाद हैं। 'ओजोऽसी॰' यजुश्छन्दः। अथवा प्राजापत्यानुष्टुभ् कहना चाहिए। (ऋ. प्रा.)

दूसरा मार्जन- 'दधिक्राव्णो॰' वासुदेव ऋषिः। दधिकावा देवता। अनुष्टुप् छंदः।। 'हिरण्यवर्णा॰' इति मंत्रचतुष्टयस्य नारायण ऋषिः। आपो देवता। त्रिष्टुप छन्दः।।

द्रुपदादिवेति- इस मंत्र में तथा यजुर्वेदी मंत्र में थोड़ा अन्तर है, फिर भी अक्षर

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

समान ही हैं; इसलिए छंद वही हैं। इसके पूर्व निर्णय किया जा चुका है।

अर्घ्यदान में गोपीनाथ भट्टजीने सं. र. मा. में अस्त्रोपसंहरण कहा है। उसका मंत्र गायत्रीशिरोमंत्र ही है। 'तच्चक्षुर्देवहितं' इस मंत्र के सन्दर्भ में यजुर्वेदी मंत्रों में चर्चा की गई है; परन्तु यह मंत्र तैत्तिरीय आरण्यक में है। (४।४२); इस में १५ + ७४ = ८९ अक्षर हैं; ऐसा होते हुए भी सं. रत्नमाला में 'सोमः सूर्यो गायत्री' कहा है। गायत्री छंद २४ अक्षरों का है! ८८ अक्षरों का आकृति छंद होता है। (अग्नि पु.) (ऋक्प्रतिशास्त्र) यहाँ १ अक्षर अधिक है। 'न्यूनाधिकेन एकेन निचृद् भुरिजौ' ऐसा पिंगल सूत्र है। इसलिए इसका 'भूरिग् आकृतिः १ छंद निश्चित होता है। 'भूरिगाकृति छन्दः' पिंगल सूत्र- हलायुधवृत्ति में आकृति छंद का यही उदाहरण दिया है। तैत्तिरीय आरण्यक में जिन मंत्रों के छंदादि का निर्देश है; उसके अलावा ऋषि नारायण लेना ही ऋषिनिर्णय के शास्त्र-नियमानुसार अनिवार्य है। 'नारायणः सूर्योभुरिगाकृतिः' ऐसा निश्चित हुआ। इसी प्रकार से ही अन्य मंत्रों के संबंध में निर्णय किया गया है।

'यत्किंचेदं॰' 'कितवासः' इति द्वयोः' शुनः शेषो वरुणस्त्रिष्टुप्' सूर्योपस्थाने विनियोगः।' वरुण देवता का मंत्र होकर 'सूर्योपस्थाने' इसका उत्तर 'वारुणीभिरादित्यमुपस्थाय प्रदक्षिणम् इति श्रुतिः' ऐसा तैत्तिरीय सन्ध्या भाष्यकार श्रीकृष्ण पंडित ने कहा है। सायंसन्ध्योपस्थान के सभी मंत्र वरुणदेवता के हैं, तथा उनका वक्ता, वह प्रार्थना करनेवाला ऋषि 'शुनःशेप' ही है। यह 'इमं में वरुण' इस मंत्र के श्रीकृष्ण पंडित भाष्य में स्पष्ट दिखाई देता है। वे लिखते हैं, 'पुरा कश्चिच्छुनः शेषो नाम ऋषिः पशुत्वेन यूपे बद्धः सन तद्बंधविमोचनार्थं वरुणं प्रार्थयामास' ऐसा निर्देश सन्ध्याभाष्य में होकर तथा यह 'शुनःशेष की कथा प्रसिद्ध होकर सं. र. माला में इन सभी मंत्रों का 'विश्वे देवा ऋषयः' ऐसा कहा है।

संध्याविसर्जनम्- उत्तमे शिखरे इत्यानुवाक मंत्रयोः वामदेव ऋषिः (स्मृति मुक्ताफले) प्रातः (मध्याह्न वा सायं) सन्ध्यादेवता। प्रथमस्य अनुष्टुप्। द्वितीयस्य स्वराट् त्रिष्टुप्। घृणिः सूर्य॰' इत्यस्य नारायण ऋषिः। सूर्योदेवता। त्रिष्टुप्श्छंदः। सन्ध्याविसर्जने विनियोगः।

सं. र. मा. में और दो दिए हैं; परन्तु तीन भाष्य तथा एक सार्थ सन्ध्यापुस्तक में किसीने भी वे नहीं दिए हैं, इसलिए प्रयोग में नहीं दिए हैं।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३६

केशवादि चौबीस नामों का अर्थ तथा परस्पर संबंध

१- **केशव–** कः ब्रह्मा, ईश, रुद्रः (केशौ) ब्रह्मदेव तथा रुद्र इन्हें प्रेरणा देनेवाला, उनका पालन करनेवाला, इसलिए केशव; इस से प्रभाव- महिमा की जानकारी मिली परन्तु यह कौन, इसका बोध नहीं होता, इसलिए कहते हैं–

२- **नारायण–** जो केशव वही नारायण कहते हैं। इस से ज्ञात होता है कि क्षीराब्धिनिवासी चतुर्भुज इ. (१) अर = दोष; न = अर = नार = गुण; दोषरहित सभी सद्गुणों का, नाराका जो अयन, आश्रयस्थान वह; (२) नाराः वेदाः है अयन = आश्रयस्थान जिसके अर्थात् वेदप्रतिपाद्य; (३) नरसंबंधी = नारम् (नर = जीव) नारं अयते अनेन; इसलिए नारायण। जगत् का जन्मादि कर्ता; (४) निर्दोष वेदोत्पन्न ज्ञान से ही जाना जानेवाला; (५) नारम् = फलम्; जीवों को उनके कर्मानुसार फल देनेवाला (ऐहिक सुखदुःखादि तथा पारलौकिक) (६) आलस्यरहित (७) नाशरहित (८) मुक्तों का आश्रयस्थान; (९) नारा = आपः = पानी है निवासस्थान जिसका वह; (१०) उदक का जनक; यह प्रभाव किस कारण है?

३- **वह माधव है!** मा = माया; मायापति, मायाप्रेरक, मायाधीश, लक्ष्मीपति वह है; (मा+धव) इसलिए उसका ऐसा प्रभाव है। कितना और किस कारण यह मालूम हुआ; परन्तु वह केवल शाब्दिक! कुछ ऐतिहासिक प्रमाण चाहिए, इसलिए कहते हैं;

४- **वह गोविन्द है-** गो+विन्द; गां=वेदं, धेनु, पृथ्वी, स्वर्ग विन्दति, जो मिला देता है (विद्‌ल लाभे) वह गोविन्द; दैत्योंने जिसका हरण किया, ऐसे वेद मत्स्यावतार लेकर फिरसे प्राप्त किए। समुद्रमंथन के समय कूर्मावतार लेकर, मंदर पर्वत को धारण करते हुए देवों को कामधेनु प्राप्त करा दी। हिरण्याक्ष का वराहावताररूप से वध करते हुए देवों को स्वर्ग प्राप्ति करा दी। देखिए, यद्यपि वह क्षीरसागर में ही रहता है, फिर भी क्या वह स्थानपरिच्छिन्न, स्थानबद्ध है?-

CC-0. In Public Domain. Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

नहीं, बिलकुल नहीं।

५- **विष्णु है वह;** संपूर्ण स्थावर- जंगमात्मक विश्व में वह है; उस में व्याप्त है। 'सः भूमिं विश्वतः बृत्वा अत्यतिष्ठत् दशांगुलम्'. (पु. सूक्त.) विष्लृ व्याप्तौ; वैकुंठाधिपति विष्णु कहते हैं, क्या वह अलग है? वैसा नहीं है। जो नारायण वही वैकुंठाधिपति विष्णुः उसीका ही दूसरा रूप। उस नारायण को अथवा विष्णु को अवतार लिए बिना शायद कुछ करने नहीं आता, ऐसा पिछले उदाहरणों से प्रतीत होता है। ऐसा न लगे तथा वह स्वयं दैत्यवध कर सकता है यह दिखाने के लिए अगला नाम है।

६- **मधुसूदन–** मधु तथा कैटभ ये दो दैत्य विष्णु ने स्वयं नष्ट किए। मधु दैत्य का संहार करनेवाला इसलिए मधुसूदन तथा कैटभ दैत्य का वध करनेवाला इसलिए कैटभारि ये विष्णु के नाम हैं। वह नरावतार नहीं लेता, ऐसा लग सकता है, इसलिए कुछ नरावतारसूचक नाम आगे दिए हैं। इसके अलावा यह भी दिखाना है कि दैत्य का पराभव, नाश करके देवों का पालन, देवकार्य, करने के लिए उसे शस्त्रास्त्रों की आवश्यकता होती ही है ऐसा नहीं, इसी के लिए अगले नाम हैं।

७- **त्रिविक्रम** बलि को जीतकर देवों को स्वर्गादि सुख मिला देने के लिए 'त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुः' विष्णु ने तीन कदम डाले; दो कदमों में ही पृथ्वी से ब्रह्मलोक तक सब को व्याप्त कर लिया तथा तीसरे कदम से बलि को पाताल में ढकेल दिया! (२) त्रैलोक्य में जिसका विक्रम चलता है ऐसा; (३) तीनों वेदों को भी जो अगोचर है; (४) विष्णु गरुड़वाहन होते हुए भी वह गरुड़ से अधिक शीघ्र गति से त्रैलोक्य में संचार कर सकता है। यह गजेन्द्रमोक्ष के निमित्त से बताया। बलि को जीतते समय जिस ने विक्रम कर के दिखाया, वह देह से प्रथम कितना छोटा है यह दिखाने के लिए अगला नाम दिया है।

८- **वामन–** सात वर्ष की आयु का ऋषिकुमार, अदितिपुत्र, यज्ञोपवीत संस्कार से युक्त वामन मूर्ति (बहुत छोटा), बटु; जिसके पास बटु का पलाश पेड का दण्ड तथा छोटासा कमंडल था! वह दण्ड भी इतना बड़ा हुआ कि पृथ्वी से ब्रह्मलोक तक पहुँच गया। उस वामनमूर्ति बटु ने ही बलि को पाताल में दबोचा, अपने एक कदम से

(१) वामन = सौन्दर्य देनेवाला; (२) वाम भाग में लक्ष्मी को धारण करनेवाला; (३) वेदादिक जिसका गान करते हैं ऐसा; श्रीमानजी! अदितिपुत्र वामन तो ब्रह्मचारी! उसके वामभाग में लक्ष्मी कैसे होगी? दृश्यरूप से न हो, फिर भी

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अदृश्यरूप में तो अवश्य थीं! मा = लक्ष्मी, माया, आदिशक्ति, उसके कारण ही तो यह विक्रम करना सम्भव हुआ। वह कार्यानुमेया है। श्रीदत्तप्रभु (दत्तात्रेय) संन्यासी रूप में थे और सगुण साकाररूप में लक्ष्मी भले ही न हो, फिर भी सगुण निराकाररूप में उसके (माया) हुए बिना, उसके युक्त हुए बिना परमात्मा को कोई भी कार्य करने नहीं आता, यह नहीं भूलना चाहिए। श्री ज्ञानेश्वरजी के 'अनुभवामृत' ग्रंथ के प्रथम अध्याय में 'शिवशक्तिसमावेश' अवश्य देखें। इसी के लिए आगे कहते हैं कि नारायण-विष्णु, वामन बनने पर भी वे–

९- **श्रीधर-** हैं ही; श्री-धर; लक्ष्मीधर; अथवा श्री-विभूति; 'संपद-विभूति-शोभासु-श्रीः' (व्याड़िकोष); विभूति याने अष्टमहासिद्धि; 'विभूतिर्भूतिरैश्वर्यं अणिमादिकमष्टधा' (इत्यमरे); अष्टमहासिद्धियों को धारण करनेवाला वह श्रीधर; अणिमा, गरिमा, लघिमा, महिमा आदि में से महिमा सिद्धि का उपयोग करने से ब्रह्माण्ड से भी अधिक महान बना जा सकता है। परमात्मा में, भगवंत में आठही महासिद्धियों का परिपूर्ण तथा सहज निवास होता है। त्रिपाद- भूमिदान न देने की गुरु श्री शुक्राचार्य की सलाह न मानते हुए वह संकल्प के लिए झारी में से पानी लेने लगा, तब शुक्राचार्य अणिमा सिद्धि के कारण उस झारी के छोटे छिद्र में जाकर बैठ गए ताकि पानी संकल्प के लिए बाहर न आए। बलि ने उस छिद्र में दर्भ का तिनका डालकर मार्ग खुला किया। यह सब बलि के द्वारा घटित हुआ, वह ईशिता तथा वशिता सिद्धियों ने करवाया। पौराणिक कथाओं से कुछ तात्त्विक सिद्धान्त सीख सकते हैं या नहीं, यह इससे समझ लें। कोई कहेंगे कि जीवों के पास में भी वे हो सकती हैं। अदितिपुत्र वामन जीव ही क्यों नहीं हो सकता? किसी भी जीव के पास ये सिद्धियाँ होती तो भी बलि तथा शुक्राचार्य के सामने उनकी एक न चलती! परन्तु प्रभु विष्णु-नारायणादि–

१०- **हृषीकेश हैं।** हृषीक = इन्द्रिय; उनका जो ईश वह हृषीकेश। सभी के मनरूप अंतरिंद्रिय और सभी ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों इनपर उसकी सत्ता केवल इच्छामात्र से प्रस्थापित होती है तथा जीव कितना भी समर्थ हो फिर भी भगवंत की इच्छाशक्ति, ईशनशक्ति के वह सहज वश में हो जाता है। भगवान् अपने इन्द्रियों के भी ईश होने से उनके ऊपर उनकी इच्छा के विरुद्ध किसी की ईशितासिद्धि का प्रभाव होना सम्भव नहीं है। इतनाही नहीं बल्कि मन में संकल्प करते ही उसके अनुसार निर्मिति करनेवाली जो कामातिशापितासिद्धि वह जीवों के लिए दुष्प्राप्य ही है। उसके उपयोग का एक उदाहरण अगले नाम से सूचित किया है।

११- **पद्मनाभ-** जिसकी नाभि से पद्म- कमल उत्पन्न हुआ (तथा उस में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आगे चलकर ब्रह्मदेव की उत्पत्ति हुई।) वह पद्मनाभ = नारायण उस ब्रह्मदेव ने इसी सिद्धि से केवल संकल्प से आगे चलकर सारी सृष्टि निर्माण की। 'धाता यथापूर्वम् अकल्पयत्' (ऋग्वेद) जन्म लेने पर उस ब्रह्मदेव को पद्मनाभ नारायण आँखें होते हुए भी दिखाई नहीं दिए। (तच्चेज्जलस्थं'- यह भाग- १०।१४ का श्लोक देखें) इसलिए वह उस कमल-नाल से अन्दर घुसकर खोज करने लगा कि उसका जनक कौन है? सौ वर्ष ढूँढने पर भी उसे पता नहीं चला! ऐसा यह पद्मनाभ नारायण है, फिर भी भक्तों को वश हो जाता है, यह अगले नाम से दिखाया है।

१२- **दामोदर–** (दाम+उदर) जिसके पेट को दाम = रस्सी बाँध दी हो वह; बालकृष्ण के पेट को, कमर में यशोदा ने गाय को बाँधने की रस्सी बाँधी तथा वह पत्थर की ऊखली से बाँध दी। जो बड़े बड़े योगियों को समाधि में भी नहीं मिलता, शंकर को जिसका अंत मालूम नहीं होता, उस श्रीधर को एक ग्वाले की स्त्री ने रस्सी से बाँध रक्खा। परन्तु वह कितना नटखट है! वह बाँधा गया, बिलकुल शिशु था फिर भी उसके त्रैलोक्य के विजय-विक्रम में कोई कमी नहीं होती है; यह अगले नाम से सूचित किया है। (अ) राम, भरत, शत्रुघ्न तथा लक्ष्मण चतुर्व्यूह प्रणवात्मक हैं। 'अर्धमात्रात्मक राम प्रत्यगात्मा (ब्रह्म) मकरात्मक भरत प्राज्ञ, उकारात्मक शत्रुघ्न तैजस, तथा अकारात्मक लक्ष्मण विश्व; तुर्या, सुषुप्ति, स्वप्न तथा जाग्रत स्थितियोंके क्रमशः स्वामी हैं। (रामोत्तर ता. उ.); इसी प्रकार वासुदेव, अर्धमात्रात्मक प्रत्यगात्मा; अनिरुद्ध मकारात्मक प्राज्ञ; प्रद्युम्न उकारात्मक तैजस तथा संकर्षण अकारात्मक विश्व। तुर्या, सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रत् स्थितियोंके स्वामी हैं। (गोपालोत्तर तापिनी.) वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न तथा संकर्षण चतुर्व्यूह प्रणवात्मक हैं। तात्त्विक दृष्टि से शत्रुघ्न, लक्ष्मण, ऐसा क्रम होगा, फिर भी जन्म से लक्ष्मण शत्रुघ्न का बड़ा भाई इसलिए उसका निर्देश पहले किया जाता है। उसी प्रकार रोहिणीतनय संकर्षण बलराम वासुदेव-कृष्ण के दादा (बडे भाई); इसलिए उनका निर्देश प्रथम किया है। इसके अलावा उस दामोदर ने, बालरूप होते हुए कैसा अद्भुत पराक्रम प्रकट किया यह भी दिखाने के लिए अगला नाम संकर्षण है।

१३- **संकर्षण–** सम्यक्, कर्षति पापानि, दुःखानि इति संकर्षणः। उस दामोदर बालक ने वह पाषाण की उखली खींच ली, परन्तु वह जुड़वा अर्जुनवृक्षों में से बाहर नहीं निकल रही थी, फँस गई, तब दामोदर ने उसका सम्यक कर्षण किया तथा वे जुडवा दो विशाल वृक्ष उखड़ कर नीचे टूट पड़े। उसकी उस ध्वनि

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

से यशोदा घबरा गई तथा वह दृश्य देखकर चिंतातुर हुई। वे वृक्ष समूल नीचे गिरते ही उनमें से दो दिव्य पुरुष, नारद के शाप से मुक्त होकर बाहर निकले; वे नल तथा कूबर थे। नल-कूबर के पापों का तथा वृक्षयोनि के दुःखों का कर्षण किया या नहीं? इस प्रकार जो दामोदर वही संकर्षण बन गया; परन्तु यह दामोदर-संकर्षण यशोदातनय गिना न जाए इसलिए जनक संबंधसूचक नाम आगे दिया है;

१४- **वासुदेव–** (१) वसुदेव का सुत- पुत्र = वासुदेव; 'वसुदेवसुतं देवं' (२) सभी भूतों का निवास जिस देव में है वह वासुदेव; वासुश्च असौ देवश्च, वसन्ति भूतानि अस्मिन इति वासुः (३) व+असु+देव = वासुदेव-बलरूप, प्राणरूप तथा सब प्रकार की क्रीड़ा-लीलादिगुणयुक्त ऐसा; यह प्रभाव ध्यान में न आने से ब्रह्मादि देवों ने भी अपनी माया से उसे मोहित करने का प्रयत्न किया, परन्तु वह प्रयत्न उनके लिए ही घातक हुआ, क्योंकि वह है–

१५- **प्रद्युम्न–** (१) सर्व विश्व का प्रकाशक (२) स्वयंज्योतिस्वरूप; द्युम्न तेज, प्रकाश दीप्ति; (३) जिसके पास विपुल द्युम्न धन, संपत्ति है ऐसा; (४) विपुल संपत्ति देनेवाला, 'द्युम्नं चित्र-श्रवस्तमम्' ऐसा मित्र के सम्बन्ध में-सूर्य के संबंध में भी कहा है। 'मित्रस्य चर्षणीघृत॰' इस मंत्र का अर्थ देखिए। उसने अपने प्रकृष्ट प्रकाश से, द्युम्न से (प्रद्युम्न) ब्रह्मादि को मोहित करने पर वे जब शरण आए, तब उन्होंने जो माँगा, वह उन्हें दिया। तब फिर उस वासुदेव को वश में रखनेपर सुख, संपत्ति, ऐश्वर्य आदि जो चाहे वह मिल सकता हो। बिलकुल नहीं; वह यथासंभव किसी के वश में नहीं रहता, यह अब अगले नाम से सूचित कर रहे हैं;

१६- **अनिरुद्ध–** (१) (अ-निरुद्ध) जिसपर कोई सत्ता स्थापित नहीं कर सकता; कोई उसे अपने बन्धनमें नहीं रख सकता; देवकी का आठवाँ पुत्र मार जा सके, इसलिए कंस ने वसुदेव-देवकी को बन्दीगृह में डाला था, कड़ा पहरा था, फिर भी वासुदेव 'अ-निरुद्ध' है, यह उसने अपने जन्म से ही सिद्ध किया। भीषण अंधेरी रात में वसुदेव उस नवजात शिशु को सुरक्षित गोकुल में ले जा सके। वह प्रद्युम्न होने से वसुदेव के मार्ग में पर्याप्त प्रकाश फैलाते रहे। वासुदेव- ऐसा अ-निरुद्ध होने पर भी वह (२) अनि-रुद्ध भी है। (अनिभिः रुद्धः) अनि = सेवक, दास; भक्त; उसको वश में करते हैं तथा अपने हृदय में रुद्ध कर के बन्द करके रखते हैं, अर्थात् उसमें कुछ पुरुषार्थ न होगा! नहीं, भाई! वह तो ऐसा अद्वितीय पुरुषार्थी है कि–

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

१७- पुरुषोत्तम ऐसा उसे कहते हैं। वह क्षरपुरुष से तथा अक्षर पुरुष से परमश्रेष्ठ है, इसलिए उसे पुरुषोत्तम (पुरुष + उत्तम) कहते हैं।

यस्मात् क्षरं अतीतोऽहं अक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। (भ.गी.)

ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्यरूपी षड्गुणैश्वर्य = भग; उसमें परिपूर्ण रूप से हैं। देखिए, वह कुछ ऋषियों में भी था; उदा.– 'भगवान् बादरायण' ऐसा कहा है। परन्तु वह परिपूर्ण नहीं होता है। इसके अलावा–

'उत्पत्तिं प्रलयं चैव भूतानां अगतिं गतिं।
वेत्ति विद्यां अविद्यां च स वाच्यः भगवान् इति।।'

यह छः प्रकार का ऐश्वर्य केवल परमेश्वर के पास ही होता है; वही वासुदेव, नारायणादि के पास और बालकृष्ण के पास भी है। इसीलिए ही उसे पुरुषोत्तम कहते हैं। (३) पुरुषु-जीवेषु-व्यापकत्वात् पुरुषः; व्यापकत्व से जीवों में रहनेवाला वह पुरुष और उसमें उत्तम इसलिए पुरुषोत्तम! वह यदि सभी जीवों में आत्मरूप है तब जीव दुःखी क्यों है? इसका उत्तर अगले नाम से सूचित किया है।

१८- **अधोक्षज–** वह मन तथा इन्द्रियों से अनुभव में नहीं आता है। इन्द्रियों के लिए अगम्य है। इसका अनुभव लिए बिना जीव दुःखरहित-सुखी नहीं हो सकता। अधःकृतानि अक्षजानि येन स अधोक्षजः अक्ष = इन्द्रिय; घर में द्रव्य के घट गाड़कर रखे हों, फिर भी वह द्रव्य जबतक हाथ में नहीं आता तबतक वहाँ रहनेवाले भिखारी को भीख-भूखमरी से मुक्ति नहीं मिलती है; उसी प्रकार वासुदेव, पुरुषोत्तम जल, स्थल, काष्ठ, पाषाण आदि में सर्वत्र व्याप्त होनेपर भी वह दिखाई नहीं देता; इसलिए जीव दुःखी रहता है। क्या वह किसी को भी दिखाई नहीं देता है? तथा वह पाषाण में भी है इसके लिए क्या प्रमाण है? इसका उत्तर देने के लिए अगला नाम है।

१९- **नरसिंह** (नारसिंह) (१) प्रल्हाद के लिए भगवान नरसिंहरूप में पाषाण के खम्भे को भंग करके उस में से प्रकट हुआ। हिरण्यकश्यपु आदि दैत्यों को भी दिखाई दिया। नर होते हुए सिंह भी है इसलिए नरसिंह (नारसिंह) (२) अन्य किसी के द्वारा जिसका नाश-हिंसा करना सम्भव नहीं थी ऐसा नर = हिरण्यकश्यपु; उसका नाश करनेवाला वह नरसिंह, नारसिंह। वर माँगते समय हिरण्यकश्यपु ने जितनी शर्तें रखी थीं, उतनी सभी पूर्ण करना नरसिंह के लिए सम्भव था। जो पुरुषोत्तम उसका ऐसा विचित्र प्राणी होना याने उसकी श्रेष्ठता की हानि हुई; वह पुरुषोत्तमपद से च्युत हुआ, ऐसा क्या सिद्ध नहीं हुआ? नहीं; कारण अगले नाम

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

में बताया है।

२०- **अच्युत–** अ+च्युत; अपना प्रभाव, सामर्थ्य, सद्गुण, स्वभाव आदि से वह कभी च्युत नहीं होता। करोड़पति ने नाटक में भिखारी का अभिनय किया तथा भिक्षापात्र लेकर भीख माँगी और उत्तम अभिनय किया, तब क्या उसी के कारण उसकी अमीरी नष्ट हो जाती है? उसको जाननेवाले तारीफ करेंगे, तालियाँ पीटेंगे! वैसा ही यह है। वह ऐसा अभिनय, विचित्र, भयानक रूप क्यों धारण करता है? इसका उत्तर अगले नाम में है।

२१- **जनार्दन-** (१) अपने भक्तों की जन्म-मृत्यु परंपरा का, दुःखों का विनाश करनेवाला; (२) उसके लिए जनों का- विशिष्ट दैत्यों का अर्दन-संहार करनेवाला; (३) जनैः अर्द्यते, (अर्द = याचना) ब्रह्मादि सभी देवभी जिसकी प्रार्थना, जिसके सामने याचना करते हैं, ऐसा वह है; इस समय नृसिंह की सभी देवों के द्वारा की हुई स्तुति-प्रार्थना श्रीमद्भागवत में अथवा बृहत्स्तोत्र रत्नाकर में देखें। भक्तों का उद्धार, भक्तों का– साधुओं का परित्राण, ब्रह्मदेव की वाणी को सत्य सिद्ध करना तथा इंद्रादि देवों का दुःख निवारण करते हुए भक्तिपरिपोषक चरित्र निर्माण करना आदि के लिए परिस्थिति के अनुसार जो चाहिए वह रूप लेता है; इतना ही नहीं बल्कि वह पुरुषोत्तम होकर भी इन्द्र का छोटा भाई भी होता है; वह बलराम का अनुज इसीलिए हुआ!

२२- **उपेन्द्र–** (१) इन्द्र का छोटा भाई; तथापि (२) 'उपोधिके' इस सूत्र के अनुसार वह इन्द्र से सब प्रकार से अधिक श्रेष्ठ ही होता है; यह उसे कैसे सम्भव होता है इसका उत्तर अगले नाम में मिलता है।

२३- **हरि-** (१) भक्तों के पाप-ताप हरण करनेवाला; (२) भक्त-शत्रु के, धर्मविध्वंसकों के, दैत्यों के मस्तक हरण करनेवाला; (३) भक्तों के चित्त हरण करनेवाला; (४) उनका विरोध करनेवालों के सभी प्रयास विफल करनेवाला, प्रयास हरण करनेवाला; ऐसा उसका सहज प्रभाव है। उसके मूल स्वरूप का लक्षण तो बताइए! वही अगले नाम में कहा है।

२४- **श्रीकृष्ण–** सत्ता-त्रिकालाबाधित सत्ता तथा आनन्द उसका स्वरूपलक्षण है। (कृष+ण) 'कृषिर्भूवाचकः शब्दः णश्च निवृत्तिवाचकः' भू- सन्तायाम्, निर्वृतिः आनन्द। सत्ता = सत्+आनन्द जहाँ है, वहाँ चित् (ज्ञान+प्रकाश) है ही; श्री = विभूति, उससे युक्त वह श्रीकृष्ण; वह संपूर्ण विश्व का नियमन-कर्षण करता है, इसलिए भी उसे कृष्ण कहते है। (कूर्म. पु.) कृष्ण = सच्चिदानंदघन परंब्रह्म; श्रीकृष्ण = आदिशक्तियुक्त सच्चिदानन्दघन परंब्रह्म।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

उपर्युक्त वर्णन से पता चलेगा कि श्रीमद्भागवतादि वैष्णव पुराणों का सार-सर्वस्व इन चौबीस नामों में उनके वर्तमान क्रम से सूचित किए हैं। वैष्णवावतार का ही वर्णन करना होता तो यह क्रम गलत होता; क्योंकि 'मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा। रामो रामश्च रामश्च कृष्णः कल्कीति ते दश।। (पद्म पु.) मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, भार्गवराम (परशुराम), राघव, राम, (रामचंद्र) यादवराम (बलराम), कृष्ण और आगे होनेवाला कल्कि ऐसा दशावतारों का क्रम युगानुसार है। यहाँ मत्स्य, कूर्म, वराह, सूचित किए हैं; बाद में वामन, बलराम, नरसिंह तथा कृष्ण ऐसा क्रम है। गोविंद, दामोदर, वासुदेव ये कृष्णावतार की नामावली है; परन्तु वे भी चरित्रक्रम के अनुसार नहीं है। वासुदेव, दामोदर, गोविंद ऐसा चरित्रक्रम है। श्रीकृष्ण यह नाम अन्त में देकर सूचित किया है कि केशवादि सभी सच्चिदानन्दघनस्वरूप ही है।

रामोपासक कहेंगे कि 'राम' यह नाम इस में क्यों नहीं? 'दामोदर' के वर्णन से पहले ही यह साधार दिखाया है कि जो राम, भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मणरूप चतुर्व्यूह है वही तत्त्वतः वासुदेव, अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, संकर्षणरूप चतुर्व्यूह है। अतः इसमें राम, भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण इन चारों का भी वर्णन है ही; कृष्ण = सच्चिदानन्दघन परंब्रह्म; उसी प्रकार राम = सच्चिदानंदघन परंब्रह्म है।

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनाऽसौ परं ब्रह्माऽभिधीयते।।

(रामपूर्वतापिनी १/६)

इस में नित्य तथा अनंत शब्दों से त्रिकालाबाधित भेद-परिच्छेद से अतीत 'सत्' का बोध होता है। आनंदरूपत्व तथा चिद्रूपत्व स्पष्ट ही बताया है।

सूचना– चौबीस नामों का अर्थ दो ऋग्वेदी सन्ध्याभाष्य में मिला। उन में दी हुई सभी व्युत्पत्ति यहाँ विस्तारभय से नहीं ली है। कुछ अर्थ अमर व्याख्यासुधा ग्रंथ में प्राप्त हुए। उपर्युक्त चौबीस नामों का परस्परसंबंध पहले कहीं नहीं दिखाई दिया और कहीं नहीं सुना। पहले नामों का केवल अर्थ देने का विचार था; तब वह रचना लिखते समय एक B.A., LL.B. वकील गृहस्थ बोले कि ये नाम विशिष्ट क्रम से ही क्यों हैं? बस इतना निमित्त हुआ! वह बात अधूरी ही छोड़ दी गई और हृदय में निर्मित एक प्रबल स्फूर्ति का प्रवाह बाहर फूटकर उत्तर देने लगा और यह विवेचन हाथ से लिखा गया। वह बात योग्य है या अयोग्य यह निश्चित करना; पंडित-विद्वानों का काम है।

ध्यान में रखिए, यह ग्रंथ लिखते समय ऐसा कई बार हुआ कि मन में

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

आशंका निर्माण होते ही, उसका समाधान तुरन्त मिलता गया; इसलिए इस ग्रंथ में जो कुछ अच्छा, प्रशंसनीय होगा या दिखाई देगा वह उस स्फूर्तिदायक अन्तर्यामी श्रीरघुनाथजी का ही मानिए। 'मनुष्याः स्खलनशीलाः' कम से कम यह लेखक तो भी अपवाद नहीं है।

सच यह है कि पूर्वभाग की समाप्ति यही पर होना उचित था, परन्तु कुछ व्यक्तियों की सूचनानुसार पूजारहस्य तथा वैश्वदेव के सम्बन्ध में थोड़ी साधारण जानकारी दो अध्याय के रूप में आगे दी जा रही है।

'यो रामः कृष्णतामेत्य सार्वात्म्यं प्राप्य लीलया।
अतोषयद् देवमौनिपटलं तं नतोऽस्म्यहम्।।

(श्रीकृष्णोपनिषत्)

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय : ३७

पूजा का रहस्य

यथा देहे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।।

पूजा यह मनुष्यमात्र का एक आवश्यक नित्यकर्म है। पूजा यह वैश्वदेव की तरह कुटुंबचालक गृहस्थ का ही कर्म नहीं है।

प्रत्येक धर्म में किसी न किसी रूप में पूजा यह कर्म अवश्य है। केवल प्रणाम करना, यह भी पूजा का ही एक प्रकार है। 'पूजा-नमस्याऽपचितिः- सपर्याऽर्चाऽर्हणाः समाः । (अमरे) किसी का आदर-सत्कार करना, मान-सन्मान यह भी एक पूजा का ही प्रकार है।

सनातन वैदिक धर्म में तो अनेक देव-देवता पूज्य-पूजनीय के रूप में वर्णित हैं। यह अनेक देवतावाद कुछ लोग नहीं चाहते। कुछ लोग उसे निंदनीय मानते हैं; इसका कारण अनेक देवतापूजन में निहित हेतु तथा रहस्य उनकी समझ में नहीं आता। शेर, बाघ, बैल, गधा जैसे पशु, कोकिल, कौआ, गरुड़ जैसे पक्षी, साँप जैसे दुष्ट विषैले, चूहे जैसे चोर, मोर जैसे साँप खानेवाले, इनकी भी पूजा करना कर्तव्य बताया है। इतना ही नहीं बल्कि, पीपल, गूलर आदि अनेक वृक्षों की भी पूजा बताई है। इसका हेतु यही है कि कोई कितना भी जंगली, विषैला, चोर, कटु आवाज का प्राणी क्यों न हो; अथवा स्थावर वृक्ष हो फिर भी उन सब में एक ही परमात्मा है तथा वह परमपूज्य है, इसका स्मरण बार-बार होना चाहिए। पाषाण, धातु, मृत्तिका, बालू, पानी, अग्नि आदि सबमें वह है, इसका विस्मरण मनुष्य को नहीं होना चाहिए। और गुण दोषों की ओर न देखते हुए पूज्यभाव उत्पन्न होने का अभ्यास सहजरूप से हो, इसलिए सभी को पूज्य घोषित किया गया है। इस प्रकार के पूजन से 'जे जे दिसे भूत, ते ते मानिजे भगवंत' अर्थात जो जो भी भूत दिखाई दें, वह भगवंत मान लें।' ऐसा भाव दृढ़ होता गया, तो पूजा का असली लाभ प्राप्त हुआ! पूजा का यह मूल हेतु वर्तमान में करीब भुला दिया गया है। तथा विशिष्ट दिन पर विशिष्ट जीव

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

या वस्तु की पूजा करनी चाहिए ऐसा शास्त्र ने कहा है, तथा कुल में परम्परा से उसका पालन हो रहा है, इसलिए पूजा की जाती है और एक तरह से केवल खाना-पूर्ति की जाती है।

कुछ पीढ़ियों पूर्व परिवार का प्रत्येक पुरुष शालिग्राम, राममूर्ति, कृष्णमूर्ति आदि किसी की पूजा स्वयं करता था। लड़की के विवाह के अवसर पर उसके साथ देवी या बालकृष्ण मूर्ति देने की परम्परा आज भी चालू है। इसमें हेतु यही था कि वह मूर्ति की पूजा स्वयं रोज करें; परन्तु अब ऐसी स्थिति है कि अनेक घरों में देव एक ही जाति के कई शालिग्राम, कई नर्मदा के गणपति, अनेक देवियाँ तथा अनेक बालकृष्ण होते हैं! विवाह होकर घर में आनेवाली प्रत्येक महिला के साथ १।१ देवी-बालकृष्ण बढ़ते जाते हैं! पूजा भी बहुधा किसी छोटे बालक के गले में मढ़ दी जाती है! आदि अनास्था जितनी बताएँ उतनी कम ही है!

रामपूर्वतापिनी उपनिषद में कहा है कि परमात्मा राम 'ऐश्वर्यं स्वस्य पूजनात् ददाति-' (रा. ति.) देवपूजा से ऐश्वर्यप्राप्ति होती है। केवल राम ही नहीं कोई भी देव, कोई भी देवी वही फल देती है। वर्तमान काल में धनधान्य वस्त्रालंकार आदि ऐश्वर्य की लालसा बढ़ गई है; परन्तु देवपूजा की इच्छा समाप्त हो रही है। जो कोई थोड़े स्त्री-पुरुष पूजा करते हैं (नित्य, नैमित्तिक, काम्य) वे भी पूजा के मूल रहस्य की अनदेखी करते हैं, इसलिए देवादिकों की पूजा में निहित प्रमुख सूत्र-रहस्य का यहाँ थोड़ा विस्तार किया जा रहा है। वह रहस्य यह है कि अपने देह के सम्बन्ध में जैसा भाव होता है, वैसा भाव पूजा करते समय देवादि के सम्बन्ध में होना चाहिए। (श्लोक प्रारम्भ में दिया है।) पूजा में जिसका जैसा भाव होगा वैसा फल उस पूजक व्यक्ति को मिलता है।

शालिग्राम, बाण आदि देव तथा देवी, बालकृष्ण आदि सावयव मूर्ति, पाषाणमय, धातुमय, जड़, चैतन्यरहित है, ऐसा ही भाव बहुधा सभी पुजारियों का होता है और तदनुसार ही पूजा की जाती है। लाखों व्यक्तियों में १।२ अपवाद मिल जाए तो भाग्य समझना चाहिए। कुछ उदाहरण देनेपर यह कहना स्वीकार किया जा सकेगा।

पूजा का देव हाथ से नीचे थाली (तामड़ी) में, जमीनपर, गिर पड़े तो पूजक के शरीर पर रोमांच उठ खड़े नहीं होते, तब फिर आँसू बहना तो दूर की बात है। अथवा हृदय में कोई धड़कन निर्माण नहीं होती! १०।१२ दिन का कोई शिशु अचानक हाथ से नीचे गिर पड़े तो क्या वही स्थिति रहेगी? देव सचेतन है, मैं क्या कर रहा हूँ, वह उसे दिखाई देता है, वह सर्वज्ञ है, उसके भी ज्ञानेन्द्रिया हैं; मैं कर रहा हूँ वह प्रार्थना यह देव कानों से सुन रहा है। मेरे अर्पित किए सुगंधी फूलों की महक उसे

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

भी आ रही है, आदि भाव पूजा के अवसर पर जागृत रखकर पूजा कर के देखिए, तब पूजा का प्रभाव अनुभव में आ सकेगा। परमेश्वर राम, कृष्ण, शिव सर्वज्ञ है, वह सर्वत्र भरा हुआ है, उसे सब दिखाई दे रहा है आदि किताबों में रटा हुआ या प्रवचन-कीर्तन में सुना हुआ, पूजा के समय याद रखनेवाले कितने हैं?

मिट्टी से भरी हुई, सूखी, सड़ी-गली पत्तियाँ, फूल, तुलसी, बेल पत्ती आदि देवों को अर्पण करते समय हम थोड़े भी नहीं हिचकिचाते, मन को कोई धक्का नहीं लगता! पूजनीय को तख्ते पर बैठाकर पूजक यदि स्वयं उँची चौकी पर विराजित होकर उसकी पूजा करें तो वह उसका अपमान होगा या पूजा होगी? देवों को नीचे ताम्र-पत्र में रखे और स्वयं चौकीपर (पाट पर) बैठे, क्या यह वैसा ही नहीं है। सदाफुली के फूल कोई सुगंधी लेने के लिए हाथ में नहीं लेगा, महिलाएँ उसको बालों में धारण नहीं करेंगी, परन्तु देवपूजा के लिए वे चल जाते हैं! ऐसे समय में भगवद्गीता श्लोक 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं' तुरन्त वे सुना देंगे। परन्तु इस श्लोक में वर्णित उच्च कोटि की भक्ति करोड़ों में किसी एक के पास होती है, ऐसा श्रुत्यादि का कहना है। यह केवल एक उदाहरण दिया है।

'मयाऽऽहृतानि पुष्पाणि पूजार्थं प्रतिगृह्यताम्' 'मेरे निकाल कर लाए हुए फूल पूजा के रूप में स्वीकार करें' ऐसा पूजा करते समय कहते हैं; परन्तु कई बार 'मया हृतानि' फूल अवश्य होते हैं; अर्थात चोरी से लाए फूल होते हैं। अथवा खरीदे हुए होते हैं अथवा अन्य किसी के द्वारा लाए होते हैं। अर्थात् पूजा में भी असत्य भाषण करते हैं। ऐसा कई बार पूजा में करते हैं। कहते हैं, 'अक्षतान् समर्पयामि' परन्तु अर्पण करते हैं 'क्षतान् तण्डुलान्।' मिट्टी से सने तुलसीपत्र कोई खाने के लिए दें, तो हमारी आँखों से अंगार बरसने लगते हैं। परन्तु भगवान् को अर्पण करने के लिए कैसे भी तुलसीपत्र चल जाते हैं। स्नान के लिए उबलता पानी रखने पर हमारी अवस्था किस प्रकार होती हैं? परन्तु भगवान् को अभ्यंगस्नान कराते समय भाप निकलता उबलता पानी भी चल जाता है।

'यथा देहे तथा देवे' याने कैसे और क्या चाहिए, इसका मर्म उपर्युक्त उदाहरणों से ध्यान में रखकर पूजा करेंगे तथा स्वयं लगाए तुलसी के पौधे से एक ही शुद्ध पत्र अर्पित करेंगे, तो जो लाभ होगा उसका सहस्रांश लाभ भी वैसा भाव न रखते किए गए बहुत खर्च करके की गई पूजा से नहीं होगा।

अपने को प्रिय लंगनेवाला पात्र, वस्त्र, पेय, पानी मिलने पर सन्तोष होता है, प्रसन्नता का अनुभव होता है। गंदा, अस्वच्छ, बासी, अरुचिकर अन्नादि खाने-पीने का अवसर आए तो अप्रसन्नता, दुःख, क्रोध उत्पन्न होता है। इसलिए जिन देव-

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

देवताओं को जो पत्र-पुष्प, फल, धूप, नैवेद्य आदि प्रिय होगा, वही उन्हें अर्पण करना चाहिए। उन्हें अप्रिय, निषिद्ध, अपवित्र वस्तु अर्पण करना याने उनका अपमान करना है। पदार्थ थोड़ा या बहुत इसका सवाल नहीं है।

किसी महाराजा के दरबार में अथवा कोर्ट में, महाराजा के या न्यायाधीश के सामने कोई पैर फैलाकर बैठे या सोए या लेटकर बीड़ी-सिगरेट पीए, महाराजा को पीठ दिखाकर वापस लौटे, पीठ दिखाकर प्रणाम करें, तो राजा का, न्यायाधीश (कोर्ट) का तिरस्कार (कंटेम्प्ट) करने का अपराध होता है, तथा उसके लिए सजा भी दी जाती है। तब ऐसी बातें मंदिर में, भगवान् के सामने, देवघर में, गर्भगृह में करना कैसा सुखदायक होगा? गर्भगृह में अपने चारों ओर प्रदक्षिणा करना तथा गर्भगृह के बाहर आते समय भगवान् की ओर पीठ कर के बाहर निकलना शास्त्रों ने तथा सन्तों ने निषिद्ध निश्चित किया है, उस का मर्म अब ध्यान में आ जाएगा।

आकाश के रंग की ऊनी धोती आचारपालन में, खाने-पीने में, पहननेवाले स्त्री-पुरुष दोनों पूजा के सम्बन्ध में बिलकुल सद्भावनाशून्य होते हैं। अर्थात् उन में से अधिकांश व्यक्तियों को असत्य, परनिन्दा, परदोष-चर्चा, अन्यायार्जित धन अछूत नहीं लगता। आचार पालन के सम्बन्ध में इसके पहले लिखा जा चुका है।

महिलाएँ, लडकियाँ मंगला-गौरी के पूजन में गौरी को फूलों से ढँक देती हैं। फूल अधिक चाहिए इसलिए दूसरे के अधिकार में होनेवाले बगीचे में से सुबह चोरी-छिपे फूल ले आते हैं। और रात्रि में उस देवता के सामने अश्लील, अभद्र, गँवार गाने गाए जाते हैं और उधम मचाया जाता है। इस से वह मंगला गौर- मंगल, कल्याण करनेवाली गौरी देवी प्रसन्न होकर, चिरसौभाग्य, धनधान्य, पुत्र-पौत्र, आरोग्य की अभिवृद्धि-समृद्धि क्या प्रदान करेगी? मंगलागौरी, वटवृक्ष, हरितालिका की पूजा किसलिए की जाती है यही कई व्यक्तियों को मालूम नहीं होता। व्रत के रूप में वह नहीं किया जाता। केवल एक परम्परा और उत्साह के कारण समारोह होता है।

उपर्युक्त कतिपय उदाहरणों से पूजा का रहस्य ध्यान में आ जाएगा, इसलिए अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं है।

पूजा के देवों के सम्बन्ध में जब तक चैतन्य भाव पूजा करते समय जागृत नहीं रहता, तब तक भगवान् कहते हैं, 'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तान् तथैवं भजाम्यहम्।' मैं चेतन हूँ ऐसा यदि तुम्हें प्रतीत नहीं होता, तो तुम्हारी प्रार्थना मुझे कैसे सुनाई देगी? तुम्हारा दारिद्र्य दुःख मुझे कैसे दिखाई देगा? तथा मैं अचेतन तुम्हारी कामना कैसे पूरी कर सकूँगा? 'भावेन् देवम्'

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

'जयापासी जैसा भाव, तयालागी तैसा देव।।
भाव असेल माइक, देव होतो महाठक।।'

अर्थात जिसके पास जैसा भाव होगा, उसके लिए वैसा देव हो जाता है। यदि भाव धोखे का होगा, तो देव भी उनके लिए महा-धोखेबाज बन जाता है।

आदि सन्तवचन भी यही कहते हैं। देव सचेतन, सेन्द्रिय हैं इस भाव से पूजा करने पर कैसी अद्भुत घटनाएँ (चमत्कार) होती हैं इसके बीसवीं सदी के कई उदाहरण हैं, परन्तु विस्तारभय से नहीं दिए जा सकते।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

अध्याय- ३८

वैश्वदेव के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी

यज्ञाशिष्टाशिनः सन्तः मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

(भ. गी. ३।१३)

गृहस्थ द्विजों को प्रतिदिन नित्यनियम से पंचमहायज्ञ अवश्य करने चाहिए। ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ तथा मनुष्ययज्ञ– ये पाँच मिलकर पंच महायज्ञ होते हैं। ब्रह्मयज्ञ याने वेदमंत्रों का श्रुतिप्रोक्त जाप, यह एक और वैश्वदेव तथा बलिहरण आदि में शेष चार हैं। ये पंचमहायज्ञ करते हुए जो भोजन करते हैं, वे पंचसूता (पाँच हिंसा) पाप-दोष से मुक्त हो जाते हैं। और जो नहीं करते, याने केवल उदर-भरण के लिए ही भोजन बनाकर वह भक्षण करते हैं, वे पापी हैं, तथा वे पाप ही भक्षण करते हैं। ऐसा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में तीसरे अध्याय में कहा है। परन्तु गीता का रोज पठन करनेवाले भी कई लोग पंचमहायज्ञ अथवा वैश्वदेव भी नहीं करते हैं। वैश्वदेव का उपयोग क्या है यह आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर परख कर सिद्ध किया हुआ देखना हो तो कल्याण मासिक के १२ वें वर्ष के १२ वें अंक में 'राजयक्ष्मा (क्षयरोग या तपेदिक) और हवन-यज्ञ' शीर्षक का डॉ. कुंदनलाल का निबन्ध अवश्य देखें। M.D. आदि कई पश्चिमी उपाधियाँ उनके नाम के आगे लिखी हैं।

वैश्वदेव करनेवालों को कई आशंकाएँ होती हैं। उसके संबंध सभी महत्त्वपूर्ण आशंकाओं का समाधान होगा, ऐसी उपयुक्त जानकारी देवी-भागवत (११।१२, ४।११) में प्राप्त हुई। उसके आधार पर निम्नलिखित वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है। (कोष्ठक में लिखा लेखक का मत है।)

साधारण नियम- भट्टी में, चूल्हे में, लोहे के पात्र में, मिट्टी के पात्र में अथवा केवल जमीन पर (पात्र के बिना) वैश्वदेव नहीं करना चाहिए। (यहाँ वैश्वदेव = देवयज्ञ;) कुण्ड में या मिट्टी के स्थंडिल पर वैश्वदेव करें। अग्नि को फुकनी से फूँककर प्रज्वलित करना चाहिए। 'मुखात् अग्निः' ऐसी श्रुति है। वस्त्र से हवा करने पर व्याधि, सूप से धननाश, हाथ से मृत्यु (मृत्यु जैसी आपत्ति) ऐसे फल मिलते हैं। मुँह से फूँकने

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

पर कर्मसिद्धी होती है। (फुकनी का मुँह जितना छोटा होगा उतना अधिक लाभदायक; इससे प्राणायाम से मिलनेवाले लाभ सहजरूप से प्राप्त होते हैं।)

भात (चरू) घी न होने पर क्या करें? फल, दही, घी, कंदमूल, उचित शाक (भाजी) आदि से वैश्वदेव करें। यह भी सम्भव न होने पर समिधा, तृण (घास) आदि से करें। हवन करने के पदार्थों को क्षार (नमक या अन्य खारा पदार्थ) तथा तेल इनका स्पर्श भी नहीं होना चाहिए। हवन के पदार्थों को चारों ओर से घी लगाकर हवन करना चाहिए। यह नहीं होगा तो दही, दूध लगाए। यह भी न होनेपर पानी लगाकर हवन करें। कोई भी पदार्थ सूखा, रसहीन, सड़ा हुआ, शुष्क नहीं होना चाहिए। शुष्क द्रव्य से अथवा बासे पदार्थ से हवन करने पर कुष्ठरोग (कोढ़) होता है। नमक या_तेल लगाने से द्रव्य का नाश होता है, नरक में जाना पड़ता है। (डालड़ा आदि तेल का ही एक प्रकार है;)

राखसहित अग्नि चूल्हे की उत्तर दिशा की ओर से लेकर उस अग्नि में समंत्रक सविधि हवन करें।

पाँच उंगलियों की सूकरी मुद्रा से ज्वाला में आहुति दें। ज्वाला न होने पर आहुति देना व्यर्थ है। इसका कारण डॉ. कुंदनलालजी पूर्वनिर्देशित निबन्ध में दिया है।

वैश्वदेव न करते हुए जो मूर्ख द्विज भोजन करते हैं, वे कालसूत्र नामक नरक में जाते हैं। (देवी भागवत)

शाक, कंदमूल, फल, पत्र, पुष्प आदि जो आहार में होगा; उन में से (निषिद्ध पदार्थ वर्ज्य करते हुए, चरू (भात) के अभाव में, किसी से भी वैश्वदेव करें। 'यदन्नाः पुरुषा राजन् तदन्नास्तस्य देवताः' (वा. रा.) जो प्रमुख अन्न जिस दिन खाने के लिए बनाया हो, उसी से वैश्वदेव करना चाहिए, यही सार है; केवल निषिद्ध पदार्थ वर्ज्य करें।

एकादशी या ग्यारस आदि उपवास के दिन भी वैश्वदेव करना ही चाहिए। घर में भात आदि भोजन न बना हो, तो उपवास के पदार्थों से (फलाहार) वैश्वदेव करें; (परन्तु उसमें नमक, तेल न मिलाया हो; देवों को उपवास नहीं होता।

अग्नि मिलना या निर्माण करना असम्भव होगा, तो 'जले जलेन वा जुहुयात्' कुण्ड में पानी डालकर उसमें अग्नि का आवाहन आदि करके उस जल में आहुति दें।

कोई गृहस्थ कहते हैं कि 'हमारी गृहलक्ष्मी तीन आहुतियाँ चूल्हे में डालती है।', परन्तु यह विहित नहीं है। पति घर में होने पर उन्हींको वैश्वदेव करना चाहिए। आपत्काल में पुत्रादि कर सकते हैं।

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

वैश्वदेव की अग्नि में स्थित विभूति धारण करने के सम्बन्ध में लेडबीटर महोदय ने लिखा है कि बीच की उँगली से मस्तक पर जब वे भस्म लगाते हैं तब वह भस्म, राख जैसा न दीखते हुए, तेजःपुंज अग्निही धारण कर रहे हैं, ऐसा दीखता हैं। 'ए टेंपल थॉट फार्म' यह अँग्रेजी निबन्ध देखिए। इसके पूर्व अध्याय में उसे दिया गया है।

वैश्वदेव के पहले कोई संन्यासी, मधुकरी या भिक्षा लेने के लिए आए तो, पके अन्न में से वैश्वदेव के लिए अलग निकाल कर संन्यासी को भिक्षा देनी चाहिए। (श्लो. १२/१३); वैश्वदेव के पहले भीख देने का परदोष संन्यासी को नष्ट करता है; परन्तु संन्यासी को भीख न देने का दोष वैश्वदेव दूर नहीं करता है। (श्लो. १४) यति (संन्यासी) तथा ब्रह्मचारी (गुरुगृह में रहकर अध्ययन करनेवाला) दोनों पकाए अन्न के स्वामी हैं। उन्हें न देते हुए भोजन करने पर चांद्रायणव्रत प्रायश्चित्त करना चाहिए।

तपश्चर्यादि कुछ विशिष्ट काल में ब्राह्मण गृहस्थ को भी मधुकरी (भीख) माँगना दोषार्ह नहीं है। अर्थात् वह भीख जहाँ पंचमहायज्ञ होता है ऐसे गृहस्थ के घर की होनी चाहिए। फिर भी उन्हें वैश्वदेव की आवृत्ति करनी ही चाहिए।

विशेष सूचना– ऋग्वेदी वैश्वदेव की पोथी में अग्नि के आवाहन की विधि समंत्रक दी है। परन्तु अग्निविसर्जन का निर्देश भी नहीं है, यह आश्चर्य है। जिस कर्म में जिस देवता का आवाहन किया होगा, उस कर्म के अन्त में उन देवी-देवताओं का विसंर्जन करना ही चाहिए। शुक्ल-यजुर्वेदीय पाठकशास्त्री कृत नित्यकर्म के ग्रंथ में वैश्वदेव के बाद वे दिए हैं। गीताप्रेस के नित्यकर्म के ग्रंथ में भी हैं। इसलिए अग्नि विसर्जन का मंत्र देना आवश्यक प्रतीत होता है–

गच्छ गच्छ सुरश्रेष्ठ स्वस्थाने परमेश्वर।
यत्र ब्रह्मादयो देवास्तत्र गच्छ हुताशन।।

यह मंत्र कहकर अग्नि पर अक्षत (चाँवल) डालें।
यह विसर्जन विभूतिधारण के बाद करें।

❖❖❖

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection

Digitized by Sarayu Trust Foundation Delhi and eGangotri.

इस ग्रंथ के दो भाग हैं। पहले भाग में शौच, आचमन से लेकर सन्ध्या समाप्ति तक विविध अंगों तथा उपांगों और गायत्री जप-ध्यानरूप प्रमुख सन्ध्या के विधि-निषेध वर्णन के साथ वैज्ञानिक चर्चा की है। प्रत्येक कर्म से होनोवाले लाभ तथा उस कर्म की वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक उपयुक्तता यथामति प्रदर्शित की गई है। शास्त्रों द्वारा सूचित लाभ प्राप्ति के उदाहरण भी यथासंभव दिए गए हैं। पश्चिमी अनुसंधानकर्ताओं के अनुभव भी कुछ अध्यायों मे दिए है। दूसरा भाग सन्ध्या के प्रत्यक्ष कर्मकांड के लिए उपयोगी है।

स्वामीजी ने शास्त्रीय ग्रंथों, धर्मशास्त्रों, मूल ग्रन्थों तथा परम्परा को आधार मानकर ग्रंथ लिखा है। लेखन के विषय में यथोपलब्ध विद्वानों से भी परामर्श किया गया है। आधुनिक बातों का भी यत्रतत्र समन्वय दिखाया गया है। इन बातों से पुस्तक की उपयोगिता और बढ़ी है।

धर्मशास्त्र में नित्य संध्योपासना का अपार महत्त्व सर्वत्र प्रतिपादित है। वैदिक अनुष्ठानों की अधारशिला संध्यावंदन है। संध्योपासना मूल है, अन्य वैदिक कर्मोंको मौलिक बल एवं रस उसी से प्राप्त होता है। संध्या के बिना सभी कर्म निष्फल माने गए हैं। भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण जैसे भगवदवतार भी नित्य संध्यावन्दन कर के उस की महत्ता को प्रतिष्ठापित करते रहे।

धर्मश्री प्रकाशन

CC0. In Public Domain Kirtikant Sharma Najafgarh Delhi Collection